हिन्दी उपन्यास में खलपात्र

(सन् १८८२ से १९३६ ई० तक)

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी-फिल्० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]

●

प्रस्तुतकर्त्री

श्रीमती सरोज अग्रवाल

●

निर्देशिका

डा० शैलकुमारी

हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नवम्बर, १९७०

हिन्दी उपन्यास में खलपात्र

(१८८२ - १९३६)

अध्याय ३

खल का स्वरूप

अध्याय ४

खलपात्रों का वर्गीकरण

। भूमिका ।

भूमिका

दुराचार और अपराध उतना ही शाश्वत है जितना समाज ।[1] ज्यों ज्यों समाज की व्यवस्थायें जटिल होती जाती हैं त्यों त्यों व्यक्ति का संघर्ष और उसकी असफलतायें बढ़ने के कारण अपराध की सम्भावनाएं और क्षेत्र बढ़ते जाते है । इस संबंध में अपराध शास्त्रियों द्वारा की गई खोज कभी कभी संकट का संकेत देती हुई भी प्रतीत होती है । फिर भी मेथ्यू आर्नल्ड का यह कथन " मनुष्य का नैतिक आचरण उसके जीवन का तीन चौथाई भाग होती है "-१ इसी बात की ओर संकेत करता है कि जीवन का केवल १।४ भाग ही श्याम है । समाज का अस्तित्व, संगठन और सुव्यवस्था पर निर्भर है, और प्राचीन काल से सामाजिक नियम तथा नैतिक अवधारणाएँ इस चेष्टा में लगी रही है कि समाज को सुव्यवस्थित रखे ।

किन्तु सदा कहा ऐसे लोग होते ही रहते है जो आचार शास्त्रियों के बनाये नैतिक नियमों (कायदों) तथा न्यायाधीशों की बनाई संहिताओं की सीमाओं का अतिक्रमण करते रहते हैं । उनकी प्रवृत्ति (Social Norms) की सीमाएं मानने को तैयार नहीं होती और वे अपराधी हो जाते हैं, तथा उनके लिये किसी न किसी रूप में दंड का विधान होता आया है । मैनहीम ने समाज विरोधी व्यवहार को अपराध बताया है ।[2]

किन्तु अपराध की सीमायें कानून से संबंध सम्बद्ध है ।[3] हमारा क्षेत्र

---

1. Barnes and Teaters Foreword.-"It is as perennial as spring and as recurrent as winter." P.V. New Horizons in criminology
2. "Crime is antisocial behavior." Mannheim.-Criminal & social reconstruction.
3. Haikerwal. Economics & social aspect of crime in India P.17."Crime is a violation of law."

इससे अधिक विस्तृत है : जब हम खलता की बात करते हैं तो उसका संबंध जितना समाज से मानकर चलते हैं, उतना ही उसे व्यक्ति चरित्र से जुड़ा हुआ मानते हैं। दूसरे शब्दों में कांट और बेंथम [1] की विचारधारा का एक स्थान पर संयोग देखते हैं, और व्यक्ति को उसके व्यवहार के लिये उत्तरदायी भी मानते हैं, कानून उसकी ओर चाहे देखे या न देखे। वह हमारे सामने एक क्रिया ही नहीं एक मनोवृत्ति के रूप में भी आती है। कानूनी दृष्टि कभी-कभी पथ निर्देशक तत्त्व अवश्य होती है। [2] किन्तु कानून भी तो देश काल सापेक्ष है। यही कारण है कि सती प्रथा यदि एक युग में पुण्य था तो आज अपराध है, विधवा - विवाह एक युग में अपराध था तो आज अनुचित नहीं।

इस प्रकार जो व्यक्ति सामाजिक स्वार्थों पर आघात करता है तथा साथ ही जिसकी अन्तः प्रेरणा भी दुष्ट होती है उसे हम खल की श्रेणी में रखते हैं यों तो डार्विन के अनुसार मनुष्य और पशु में अन्तर नहीं है किन्तु मनोविज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि सामान्य मनुष्य मनोबल के सहयोग से जिस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में होता हुआ भी मनोवृत्तियों का उदात्तीकरण कर पाता है उस रूप में एक अपराधी या सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता। जब समाज में अभिव्यक्ति का संघर्ष प्रस्तुत होने पर समायोजन, निरोध, संतुलन, दमन, उदात्तीकरण, एकात्मीकरण, विस्थापन, प्रक्षेपण की आवश्यकता पड़ती है तो दुर्बल मनुष्य उन जीवन स्थितियों का सामना नहीं कर पाते और असामाजिक व्यवहार में प्रवृत्त हो जाते हैं।

1- "कांट" मनुष्य की अभिरुचि पर बल देता है अर्थात् "जिस कार्य का चयन किया गया है उसका संकल्प उसके मन में अच्छा था या बुरा।"
"बेंथम" वस्तुनिष्ठ तत्त्व पर बल देता है अर्थात् "जो कार्य किया गया उसका दूसरों पर क्या असर पड़ा।"

2- यों तो कानून ने जन विधान (Lynch Law) और जन तिरस्कार (Public disgrace) को मान्यता देता आया है इसीलिये गैरोफैलो ने अपराध की परिभाषा दी और उन कार्यों को अपराध की संज्ञा दी जो सत्य और शालीनता के विरुद्ध होते हैं तथा जिनसे समाज का अहित होता है। R. Garafalo Criminology
भारतीय दंड संहिता में भी समाज के स्वास्थ्य, सुरक्षा, सुविधा, शालीनता तथा नैतिकता पर आघात करने वाले कृत्यों को अपराध माना गया है। इंडियन पेनल कोड, सेक्शन २६८-९४ ए

~~प्रवृत्त हो जाते है~~ । जिन परिस्थितियों में दूसरे लोग दुष्ट प्रवृत्तियों से बचे रहते है वही खल के लिये असामाजिक व्यवहार का कारण हो जाती है और वह अपने आवेश को वशीभूत करने में असमर्थ रहता है । खलता के कारणों का विवेचन करते हुए शरीर रचना, वंशानुक्रम, परिवेश, पारिवारिक पर्यावरण, आर्थिक परिस्थिति, राजनीतिक और धार्मिक नेताओं का नेतृत्व, शराब और जुए आदि व्यसनों के प्रति समाज का रुख यह सब तत्व खँगालने पड़ते है ।

साहित्यकार और अपराधशास्त्री में भी उतना ही भेद होता है जितना साहित्यकार और नैयायिक में । साहित्यकार खलपात्रों के रूप में पागल रोगी और मूर्ख को नहीं प्रस्तुत करता, उसकी अभिरुचि का केन्द्र मानव संबंधों के वे सूक्ष्म सूत्र होते है जहाँ सहज मानवीय संवेदनाओं को झंकृत किया जा सके । उनमें जहाँ जहाँ विकृति और कुरूपता दिखाई देती है वही कलाकार की सौन्दर्य दृष्टि आकृष्ट होती है और उसे उसे निर्धारित परम्परागत मूल्यों के परिपेक्ष्य में नूतन विचारधाराओं और मूल्यों के निर्धारण की चिन्ता भी होती है । समाज में रमानाथ क्यों गबन करते है , उनका दुर्बल व्यक्तित्व कैसे कैसे परिस्थितियों के थपेड़ों में बहता है, चमार अली जैसे डाकू क्यों बन जाते हैं , और लालमन डाकू के मन में भी कहाँ एक कोमल कोना छिपा पड़ा है , मुन्नल जैसे गुंडों का व्यक्तित्व समाज के लिये कैसा घातक है, समाज की रूढ़ बर्बर व्यवस्थाओं ने किस प्रकार मानवता के सौन्दर्य का हनन करके समाज को तोताराम और सुमन जैसे पात्र दिये हैं , यही कलाकार का चिन्त्य विषय होता है । वह यह भी खोजना चाहता है कि वास्तविक सुख और आनन्द कहाँ है - क्या पापी और दुराचारी सचमुच सुख पाता है अपने दुष्कृत्य के बाद व संस्कृत समाज के बीच रहने वाले दुष्ट के मानस से सृजनात्मक और रचनात्मक क्रिया तथा संहारात्मक असामाजिक कृत्य का क्या संबंध है । इस प्रकार उपन्यासकार खलपात्र को लेकर यथार्थवाद की भूमि पर उतरता है, मनोविज्ञान के प्रश्नों को उभारता है और सांस्कृतिक तथ्यों का उद्घाटन करता है । उपन्यासों में खल निरूपण यथार्थवाद की प्रवृत्ति का द्योतक है । किन्तु उपन्यासकार का काम पुलिस का या सुधारक संस्थान का नहीं होता । वह सत्य ही नहीं सुन्दर का भी उपासक है, और साथ ही साथ शिवम् भी उसकी रचना का लक्ष्य है । अतः अनचाहे ही

एक नैतिक दृष्टि क्रियाशील रहती है जिससे प्रेरित होकर वह कभी तो खल को लेखक के मन की पराभव के गर्त में झोंक देता है और कभी उसके सुकोमल मानवीय अंश का उद्घाटन करके उसे सहानुभूति का पात्र बना देता है ।

Frank Tannenbaum ने भले ही कहा हो।-

" It seems to me that we have to begin and end with the conviction that man is a fallible animal.[1]

साहित्यकार को मनुष्य में पूरा विश्वास है और वह अपराध की अपेक्षा अपराधी की ही बात अधिक सोचता है, वह उस मनुष्य को देखता है जो कभी कभी अनजाने, कभी कभी परिस्थितियों की लपेट में, और कभी रूढ़ सामाजिक परम्पराओं में बँधा हुआ असत् पथ पर चल पड़ता है । यही कारण है कि साहित्यकार खल के लिये प्रायः जिस दंड और परिणति की कल्पना करता है वह भी न्याय और अपराध शास्त्री दोनों की दृष्टि से भिन्न होती है । हृदय परिवर्तन जैसे दंड की कल्पना साहित्यकार ही कर सकता है । सूर ने भले ही कहा हो "सूरदास काली कामरी चढ़े न दूजो रंग" आधुनिक उपन्यासकार का दृष्टिकोण अधिक मानवतावादी और मनोवैज्ञानिक है । नीति के आचार्यों ने भी जिस स्थूल शैली में आचार के तत्वों का विधान किया है वह भी साहित्यकार को स्वीकार्य नहीं है । फिर भी जैसा कि अंग्रेजी कवि शैली ने कहा 'नैतिकता का मूल्य उपदेशकों द्वारा नहीं वरन् कवियों द्वारा स्थापित होता है ।' मनुष्य की बहुरंगी प्रकृति में से सत् और असत् का विवेचन करने के उपरान्त उपन्यासकार जो कुछ अपनी सुन्दर शैली में सहज ही प्रस्तुत कर देता है वह जन मानस पर अपनी गहरी छाप छोड़ जाता है ।

इस प्रकार हमारे विषय का महत्व कई आयामों से सिद्ध होता है । एक ओर इसका संबंध साहित्य और जीवन से है, साहित्य में यथार्थ से है , साहित्य और मनोविज्ञान से है , तो दूसरी ओर साहित्य में शिवम् और सुन्दरं से भी है,

---

1. New Horizons i[illegible] y. Barnes and Feeters. Foreword. P.Vi.

साहित्य के बदलते हुए मूल्यों से भी है, साहित्य और मानवतावाद से भी है। यह विषय नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान को अपनी अनिवार्य भूमिका के रूप में स्वीकार करता है। इन्हीं दृष्टियों से प्रेरित होकर मैंने इस विषय को शोध के लिये चुना है। उपन्यासविधा की सशक्तता, लोकप्रियता और जनमानस पर उसका प्रभाव भी आज प्रमाणित है, इस दृष्टि से यह विषय और भी महत्व पूर्ण हो जाता है।

किन्तु कठिनाई वहाँ उत्पन्न होती है जब हम किसी पात्र को खल कहना चाहते हैं। किसी को खल कहना अन्याय तो है ही साथ ही सदाचरण और दुराचरण के कोई आदर्श *absolute* और सर्वकालिक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में स्वयं उपन्यासकार की अवधारणायें ही हमारी मार्ग दर्शक सिद्ध होती हैं। स सदाचार और दुराचार के संबंध में आलोच्यकाल के उपन्यासकारों की धारणायें बहुत कुछ भारतीय संस्कृति और दर्शन की परम्परा से निर्मित है। यही कारण है कि वह कर्मफल में विश्वास करता हुआ दीखता है और मुबक्ल, कमला प्रसाद आदि दैवी दंड के भागी होते दिखाये जाते हैं। फिर भी नवयुग की पगध्वनियाँ भी प्रतिध्वनित हुई हैं, जब लेखक, बालविवाह, विधवा-विवाह, अनमेलविवाह, जमींदारी, महाजनी, पुलिस, आदि के प्रसंग उठाकर उनमें से इस युग के खलों को उभार कर लाता है; या कभी कभी पाप के संबंध में संदेह पूर्ण चर्चा उठाता है (चित्रलेखा)।

हिन्दी उपन्यास में खलपात्रों का महत्व होते हुए भी अभी तक उनका सांगोपांग अध्ययन नहीं हुआ है। स्फुट रूप से कहीं कहीं खल पात्रों की चर्चा मिल जाती है। हिन्दी उपन्यासों में खलपात्र विषय चुनने का मुख्य कारण यही है कि विद्वानों ने उपन्यास कला, चरित्र चित्रण का विकास, उपन्यास में नायक नायिका की परिकल्पना, हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता आदि पर शोध कार्य किया है परन्तु खलपात्रों की ओर ध्यान नहीं दिया है जिससे मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा सामाजिक समाज की समस्याओं के अध्ययन का बहुत बड़ा अंश अधूरा था मैंने उस अधूरे अंश को पूरा करने की यथा सामर्थ्य चेष्टा की है। प्रस्तुत शोधकार्य १८८२ से १९३६ तक के उपन्यासों में खलपात्रों के सांगोपांग और सूक्ष्म अध्ययन का यह प्रथम प्रयास है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध नौ भागों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में आलोच्यकालीन उपन्यासों के मध्य खलपात्रों के निरूपण का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में उपन्यास की परिभाषा के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास मानव जीवन की अभिव्यक्ति है यह सिद्ध किया गया है। उपन्यास में सत् असत् का समान महत्व है। सत् की विजय दिखाने के लिये असत् की महत्ता अनिवार्य है। उपन्यास के तत्वों और खल निरूपण के स्वरूप को सिद्ध करने के लिये उपन्यास में मनोरंजन एवं सुधार आदि बातों की चर्चा की गई है।

तृतीय अध्याय में खल का स्वरूप पाप और पुण्य, नैतिक अनैतिक की परम्परागत धारणा तथा षड्मनोविकारों काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद एवं मत्सर पर विचार करते हुए यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि खल की कसौटी क्या है, खल किसे कहते हैं, खलता के कारणों तथा खल के व्यक्तित्व एवं लक्षण तथा मानवतावादी दृष्टि के कारण जन्मी आधुनिक सहानुभूतिपूर्ण विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में खलपात्रों का वर्गीकरण किया गया है। खल के निर्धारण की कौन कौन सी प्रमुख दृष्टियाँ हैं आदि का विवेचन किया गया है।

पाँचवें अध्याय में सामाजिक क्षेत्र में खलता करने वाले खलपात्र और उनके कारणों जैसे कुसंग, कुशिक्षा, वंशानुक्रमवृत्ति, कामुकता, धनलोलुपता आदि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही व्यवस्था के नाम पर खलता करने वाले जमींदार, महाजन, पुलिस, पंचायत आदि तथा वकील, डाक्टर, मिल मालिक जैसे सफेद पोश खलों को भी दृष्टि पथ से ओझल नहीं किया गया है।

छठे अध्याय में हमने उन राजनैतिक खलपात्रों का वर्णन किया है जो किसी महत्वाकांक्षा, धनलिप्सा या पदलिप्सा के वशीभूत हो अपने या व्यक्तिगत मनुष्य से खलता करते देखे जाते हैं।

सातवें अध्याय में उन खलपात्रों का चित्रण किया गया है जो धर्म के नाम पर समाज में अव्यवस्था, अनाचार एवं अनर्थ उत्पन्न करते हैं। ऐसे खलों में साधु-महन्त मठाधीश, पंडे, पुरोहित सुधारवादी संस्था के व्यवस्थापक आदि ही दिखाई पड़ते हैं।

आठवें अध्याय में मनोवैज्ञानिक खलपात्रों के चरित्र का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से खलपात्रों की खलता का केन्द्र उनका मन: स्तल या कोई कुंठा होती है जिसके कारण वह खल बन जाते हैं। हीन ग्रन्थि, काम भावना का दमन, व्यक्तित्व में निहित महत्व स्थापित करने की कामना आदि कारण मनोवैज्ञानिक खल में देखे जा सकते हैं।

नवें अध्याय में स्त्री खलपात्रों की चारित्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। स्वभाव से कोमल होने के कारण स्त्री खल की खलता उतनी भीषण नहीं होती जितनी पुरुष की। स्त्री निश्चित कारणों या संवेगों के कारण खलता करती पाई जाती है।

उपसंहार में हमने खलपात्रों के दंड विधान, उपन्यास के शिल्पपर खलपात्रों की रचना का प्रभाव तथा उपन्यास में खलपात्रों के के कारण अभिव्यक्त सांस्कृतिक संकेतों पर विचार करके प्रबन्ध को समाप्त किया है।

आलोच्य काल में हमें असंख्य उपन्यास उपलब्ध होते हैं पर विस्तार भय से या शोध प्रबन्ध का कलेवर बढ़ जाने के कारण हमने कुछ प्रमुख प्रमुख को ही अपनी आलोचना का विषय बनाया है। स्वास्थ्य की अस्वस्थता, गार्हस्थ्य दायित्व आदि कारणों से मुझे अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा विलम्ब हुआ। श्रद्धेय डा० शैलकुमार के वत्सलता व्यवहार सतत स्नेह पूर्ण प्रोत्साहन एवं मृदुल व्यवहार ने मेरे अंधकार पूर्ण पथ को सदैव आलोकित किया है।

मैं अल्प बुद्धि पूजनीय डॉ० शैल कुमारी जी के प्रति कुछ भी व्यक्त करने में शान्ति नहीं पाती हूँ उनके सतत् प्रोत्साहन एवं बहुमूल्य निर्देशन के फलस्वरूप ही मेरा यह शोध कार्य पूरा हो सका। उनके पथ प्रदर्शन के अभाव में यह सर्वथा असम्भव प्राय: था जिसके लिये मैं आजीवन उनकी ऋणी रहूँगी। मैं डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय तथा उन सभी गुरुजनों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे समय समय पर मार्ग निर्देश किया। मैं प्रयाग विश्व-विद्यालय पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग भारती भवन, नागरीप्रचारिणी सभा काशी की भी आभारी हूँ जहाँ से आवश्यक पुस्तकों के निर्देशन से मेरा शोधकार्य पूरा हो सका।

सम्पूर्ण रचना मौलिक है । यह शोध कार्य इस दिशा में लघु प्रयास मात्र है । विद्वज्जनों के आशीर्वाद से उपन्यास साहित्य क्षेत्र में योग देने का साहस किया है । मेरी कामना है कि हिन्दी उपन्यास में खलपात्रों की ओर भी ध्यान दिया जाता रहेगा । इस कृति से हिन्दी साहित्य के सृजन की अभिवृद्धि में कुछ योग हो सकेगा ऐसा विश्वास है ।

सरोज अग्रवाल

पीठिका

(क) साहित्य में खलपात्रों के निरूपण की परम्परा

"साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है" या "जीवन का दर्पण है" यह कथन यदि अपनी सर्वाधिक सार्थकता पाते हैं तो उन अंशों में जहाँ साहित्यकार जीवन के यथार्थों का उन्मीलन करता है। वस्तुत: आदर्श का अधिकांश तो कल्पनागत सत्य ही होता है, यथार्थ ही जीवन का तथ्य होता है, यह बात दूसरी है कि यथार्थ की प्रस्तुति में भी अतिशयोक्ति का अंश सम्भाव्य है। तुलसी के राम और रामराज्य की परिकल्पना तो एक आदर्श की परिकल्पना है (जो ठोस जीवन में होना चाहिए या हो सकता है) किन्तु कैकेयी या रावण की परिकल्पना जीवन गत वास्तविकताओं पर ही आधारित है।

अस्तु साहित्य के जन्म काल से ही जहाँ मानव जीवन का निरूपण हुआ है वहाँ खलपात्रों का निरूपण प्राप्त होता है। खलपात्र समाज के अभिन्न और अनिवार्य अंग हैं। खलपात्र मानव मनोवृत्तियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। अत: समय-समय पर जब जब साहित्यकारों ने जैसा समाज पाया है उसके अनुरूप साहित्य में मानव स्वभाव की दुष्ट प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन हुआ है। यदि वैदिक काल में अनार्य दुष्ट प्रवृत्तियों के प्रतीक थे तो पौराणिक साहित्य में दैत्य वर्ग, महाभारत में कौरवों का समूह, रामायण में राक्षस वर्ग

और इसी प्रकार से अन्यत्र भी । साहित्यकार की खल की परिकल्पना किसी न किसी प्रतीकात्मक रचना में अभिव्यक्ति पाती रही है और उस रचना में खल का व्यक्तित्व, उसकी चरित्रगत विशेषताएँ, समाज में उसका प्रभाव स्पष्ट हुआ है । कहना न होगा कि ऐसे पात्रों की रचना करते हुए साहित्यकार का उद्देश्य सदा एक ही रहा है - जनहित का भाव, लोक मंगल का भाव । समाज में जो कुछ दुष्ट है वह कैसा है उसका क्या परिणाम होता है यह दिखा कर साहित्यकार अपने युग को संदेश देता रहा है । कथात्मक साहित्य की विशेषता यह है कि यह नैतिक अन्तर्दृष्टि एक रोचक ढंग से समाज के सामने लाती है । आज भी रावण हिन्दू समाज के सामने दुष्टता का चरम प्रतीक है और राम सत्य एवं श्रेय के चरम प्रतीक ।

जब हम वैदिक साहित्य से आरम्भ करते हैं तो देखते हैं कि उनकी सत्य और ऋत की परिकल्पना बड़ी सुदृढ़ और स्पष्ट थी । वैदिक साहित्य में पाप की रूप रेखा भी स्पष्ट है । झूठ, छल, कपट, धोखा, हिंसा, द्वेष आदि खलता के लक्षण हैं ।

वैदिक साहित्य में यदि हम खलपात्रों के रूप में देखें तो दस्यु या अनार्य दिखाई पड़ते हैं । वैदिक समाज आर्य और दास दो वर्णों में विभक्त था । परवर्ती काल में दास का तात्पर्य सेवक या गुलाम हो गया पर वैदिक युग में दास आर्यों या देवों के प्रतिपक्षी खल के रूप में चित्रित किये गये हैं । ऋग्वेद में कहीं-कहीं दासों को असुर नाम से सम्बोधित किया गया है । देवों और असुरों में वैर होने के कारण असुर देवताओं से शत्रुता रखते थे । देवताओं या आर्यों से वैर रखने वाले दासों को भी असुर कहा गया है । दासों की शारीरिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन मिलता है। वे " अनासः " अर्थात् बिना नाक वाले या चिपटी नाक वाले थे । मनु संस्कृति के मानने वाले मानुषों से इनकी संस्कृति भिन्न थी । अतएव इन्हें 'अव्रत' कहा गया । ये यज्ञ नहीं करते

थे । उनकी बोली में स्पष्टता नहीं थी । अतएव वे मृध्रवाच: थे उनका रंग तो काला था ही ।[१]

वैदिक युग में राक्षसों और पिशाचों का भी उल्लेख आता है जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व का स्वरूप उनके लिए खल की कोटि निर्धारित करता है । राक्षस ब्रह्मद्वेषी थे , कच्चा मांस खाते थे, उनकी दृष्टि क्रूर थी । ये दुष्कृति के रूप में ही स्मृत हैं । आर्य उनका सर्वनाश चाहते थे इसलिए इन्द्र से प्रार्थना करते थे कि अपने बल से राक्षसों को मारकर देवताओं की रक्षा करें । राक्षसों का आचार-व्यवहार मिथ्या और असत्य से भरा होता था । राक्षसों की स्त्रियाँ भी माया द्वारा हिंसा करती थीं । वे छद्म वेश को धारण करने वाले तथा प्रपंची स्वभाव के थे , इसीलिए उनके निशाचर और 'यातुधान' नाम प्रचलित हुए । यद्यपि हिन्दू विवाह पद्धति में राक्षस विवाह भी एक प्रकार है तथापि वह एक निकृष्ट प्रकार का विवाह ही समाज में माना गया है । राक्षस शब्द गाली के रूप में प्रयुक्त होता था और आज भी है । इसमें उनकी खलता की मूल भावना निहित है ।

राक्षसों के समान ही पिशाच भी ऋग्वेद में भयंकर कहे गये हैं । वे भी कच्चा मांस खाते थे । उनकी पैशाचिक विद्या छल, छद्म से भरी होती थी । पिशाचों को क्रूर कोटि में रखा गया । पैशाचिक विवाह पद्धति स्वीकृत होने पर भी निकृष्ट मानी गयी ।

१- डा० राम जी उपाध्याय - प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति -पृ० ६

इस प्रकार वैदिक साहित्य में खल की परिकल्पना दस्यु, राक्षस एवं पिशाचों में अपनी रूपरेखा पाती है। स्पष्टत: उस युग में आर्यों का विरोधी होना, कच्चा मांस खाना, असत्य और छलप्रपंचमय व्यवहार करता तथा यज्ञ न करना खलत्व की सबसे प्रमुख कसौटियाँ थीं।

पुराणों में दैत्यों की परिकल्पना में खलपात्रों का स्वरूप सामने आता है। कश्यप और दिति के पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ब्रह्मशाप के कारण दैत्य योनि में जन्म लेते हैं। इन दोनों दैत्यों के अत्याचार से समस्त ऋषि मुनि परेशान रहते हैं। ये दैत्य इतने पराक्रमी थे कि उनके पैर की धमक से धरती कांपने लगती थी। इनमें अहंकार और गर्व की मात्रा अत्यधिक थी। उनका व्यक्तित्व भी महान था, बड़े बड़े देवता इन दैत्यों के नूपुरों की झनकार, गले में वैजयन्ती माला और कंधे पर रखी प्रकाण्ड गदा को देखकर भयभीत हो जाते थे। दुष्ट दैत्य भगवान के भक्तों, ब्राह्मणों, गौओं और निरपराध प्राणियों को सताते, तंग करते, धमकाते और हत्या तक कर देते थे। ये दैत्य कठिन तप करके भी ऐसा ही वरदान मांगते थे जो उनके क्रूर मनसूबों के द्योतक होते थे।[१] मद एवं अहम् में चूर मायावी, अभिमानी और निरंकुश दैत्य समाज का विनाश करने के लिए ही तीनों लोकों में अपना प्रतिद्वंद्वी खोजते थे। दुष्ट हिरण्याक्ष भगवान के साथ अपनी माया द्वारा युद्ध करता है। उसकी माया से चारों ओर धूल उड़ने लगती है। दसों दिशाएं अन्धकाराच्छन्न हो जाती है। पीब (पूय), रक्त, विष्टा, मूत्र और हड्डियों की वर्षा होने लगती है। बहुत सी नंगी - धड़ंगी राक्षसियें केश छितरायें हाथ में त्रिशूल लिये घूमती दीखी। इस प्रकार का भयंकर दृश्य उत्पन्न

१- भस्मासुर नामक राक्षस तप द्वारा शंकर को प्रसन्न करके भी यह वरदान मांगता है कि जिसके सिर पर मैं हाथ रखूँ वह जलकर भस्म हो जाए।

कर मूर्ख, भगवान को डराना चाहता है । ऐसे ही दुष्ट दैत्यों का संहार करने के लिये भगवान को वराह और नरसिंह आदि का अवतार लेना पड़ा ।[२]

पुराणों के दैत्य प्राय: लिंगोपासक थे । मत्स्य पुराण के अनुसार "जिस समय त्रिपुर दग्ध होने लगा वाणासुर शिवलिंग को सिर पर रख कर शिव की स्तुति कर रहा था ।"[३] ये दैत्य मांस मदिरा का सेवन करते थे पशुबलि को महत्व देते थे । विष्णु पुराण में शुम्भ-निशुम्भ नामक असुरों का वृत्तान्त मिलता है । ब्राह्मण पुराण में भण्डासुर के अत्याचारों का वर्णन और उसके विनाशार्थ इन्द्र नारद परामर्श का वर्णन मिलता है । पूरा पौराणिक साहित्य दैत्यों के संहारमय कृत्यों और उनके कारण समाज एवं देवताओं के कष्टों एवं उनसे सतत् संघर्षों की कथाओं से भरा हुआ है । वृत्रासुर, महिषासुर आदि उस संहारात्मक दुष्ट दैत्य शक्ति के चरम प्रतीक हैं । दशावतारों की कल्पना का और शक्ति के उद्भव का मूल कारण दैत्यों का ही उच्छृंखल व्यवहार था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराणों में दैत्य खलता के चरम प्रतीक हैं । जिन विशेषताओं को आर्यों ने दस्यु, राक्षस और पिशाचों में खलता माना था वही शुद्ध और प्रवर्धित रूप में पुराणों के दैत्यों में स्थापित हुई है । काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह का साकार रूप ये दैत्य हैं । रावण का सीता हरण काम का चरम उदाहरण है । मद और क्रोध इन दैत्यों की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं । मद में चूर होकर ये देवगणों से भिड़ जाते हैं । शक्ति का अहंकारकी महत्वपूर्ण विशेषता है । शक्ति का स्त्रोत आध्यात्मिक न होकर भौतिक स्तर पर ही है । तपस्या तक भौतिक महत्वाकांक्षाओं की उपलब्धि का ही साधन है । कहा गया है कि वृत्रासुर ने ८ हजार वर्षों तक तपस्या की थी । दैत्यों की क्रूरता का चरम उदाहरण दधीचि की मांसहीन हड्डियाँ हैं ।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के विकास में खलत्व का स्वरूप स्पष्ट और निर्धारित होने लगा जिसके प्रतीक बन गये दैत्य या राक्षस वर्ग ।

२- असली सुखसागर तृतीय स्कंध - पृ० १८२

३- सिद्धेश्वरी नारायणराय - पौराणिक धर्म एवं समाज पृ० ३६

रामायण तथा महाभारत आदि महाकाव्यों में खल की परिकल्पना राक्षस और कौरवों के समूह के रूप में दृष्टिगोचर होती है । वाल्मीकि रामायण में राम का प्रतिद्वंद्वी रावण बुद्धिमान, पराक्रमी होते हुये भी खल है क्योंकि उसका प्रत्येक कार्य अहं एवं गर्व से मंडित है । राम जैसे आदर्श पुरुष को भी वह तुच्छ समझता है । अपनी राक्षसी एवं तामसी प्रवृत्ति के कारण वह ऋषि-मुनियों को अनेकों कष्ट पहुँचाता है । वाल्मीकि रामायण में कैकेयी को प्रारम्भ से ही अभिमानिनी, सौन्दर्यवती एवं विषय वासनाओं में लिप्त चित्रित किया गया है । वाल्मीकि कैकेयी के चरित्र को इस प्रकार चित्रित करते हैं कि अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह राम को वन भेजने जैसा नीच काम करने में भी संकोच नहीं करती । मंथरा द्वारा उत्साहित या प्रेरित होना तो एक बहाना था । साधारण नारी की भाँति पुत्र प्रेम में पागल हो क्रोध से फुफकारती नागिन की भाँति वह कोप भवन में चली जाती है । सम्पूर्ण अयोध्या को शोक संतप्त देखकर भी उसको दया नहीं आती । पश्चाताप या ग्लानि की भावना उत्पन्न ही नहीं होती । कैकेयी मिथ्या भ्रम या अज्ञान वश नायक की प्रतिद्वंद्वी के रूप में प्रगट होती है । कैकेयी की वाल्मीकि ने कलंकिनी, असहिष्णु, निर्दयी, निर्मोही, दुराचारणी, पतिघातिनी आदि रूपों में निंदा की है । [१]

रामायण में ईश्वरीय अवतारों ऋषि-मुनियों, महान राजाओं और महापुरुषों की जीवन झाँकी से दैवी एवं आसुरी सम्पत्ति के बीच मानव संघर्ष तथा उसके श्रेष्ठ एवं निकृष्ट तत्वों का अवलोकन कराया गया है ।

ख महाभारत में खल की परिकल्पना कौरवों के समूह के रूप में की गई है । असुर प्रकृति दुर्योधन, लोभी-द्रोण, दुष्ट दुःशासन, नीच शकुनि, कर्ण आदि खल के

१- नृशंसे दुष्टचारिणि - पृ० सं० ६८१

----------+----- + ------ + ------

---कैकेय्यास्त्यक्त कर्मण: ।

---------- + --- + ------ + ------

कैकेय्या दुष्टभावाया राघवेण वियोजिता:
कथं पतिघ्न्या वत्स्याम: समीपे विधवा वयम् ।

(अष्टचत्वारिंश: सर्ग पृ० ६८५)

हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि ।

(चतु: सप्ततम सर्ग: पृ० ६७१)
(वाल्मीकि रामायण - अयोध्याकाण्ड)

रूप में चित्रित किये गये हैं ।

कुरुवंश में उत्पन्न कौरवों और पांडवों में राज्य के लिए वैर उत्पन्न हो जाता है । बिना युद्ध किये एक सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने के लिए कुलघाती दुर्योधन तैयार नहीं होता -"सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन भारत ।" महाभारत के वन पर्व में मार्कण्डेय मुनि युधिष्ठिर से कलियुग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सभी वर्ण के लोग छल,बल से धर्म पर आचरण करेंगे । सत्य के स्थान पर झूठ का सहारा लेंगे जिससे आयु क्षीण होगी और प्राणी जी भी न सकेगा । परस्पर लोग वैर बांध लेंगे और एक दूसरे के साथ घात करने के इच्छुक होंगे -

वैरबद्धा भविष्यन्ति परस्पर वधेप्सिणः ।[1]

इस कथन के उदाहरण के रूप में महाराजा युधिष्ठिर जुयें में सम्पूर्ण राज्य पाँचों भाई व द्रौपदी को हार जाते हैं । घमंडी दुर्योधन द्रौपदी को बलपूर्वक सभा में खींच लाने की आज्ञा देता है ।[2] दुष्ट दुःशासन निरपराध द्रौपदी का केश पकड़ कर बलात् उसको सभा के सामने नग्न करने का प्रयत्न करता है ।[3] कौरवों के समूह के बड़े बड़े राजा,महराजा,आचार्य,गुरु भीष्मपितामह,द्रोण आदि किसी की भी सामर्थ्य नहीं कि दुष्ट दुर्योधन के अत्याचार से द्रौपदी की रक्षा करें । द्रौपदी को सभा में खींच लाने,वादविवाद होने पर द्रौपदी की भर्त्सना करते हुए कर्ण का यह कथन - " कि स्त्रियों का एक पति स्थिर किया है इसके पांच पति हैं,इसलिए यह वेश्या है सो इस सभा में खींच लाना भी कोई बुरा नहीं, चाहे इसने कुछ पहना हो या नंगी हो ।"[4] क्रूरता की चरम सीमा है ।

१- महाभारत - वनपर्व

२- इहैवैतामानय प्रातिकामिन्प्रत्यक्षमस्य: कुरवो ब्रुवन्तु
मभा० स० प० अ ६७ श्लोक २३ पृ० २९१
स्वयं प्रगृह्याऽऽनय याज्ञसेनीं किं ते करिष्यन्त्यवशा सपत्ना:
वही श्लोक २५ पृ० २९१

३- ततो दुःशासनो राजन्द्रौपद्या वसनं बलात्
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ।।
सभापर्व श्लोक ४० पृ० ३०१

४- उपाध्याय रामदेव जी आचार्य-पुराण मत पर्यालोचन पृ० १३

उद्धत दुर्योधन बड़ों का सम्मान करना नहीं जानता था । तत्कालीन युग में अधर्म के सामने महान पुरुषों की उपेक्षा दिखलाने के लिए ही निर्लज्ज,उद्धत तथा नीच दुर्योधन की सृष्टि की गई ।

खलस्त्रियों के आचरण के संबंध में अपवित्रता का उल्लेख मिलता है । खल-स्त्रियाँ मद्य सेवी थी । महाभारत में जहाँ साध्वी स्त्रियों में सावित्री की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है वहाँ खलस्त्रियों की निकृष्टता का भी उल्लेख मिलता है ।

संस्कृत नाटकों में प्राय: खल की शास्त्रीय परिकल्पना प्रतिनायक के रूप में की जाती रही है । संघर्षमूलक किसी महान घटना के प्रदर्शनार्थ ही (खल) प्रतिनायक की कल्पना करनी पड़ती है । बिना प्रतिनायक के द्वन्द्व अथवा संघर्ष का प्रश्न नहीं उठता । भारतीय अलंकार शास्त्रियों में रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में प्रतिनायक की कल्पना करते हुए उसके कुल एवं शक्ति के वर्णन को तथा उसके नगरावरोध को आवश्यक बताते हुए खल की परिभाषा की है -

"प्रतिनायकमपि भवतितद्विवदभि मुखमुष्यमाणमायान्तम्
अभिदध्यात्कार्यं वशान्नगरी रोधस्थितं वापि ।" [१]

दशरूपक में भी प्रतिनायक के लक्षण बताते हुए कहा गया है -

'लुब्धो धीरोद्धत: स्तब्ध: पापकृद्व्यसनी रिपु: । ६ ।
तस्य नायकस्येत्थंभूत: प्रतिपक्षनायको भवति: यथा
रामयुधिष्ठिरयों रावण दुर्योधनौ ।' [२]

नायक की फल प्राप्ति में विघ्न करने (डालने) वाला,नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है । यह प्रतिनायक लोभी,धीरोद्धत,घमण्डी,पापी तथा व्यसनी होता है । उस नायक का शत्रु प्रतिनायक इन विशेषताओं से युक्त होता है जैसे राम तथा युधिष्ठिर के शत्रु क्रमश: रावण तथा दुर्योधन हैं ।

१- रुद्रट - काव्यालंकार १६।१६

२- डा० भोला शंकर व्यास - हिन्दी दशरूपक पृ० ६१

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरोद्धत नायक मायावी, स्वभाव से उग्र, चपल तथा आत्मप्रशंसा का इच्छुक होता है। अहंकार और दर्प उसके अंग अंग में भरा रहता है। भीमसेन, मेघनाथ, हर्ष के उदाहरण माने गए हैं। नायक का प्रतिद्वंद्वी अर्थात् प्रतिनायक सदैव धीरोद्धत होता है।"[१]

संस्कृत के लौकिक साहित्य में भारवि, शूद्रक, विशाखदत्त आदि के ग्रन्थों में खलपात्रों का चित्रण मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में शिव की पूजा से लौटती हुई उर्वशी को पकड़ने की कोशिश, दुष्टता पूर्ण कार्य करने वाले दानव को खल के रूप में चित्रित किया ब गया है। उसके दुष्कृत की मूल प्रेरणा काम और मोह है।

कालिदास के 'कुमारसंभव' नाटक में तारक नामक राक्षस को खल के रूप में रखा गया है। तारक देवताओं को सताकर मनमाना अत्याचार करता था। सभी देवता उसकी तामसिक प्रवृत्ति से परेशान थे। दुष्ट तारक के पास इतना तेज था कि कोई उसे मार नहीं सकता था। तारक राक्षस का संहार करने, देवताओं की रक्षा करने के लिए ही भगवान शंकर और पार्वती के पुत्र कार्तिकेय कुमार का जन्म हुआ।

शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक में शकार को खल की कोटि में रखा गया है। दुष्ट शकार वसन्तसेना के धोखे में रदनिका को पकड़ लेता है। नीच, प्रवंचक, क्रूर, मूर्ख, विलासी, विश्वासघाती हत्यारा शकार वसन्तसेना द्वारा प्रेम प्रस्ताव अस्वीकार किये जाने पर उसका गला घोट कर हत्या कर देता है। हत्या का इलजाम अपने प्रतिद्वंद्वी चारुदत्त पर लगा देता है। चारुदत्त को फाँसी की सजा होती है यद्यपि ये संयोग ही है कि निर्दोष सिद्ध होने पर वह मुक्त हो जाता है। दुष्ट शकार अपनी भगिनी के राजा की रक्षिता होने में अभिमान का अनुभव करता है। कानून को हाथ में ले मनमाना अत्याचार करता है। शकार मूर्ख एवं अज्ञानी होने पर भी षड्यंत्र निर्माण में पटु है। अपने स्वार्थ के लिए वह अपने सेवकों तक की उपेक्षा कर देता है। लेखक ने शकार के प्रतिद्वन्द्वी चारुदत्त में जहाँ उत्तम गुणों का विधान किया है वहीं दुष्ट शकार के प्रत्येक कार्य में दुष्टता कूट कूट कर भर दी है। चतुर शकार वसन्तसेना को जीवित

१- डा० गिरीश रस्तोगी - हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन पृ० ४०

देखकर भयभीत हो भागने का प्रयत्न करता है पर बन्दी हो जाता है। अन्त में चारुदत्त से अपने दुष्कृतों के लिए क्षमा माँग कर मुक्त हो जाता है।

संस्कृत के नीतिपरक कथा साहित्य जैसे "हितोपदेश", "पंचतंत्र", "वैताल-पंचविंशतिका" आदि में भी खलपात्रों का स्वरूप चित्रित हुआ है। इन कथाओं की शैली रोचक होने के साथ साथ विचित्र भी है। लेखक ने प्रतीकात्मक कल्पना विधान द्वारा समाज के रोगों का उद्घाटन किया है। पंचतंत्र में पशु-पक्षी अथवा कीट पतंगादिकों में भी मानवीय संवेदनाओं का ही प्रामुख्य है। "गौरवपूर्ण, पवित्र तथा सफल जीवन व्यतीत करने के लिए वैयक्तिक नीति के क्षेत्र में शरीर की क्षणभंगुरता, सत्यभाषण, वाग्मिता, बाहुल्माधुर्य, श्रम, दम, विवेक, विद्वत्ता, विद्या का महत्व, विज्ञ तथा साधन, तेजस्विता, मनस्विता, उद्योग, परोपकार, धैर्य, वीरता, धर्म, भक्ति, विनय, क्षमा, दया, उदारता, शील और संतोष की उपादेयता पर विशेष बल दिया है। इसके विरुद्ध विकत्थन, अन्तत अनृत तथा कटुभाषण पैशुन्य, वाचालता, अविवेक, मूर्खत्व, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मात्सर्य, कार्पण्य, आलस्य, कृतघ्नता तथा स्वार्थ के परिहार की प्रेरणा की गई।"[1]

"पंचतंत्र का तीसरा तंत्र छल छिद्रों और कूटनीति का अखाड़ा है। एक से एक भयंकर स्वभाव वाले क्रूरकर्मा पात्र इसमें आते हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन अपनी तृष्णा, इच्छा और लालसा की पूर्ति के लिए दूसरे को समूल विनाश करने में ही बीतता है जिन्हें रात दिन यही चिन्ता रहती है कि अभी मेरा एक शत्रु जी रहा है।"[2] इसमें कौए और उलूक के षड्यंत्रकारी स्वभाव का चित्रण प्रतीकात्मक है।

इस प्रकार दुर्जन स्वभाव के चित्रण की परम्परा आगे बहुत दूर तक जाती हुई दिखाई देती है। वैराग्यपरक सिद्ध, जैन काव्य की परम्पराओं में तथा हिन्दी के भक्तिकाव्य तथा नीतिकाव्य में इसका विस्तार हुआ।

बौद्ध जातक कथायें जो प्रायः २००० वर्ष पूर्व की हैं और भगवान बुद्ध के उपदेशों से संबंधित हैं मुख्यतः गद्य में धर्म की दृष्टि से लिखी गई हैं। इन कथाओं में पात्रों का संबंध मानव से ही नहीं पशुपक्षी से भी है। उनमें केवल महान व्यक्तियों का ही नहीं वरन् सर्वसाधारण के सामयिक जीवन का यथार्थ चित्र अंकित है। इन जातक कथाओं में भी किसी न किसी रूप में खलपात्रों का वर्णन मिलता है। नन्द जातक

१- डा० रामस्वरूप शास्त्री-रसिकेश - हिन्दी में नीति-काव्य का विकास -पृ० ७३

२- अनु० राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री - पंचतंत्र की कहानियाँ - निवेदन पृ० २१

कथा में एक ऐसे ही खलपात्र नन्द नौकर का वर्णन मिलता है जो मालिक पुत्र के पूछने पर कि धन कहाँ है वह दुष्टता पूर्वक उत्तर देता है -"अरे दासी पुत्र ! चेटक ! यहाँ तेरा धन कहाँ से आया ?" उसके इस उत्तर से नन्द नौकर की खलता स्पष्ट प्रगट हो जाती है जो धन के अभिमान में कुमार को गाली देता है । मालिक के पुत्र के साथ विश्वासघात करता है ।"

पाली साहित्य में त्रिपिटक की रचना हुई जिसमें भगवान बुद्ध के ~~य~~ उपदेश संकलित हैं । भगवान बुद्ध के उपदेशों के माध्यम से सत् एवं असत् आचरण की विशिष्टताओं एवं न्यूनताओं का चित्रण किया गया है ।

सिद्ध साधना पूर्णतया व्यक्ति पर केन्द्रित थी । अत: साधक के सदाचार और दुराचार की पद्धति का निर्देश विशेष रूप से किया गया । इस दृष्टि से मिथ्या साधक सिद्धों के व्यंग्य के लक्ष्य रहे जो केवल घंटा बजाकर,मूड़ मुड़ा कर,मंत्र पढ़कर या गंगा स्नान करके सत्वसिद्धि की कामना करते थे । चित्त की शुद्धि पर बल देते हुए उन्होंने विकारग्रस्त मन की तुलना करभ (ऊँट) से की है, और एक ओर अवधूत को सदाचार का आदर्श रूप मानते हुए ढोंगी साधुओं के उपहास का विषय बनाया है ।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल संघर्ष, अशांति और उथल-पुथल का युग था । यह संघर्ष एक ओर तो परस्पर हिन्दू राजाओं का था दूसरी ओर मुस्लिम आक्रमणकारियों से था । बीसलदेव रासो,हम्मीर रासो आदि रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण के साथ मुस्लिम आक्रमणकारियों के वैमनस्य का भी चित्रण मिलता है । मुस्लिम राजाओं के साथ द्वंद्व होने पर चारण लोग अपने राजा की प्रशंसा या शत्रु की निन्दा करते थे,इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में एक विदेशी समाज सम्पर्क में आ रहा था जिसके प्रति हिन्दू संस्कृति सशंक थी । हम्मीर रासो में अला-उद्दीन और हम्मीर के साथ संघर्ष का वर्णन है । अहंकारी अलाउद्दीन और विश्वासघाती रतिपाल खल के रूप में आये हैं । अलाउद्दीन हम्मीर से शरणागत शाह मंगोल की रक्षा न करने और अपनी कन्या देने की बात कहता है जो उसकी खलता का प्रतीक माना गया है ।[१]

१- भाल मुलक चारो लिखौ,कहै शाह बहु लिख्यिए ।
फरमान बाँचि किय राव तुम और हमारी दिख्यिए ।। छन्द सं० ३२०

बीतिराव हम्मीर बौरि गढ़ धूरि मिलाऊँ ।
हतो जो न अब करूँ तौ न पतसाह कहाऊँ ।। हम्मीररासो छन्द सं० ३६२

फलत: यह मुसलमान आक्रमण कर्ता दुष्टता, कामातिरेक, मद्यपान, विलास और क्रूरता से युक्त दिखाये गये हैं । विद्यापति की कीर्तिलता में उनके इस स्वरूप का विस्तृत चित्र मिलता है । [१] विद्यापति ने शराब पीकर मतवाले " अबे बे " तथा गाली से युक्त भद्दी भाषा बोलने वाले, नशे से प्रमत्त होकर विवेकहीन होकर क्रोध करने वाले न्याय के नाम पर अन्याय करने वाले, तथा जिह्वा के स्वाद के लिए मतवाले, धार्मिक उपवास करने वाले, जबरदस्ती बेगार पकड़ने वाले, हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले तुर्कों का बड़ा सजीव चित्रण किया है -" हिन्दुहि गोट्ठओ गिलिए हल, तुरुक देखि होब भान । "

हिन्दी के भक्ति काल का समय लगभग सन् १३५० से १६५० माना जाता है । मुस्लिम आक्रमणकारियों से लोहा लेने में असमर्थ जनता ने भक्ति का आश्रय लिया था । भगवान का सर्वसमर्थ और पूर्ण ब्रह्म रूप ही ऐसा था जो उनमें आशा का संचार कर सकता था और संघर्ष की शक्ति दे सकता था । भक्तिकाल में कबीर, सूर, तुलसी और जायसी आदि कवियों की मूल प्रेरणा आध्यात्मिक अनुभूति थी जो पुण्य और पाप

१- अबे बे भणंता सराबा पिबन्ता

+ + +

अति गह सुमर ओदार जार से मांग क गुराडा ।
बिनु कारणहि कोहार बदन तातल तमुराडा ।
तुरुक तोखारहिं चलल हाट भमि हेडा मगइ ।
आडी डीढ़ि निहारि दवलि दाढी थुक्काबइ ।।
सब्बस्स सराब शराब कह ततव कबाबा करम ।
अविवेक करीबी कब्बो का पाहा पश्चा से से मम ।।
अमण खाइ से माग माग रिसिआइ खाण है ।
दौरि बीरि जिब धरिस धमिण सालण अर्ण मर्ण ।।
पचिश मेवाला साइ बाइ मुहु मीबर अबरी ।
हण कक थुप मे रक्ख गारी गाडु दे सब की ।। द्वितीय पल्लव

२- मखदूम मरावह दोम क्वो साथ दवस दव मारवो ।
जुम्मकारी कुकुमक्वो का कने वो बोल्परारिहा ।।

+ + +

धानु तुरुक तुरक
बाट बाडते बेगार धर ।।
धरि आनए बाभन बटुआ
मथा चढावए गाइक चुडुआ ।।
फोट चाट जनउ तोड
उपर चढावए चाह घोर ।।
धोअडरि धाने मदिरा साँध
देउर भागि मसीद बांध ।।

की निर्णायिक बुद्धि लेकर चलती है । संत साहित्य में ज्ञान परोपकार, मन, वाणी और कर्म में साम्य ही साधुत्व का मुख्य लक्षण माना गया है । कबीर की साखी में संतों का लक्षण उनका निर्वैरी, निष्काम, प्रभु का प्रेमी और विषयों से विरक्त होना है।[1] कबीर ने जहाँ एक ओर निरभिमानता, प्रेम, सेवा आदि को साधु के गुणों में रखा वहाँ अहंकार, दूसरों का अहित करने को दुष्ट या असाधु के चारित्रिक गुण माना ।[2] नैतिक आदर्श की महत्ता को स्वीकार करते हुये कबीर कहते हैं कि शील के अन्तर्गत तीनों भुवनों के रत्न भरे पड़े हैं ।

सीलवन्त सबसे बड़ा सर्व रतन की खानि ।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥ [3]

कबीर उन अंधविश्वासों से भी समाज को मुक्त कर देना चाहते थे जिनसे लोगों का सारा जीवन व्यस्त रहा करता है । आचार को महत्व देते हुये कबीर ने वाणी की घातकता, मिथ्या कथन, अहंकार, क्रोध, कपट आदि को असाधु का लक्षण माना ।[4] संत काव्य में असाधु ही खलत्व का प्रतीक है जिसकी छाया उन्होंने शाक्तों में भी देखी थी।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संत काव्य में माया एक विशिष्ट प्रतीकात्मक खलपात्र के रूप में सामने आती है । इन संतों ने इसका मानवीकरण करके दुष्टता की राशि के रूप में प्रस्तुत करते हुये ठागिनि, व्यभिचारिणी, अन्धकरूपा, आकर्षणमयी, नागिन, पिशाचिनी, बाघिन, डाकिनी, डायन, नकटी, आदि नामों से सम्बोधित किया है

भोरि गोमड पुरिस मही
परन्तु देना एक दाम नहीं ॥
हिन्दु बोलि दुरावि निकार
चोटिआ तुरका मक्की मार ॥
कीर्तिलता - द्वितीय पल्लव

१- निरबैरी निहकामता साँई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै संतनि कौ अँग एह ॥ (कं०ग्रं० २९, १ पृ० ५०)
२- साधु भया तो क्या भया बोलै नांहि बिचारि
हतै पराई आतमा जीभ बांधि तरवारि ॥१५॥ (कं०ग्रं० पृ० १८७
३- कबीर ग्रन्थावली
४- जहाँ क्रोध तहँ काल है - कबीर ग्रं० साखी पद ३३ , पृ० १६०
+ + +
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत -कं०ग्रं० पं०सं० ५०, पृ० १६२

वह भोले भाले व्यक्तियों को आकर्षित करती है । वह त्रिगुणात्मिका है ।[१] और " मुख कड़ियाली कुमति की, कहनदेई राम " वह तृष्णा रूपा है और अज्ञान का प्रतीक है । कबीर ने माया के प्रतीक रूप में नारी का चित्रण किया ।[२] संत काव्य में संतों ने माया के समान नारी को त्याज्य, निंदनीय एवं दुखों की खान माना है । नारी भगवत भजन के मार्ग में बाधक है । नारी के होने से मनुष्य की भक्ति, मुक्ति और ज्ञान तीनों असम्भव हो जाते हैं ।[३] नारी वासना को उत्पन्न करती है । नारी नरक का कुंड है[४] विरले ही साधु इस माया रूपी नारी से मुक्त हो मोक्ष को प्राप्त होते हैं । नारी का सम्पर्क बुद्धि और विवेक का अपहरण करता है ।[५] इस प्रकार संतों ने नारी को मोक्षमार्गी की दृष्टि से देखा और उसके यौनि मात्र अस्तित्व को त्याज्य मानकर एक तरह से दुर्बलताओं का प्रक्षेपण उसमें कर दिया । संत काव्य में नारी का खलत्व इस प्रकार एक दृष्टि है प्रमाणित सामाजिक तथ्य नहीं ।

रामकाव्य तथा कृष्ण काव्य में क्योंकि पौराणिक कथानकों को अपनाया गया इसलिए राक्षस वर्ग ही खलपात्रों के प्रतीक रूप में सामने आते हैं तुलसी ने बालकांड में स्पष्टीकरण करते हुये कहा है कि खल ही राक्षस है -

> बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ।
> मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ।
> जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ।

तुलसीदास के राम चरित मानस में सत् पात्रों के साथ साथ असत् पात्रों का भी सजीव वर्णन मिलता है । राम के प्रतिद्वंद्वी के रूप में रावण को खल चित्रित किया गया है । कुम्भकर्ण, कैकेयी, मंथरा, मेघनाद आदि अन्य असत् पात्र हैं । ये नीति विरोधी काम करते हैं । तुलसी दास ने रामचरित मानस के बालकांड में ही खलपात्रों के चरित्र का

१- कबीर ग्रन्थावली पद्य ११ पृ० २२६

२- माया मोह का बीजला, उन बन्धे सब लोग ।
झूठे झूठ बियापिया कबीर अलख न लखई कोय । " कबीर "
रजगुण तमगुण सतगुण कहिये यह सब तेरी माया । कबीर
कबीर माया मोहिनी, जस ज्यु पाता पानि
कोई एक जन ऊबरे, जिनि तोड़ी कुल की कानि ।।१७।। क०ग्र० साखी १७ पृ० २३७

३- नारि नसावै तीनि सुख, जो नर पासै होई।
भगति मुकति निज ग्यान मैं पैसि न सकई कोई।।७।। क०ग्र० पृ० २३२

४- नारि कुंड नरक का, बिरला थाम बागि
कोई साधू जन ऊबरै, सब जग मुवा लागि ।।१६।। क०ग्र० पृ० २३३

५- नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै ।
काहे गवावै देह, कारिज कोई ना सरै ।।५।। क०ग्र० पृ० २३२

उद्घाटन करते हुये कहा है -

जे परदोष लखहि सहसाखी परहित घृत जिनके मन माखी ।

पर अकाज लगि तनु परिहरहीं जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं ।।[१]

तुलसीदास ने रामचरित मानस में रावण को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। रावण की राक्षसी प्रवृत्ति से त्रस्त ऋषि-मुनियों की सहायतार्थ ही राम को जन्म लेना पड़ा ।[२] नैतिक एवं धार्मिक दृष्टि से वह असत् तत्त्व एवं तामसी प्रकृति का था । उसकी यह असत् शक्ति अपने प्रतिद्वंद्वी राम से किसी प्रकार कम नहीं थी उसमें असीम बाहु बल था ।[३] अन्तर सिर्फ इतना था कि उसका प्रत्येक काम अधर्म, असत्, अनीति एवं अनाचार पर अवलम्बित था "सपनेहु जिनके धरम न दाया" और "जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला सोई सब करहि वेद प्रतिकूला ।" रावण और उसके वर्ग ने तपस्वी मुनियों को भी खा डाला था जिनका अस्थि समूह राम को शरभंग आश्रम के बाद मिला था ।

रावण की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुये कवि कहता है -

चलत दसानन डोलति अवनी । गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी ।
रावन आवत सुनेउ सकोहा । देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ।।
दिगपालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ।
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी । देइ देवतन्ह गारि पचारी ।
रन मद मत्त फिरइ जग धावा । प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ।।
रवि ससि पवन बरुन धनधारी । अगिनि काल जम सब अधिकारी ।
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा । हठि सबही के पंथहि लागा ।।[४]

इन पंक्तियों से उसके पराक्रम और साहस के साथ साथ उसके अहंकार, क्रोध, दम्भ तथा आत्मश्लाघा आदि चारित्रिक तत्त्वों का पता चलता है । अपने असीम बल के विश्वास की भूमि पर उसके दुर्गुण स्थित है । मिथ्या अहंकार के बल पर ही वह सीता का हरण करता है और राम के साथ संघर्ष करता है ।सत् की जय और असत् के पराभव को दृष्टि में रखकर ही तुलसी ने रावण की शक्ति का सृजन किया है ।

१- रामचरित मानस बालकाण्ड दोहा - ४
२- बालकाण्ड १८६-१८७
३- बालकाण्ड १७६,१८२
४- रामचरित मानस बालकाण्ड दोहा १८१

तुलसी ने असामाजिक कार्य और " अपने फैलाये हुए रागद्वेष के ताने बाने में लपट कर परिवार की सम्पूर्ण शान्तिपूर्ण व्यवस्था को भंग कर देने में जी जान से संलग्न "[१] दुष्ट पात्रों के रूप में मंथरा और कैकेयी को चित्रित किया है ।

कृष्ण काव्य में सूर आदि ने अघासुर, काग, शकट, तृणावर्त, बक, धेनुक, प्रलंब, केशी, पूतना, शिशुपाल और कंस आदि की राक्षसी प्रकृति का चित्रण किया है । "सूरदास ने कंस को कृष्ण कथा का एक प्रकार से प्रतिनायक मानते हुये भी उसके चरित्र में पौरुषपूर्ण महत्ता का चित्रण न करके उसकी क्रूरता और कठोरता का मूल कारण उसकी आशंका और भय ही बताया है ---- / 'कंस के व्यक्तित्व में भय, चिन्ता, व्यग्रता और आशंका की मानो सजीव मूर्ति उपस्थित की गई है ।[२] कंस स्वभाव से क्रूर, निर्दयी एवं घमंडी था । अपनी बहन देवकी के आठवें पुत्र से अपनी मृत्यु की बात सुनकर वह वसुदेव, देवकी को कैद कर लेता है और उनके सभी पुत्रों को मार डालता है ।[३] कृष्णवध के लिए वह पूतना, श्रीधर, काग, शकट, वामन, तृणावर्त आदि अनेक असुरों को भेजता है । उसका साधन छल बल है । कागासुर से वह कहता है -"छल बल करि मम कारज करौ । " ये राक्षस मायावी हैं । पूतना सुन्दर नारी का रूप धारण कर स्तन में विष लगाकर बालघातिनी के रूप में प्रस्तुत होती है ।[४] बकासुर बक का रूप धारण कर आता है । तृणावर्त राक्षस आँधी का रूप धारण कर आता है और कृष्ण को उड़ाकर ले जाता है ।[५] अनेकानेक राक्षस कृष्ण को मारने के लिए विविध रूप धारण कर आते हैं पर सब पराजित होते हैं अन्त में दुष्ट कंस को भी अपने दुष्कृत्यों का दंड मृत्यु के रूप में प्राप्त होता है ।

१- डा० राम कुमार पाण्डेय - रामचरित मानस: काव्यशास्त्रीय अनुशीलन पृ०२३१
२- ब्रजेश्वर वर्मा - सूर मीमांसा पृ० २२१
३- यह सुनि कंस पुनि फिरि मांग्यौ, इहि बिधि सबनि संहारौ
(सूरसागर दशमस्कन्ध पदसं० ४)
४- कुच विष बांटि लगाइ कपट करि-बाल-घातिनी परम सुहाई - पदसं० ५०
मुख चूम्यौ अरु कंठ लगायौ, विष लपटयौ अस्तन मुख नाई ।। पदसं० ५१
५- अति विपरीत तृनावर्त आयौ
बात-चक्र मिस ब्रज ऊपर परि, नंद पौरि के भीतर धायौ
पीढि स्याम अकेले आंगन, लेत उड़यौ आकास चढ़ायौ । वही पदसं० ७७

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि तुलसी और सूर ने अपने दुष्ट प्रतिनायकों की अंतिम परिणति को दिखाने से पूर्व ही लोकमत के रूप में भी उनके दंड का विधान किया है। समसामयिक समाज उन्हें भय ही नहीं घृणा की दृष्टि से भी देखता है। मानस में धेनुरूप पृथ्वी जो रावण तथा उसके परिवार के अत्याचार की शिकायत लेकर देवताओं के पास जाती है लोकमत का ही प्रतीक है।

जायसी के पद्मावत में जहाँ एक ओर कामांध और मदांध अलाउद्दीन खल पात्र के रूप में आता है वहाँ दूसरी ओर राघव चेतन है जिसके संबंध में आचार्य शुक्ल का कथन है " राघव चेतन एक वर्ग विशेष का उसी प्रकार प्रतिनिधि ठहरता है जिस प्रकार शेक्सपियर के 'वीनिस नगर का व्यापारी' का 'शाइलाक'।"[१] मिथ्या पांडित्य प्रदर्शन उसके दुष्ट चरित्र के मूल में है "वह भूत,प्रेत,यक्षिणी की पूजा करता था। उसकी वृत्ति उग्र और हिंसात्मक थी। कोमल और उदात्त भावों से उसका हृदय शून्य था। विवेक का उसमें लेश न था। वह इस बात का मूर्तिमान प्रमाण था कि उत्तम संस्कार और बात है,पांडित्य और बात। हृदय के उत्तम संस्कार के बिना श्रेष्ठ आचरण का विधान नहीं हो सकता।"[२] अविवेकी राघव चेतन में अपने राजा के प्रति कृतज्ञता का भाव नहीं है। वह जिसका खाता है उसी का अनिष्ट करने की सोचता है। रत्नसेन द्वारा देश से निकाले जाने की बात सुनकर "उसके हृदय में हिंसावृत्ति और प्रतिकार वासना के साथ ही साथ लोभ का उदय हुआ।"[३] उसने स्वामी की पत्नी पद्मिनी पर कुदृष्टि रख कर ही घोर अविवेक का परिचय दिया। धन का लोभी राघव चेतन अपने अपमान का प्रतिकार करने के लिए दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन से जा मिलता है और पद्मिनी के रूप की प्रशंसा कर उसे चित्तौर पर चढ़ाई करने की प्रेरणा देता है। चित्तौर गढ़ में पहुँच कर वह अलाउद्दीन की मदद करता है। अपने

१- रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली पृ० १६६

२- रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली पृ० १६६

राघव पूजि जाखिनी,दुइज देखाएसि साँझ।
बेद-पंथ जे नहिं चलहिं ते भूलहिं बन माँझ ।।२।। पृ० २२६

३- रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली पृ० १६६

पूर्व स्वामी रत्नसेन को गिरफ्तार करवाने में उसकी निर्लज्जता और विश्वासघाती प्रवृत्ति की चरमसीमा दिखाई पड़ती है । शुक्ल जी का विचार है कि " यदि पद्मावत के कथानक की रचना सद्सत् के लौकिक परिणाम की दृष्टि से की गई होती तो राघव का परिणाम अत्यन्त भयंकर दिखाया गया होता । " [1]

अहंकारी अलाउद्दीन राघव चेतन से पद्मिनी के रूप सौन्दर्य की बात सुनकर चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई कर देता है और छलपूर्वक राघव चेतन के इशारे पर वह रत्नसेन को गिरफ्तार कर दिल्ली ले जाता है। [2] "माया अलाउद्दीन सुलतान्" से उसके असत् चरित्र का आभास मिलता है । किसी की ब्याही स्त्री माँगना धर्म और शिष्टता के विरुद्ध है । " [3]

रीतिकाल में हमें तीन धारायें खल निरूपण की दृष्टि से दिखाई पड़ती है । एक धारा के प्रतिनिधि भूषण है जो मुस्लिम शासक औरंगजेब को प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत करते है और उसके छल,कपट,अत्याचार और दुर्बलता का बहुविध अंकन करते हैं । ऐतिहासिक तथ्यों और देशभक्ति के भाव का अद्भुत सम्मिलन प्रस्तुत करते हुए भूषण औरंगजेब अफ़ें-भर्दे के व्यक्तित्व को अंकित करते हैं । वह धर्मान्धता में देवालयों को नष्ट भ्रष्ट करता है । उसके भय के कारण साधु संत दिखाई नहीं पड़ते । काशी और मथुरा जैसे धार्मिक स्थान भी विनाश का स्वरूप बन गये हैं ।[4] औरंगजेब अपने भाई दारा का पिता को कैद कर स्वयं राजा बना है । भाई मुरादबख्श के साथ विश्वासघात न करने की कसम खाता है पर उसका पालन नहीं करता । भूषण कवि औरंगजेब को निर्दयी,कुकर्मी एवं हत्यारा कहते हैं ।[5] बुजदिल डरपोक औरंगजेब जब शिवाजी को आगरे के किले में मिलने को बुलाता है तब हजारों मनसबदारों और मुल्ला और स्वाभिमान सरदारों के खड़े रहने पर भी वह स्नानागार में भेंट करता है।दुष्ट औरंगजेब शिवाजी को बुलाकर उनका अपमान करता है। उसका चरित्र छल,कपट,धोखा, दुराव,विश्वासघात आदि बुराइयों का समूह है । [6]

१- रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली पृ० १६०
२- कुकुर की जूठी अधर पर जो मति के रख लीन ।।२२।। जाग्र० पृ० २६४
३- रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रंथावली पृ० १७२
४- भूषण - शिवबावनी छन्द सं० १८
५- भूषण - शिवबावनी छन्द सं० १२-१३
६- भूषण - शिवबावनी छन्द सं० १४

औरंगजेब के अत्याचार का वर्णन करते हुये भूषण कवि उसको कुंभकर्ण का अवतार बताते हैं -

कुंभकर्न असुर औतारी अवरङ्गजेब ।
कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की ।
खोदि डारे देवी-देव देवरा महल्ला बाँके ।
लाखन तुरुक कीन्हे छुटि गई तब की ।।
'भूषण' भनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ ।
और कौन गिनती में भूली गति भव की ।।
चारों वर्न धर्म छोड़ि कलमा निवाज पढ़ि ।
सिवा जी न होतो तो तौ सुनति होति सब की ।।[१]

जिस प्रकार दैत्य लोग यज्ञादि विध्वंस कर देते थे उसी प्रकार इस युग में औरंगजेब मंदिरों को विध्वंस करता था ।[२]

रीतिकाल का प्रतिनिधि काव्य रीतिकाव्य है अर्थात जिन रचनाओं में काव्यशास्त्रीय दृष्टि को लेकर नायक और नायिका भेद का निरूपण हुआ है । इस निरूपण का प्रमुख आधार श्रृंगार है अर्थात समस्त व्यक्तित्व और व्यापारों की योजना कामवृत्ति के आधार पर होती है । नायिका निरूपण को यदि हम देखें तो परम्परा में उसकी दो धारायें रही हैं एक तो भक्तिपरक दूसरी लौकिक । रीतिकालीन कवियों ने प्रायः इन दोनों ही धाराओं का एकीकरण कर दिया ; यह कह कर कि "माया देवी नायिका नायक पुरुष आप(देव) अथवा आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई न तरु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।" इस विलास प्रिय युग में यद्यपि परकीया का विस्तृत और भावुक निरूपण हुआ तथापि उल्लेखनीय यह है कि रसलीन को छोड़कर किसी भी कवि ने सामान्या का विस्तृत वर्णन नहीं किया । भिखारी दास ने तो कुलटा को छोड़ ही दिया है । इससे स्पष्ट है कि इस युग के कवियों के पास भी एक सामाजिक दृष्टि थी जो सत् और असत् का विवेक करने में समर्थ थी । नायिका के आठ गुणों में इन्होंने न केवल यौवन,रूप,आभूषण को आवश्यक माना है वरन शीलकुल

१- भूषण - शिवाबावनी - छन्द संख्या २२ पृ० २०

और प्रेम को भी अनिवार्य माना है । सामान्या नायिका में परकीया की चरम सीमा ही नहीं बल्कि उसका निकृष्टतम भयावह स्वरूप भी मिलता है । धन के लिए वह पर पुरुष से प्रेम का ढोंग करने वाली बाजारू स्त्री को सामान्या, गणिका या वेश्या कहते हैं । सामान्या की स्थिति स्त्री जाति के लिए कलंक है ।[१]

सामान्या नायिका किस प्रकार चतुरता पूर्वक दूसरों से धन प्राप्त करती थी यही कला सीखने के लिए प्राचीन समय में लोग वेश्याओं के घर जाते थे ।[२]

रसलीन कवि अपने रस प्रबोध काव्य में सामान्या नायिका के चरित्र को उद्घृत करते हुये कहते हैं -

> नाँचति है, गावति है रीझति, रिझावति है ।
> सीखेहो कोघात, बात सुनति न जिय की ।।
> तन को सिंगारि नैन कज्जल सुधारि प्रति ।
> बार बार वारि प्रान, ऐसी रीति तिय की ।।
> भूधर सुकवि हेतु धन ही के बार-बुधु
> और न विचारै कछू, चहै बात जिय की ।।
> लाल चाहै जिय सों के बाल मैरे जिय लागै ।
> बाल चाहै जिय सों, के माल लीजे पिय की ।।[३]

सामान्य स्त्री नायक के रूप, गुण प्रेम आदि से प्रभावित नहीं होती, वह तो अपने हाव, भाव, कटाक्ष से धनी पुरुषों का धन लूटने का स्वांग रचती हैं ।

कुलटा स्त्री कामवासना की तृप्ति के लिए अनेक पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करती है । [४] उसमें प्रेम की एकनिष्ठता का अभाव रहता है । वह निर्लज्ज होती है। उनका हाव-भाव, क्रिया-कलाप निम्नभाव का होता है । रहीम ने कुलटा का चरित्र चित्रित करते हुये कहा है -

> जस मदमातल हथिया हुमकत जाय ।
> चितवत छल तरुनिया मुह मुसुकाय ।।

१- प्रभुदयाल मीतल -ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद - पृ० १५१ द्वि०सं०
२- सामान्या बिन सील कुल प्रेम किनो पहिचानि-भवानीविलास देव पृ० १५
३- रसलीन-रसप्रबोध प० सं० ३३६
४- जो चाहत बहु नायकनि सरस सुरति पर प्रीति-मतिराम छं० ७८ रसराज पृ० ६

अपने प्रियतम के हित करने पर भी उसके साथ मान करने वाली नायिका को 'अधमा' कहते हैं । अधमा नारी के चरित्र का चित्रण पद्माकर, मतिराम और बिहारी आदि ने किया है । बिहारी लाल अपने ग्रन्थ बिहारी सतसई में अधमा नारी के चरित्र को उद्धृत करते हुये कहते हैं -

रही पकरि पाटी, सु रिस भरैं भौंह चितु नैंन
लखि सपनै प्रिय आन-रति, जगतहु लगत हियैं न । [1]

+ + +

ज्यों ही ज्यों पिय हित करत त्यों त्यों परति सरोस । [2]

इस प्रकार इस युग के नायिका भेदकाव्य में सामान्या, कुलटा और अधमा को खल पात्र की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

जहाँ तक पुरुष नायक का उल्लेख मिलता है उनके शठ, धृष्ट आदि खल की श्रेणी में आते हैं । बिहारी, मतिराम, देव, केशव आदि ने नायक नायिका भेद में शठ नायक को खल वेश में चित्रित किया है । मतिराम शठनायक के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि जो नायक किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त होकर प्रकृत नायिका को छल पूर्वक भुलावे में डाल अपना अपराध छिपाए रखता, तथा अपनी कार्यसिद्धि के लिए मीठी मीठी बातें बनाता है और नायिका के प्रति अनुकूलता भी दिखाता है उसे शठ नायक कहते हैं

जैसे - मोते तो कछु न अपराध पर्यो प्रान प्यारी
मान करि रही यों ही कहि के अरसते हू [3]

धृष्ट नायक को भी खल की कोटि में रखा गया है । जो बार बार दोष करने पर भी निशंक रहे तथा मना करने पर भी अनुनय करने में चतुर हो उसे धृष्ट नायक कहते हैं ।

करै दोष निरसंक है डरै न पिय के मान ।
लाज धरै मन में नहीं नायक धृष्ट निदान ।। [4]

१- बिहारी-दोहा सं० ५१०
२- पद्माकर-जगद्विनोद पद्यसं० २७८ पृ० ३६
३- हरिशंकर शर्मा- रस रत्नाकर पृ० ६३
हैरै करै अपराध की करै कपट की प्रीति
वचन क्रिया में अति चतुर शठ नायक की रीति । मतिराम -दोहा ५३
४- मतिराम - रसराज दोहा ५० पृ० सं० ३०

इस प्रकार रीति काव्य में खलता की रूपरेखा कामवासना के आधार पर निर्मित है। काम शठ नायक और धृष्ट नायक एवं दूती, कुलटा, सामान्या को निर्लज्ज, दुस्साहसी और कपटपूर्ण व्यक्तित्व देता है। इस युग के शृंगारी कवियों ने इनका चित्रण और वर्णन तो अवश्य किया है किन्तु अनेक स्थलों पर इनके व्यवहार के कारण सामाजिक अमंगल के प्रति कवियों की अनादर की भावना ही व्यक्त हुई है।

रीतिकाल के कवि की व्यवहारिक दृष्टि बड़ी पैनी थी। वृंद, गिरधर दीनदयाल आदि नीतिकाव्यकारों ने सज्जन[1] - दुर्जन[2], औछे-बड़े, सुसंग-कुसंग, सद्गुण-दुर्गुण आदि पर बड़े चुभते हुये ढंग से प्रकाश डाला है।

भलौ न होवै दुष्ट जन, भलौ कहै जो कोय।
विष माधुरी मीठौ लवन, कहे न मीठौ होय।[3]

इस छोटे से दोहे में वृंद कवि ने दुष्टता को मूलभूत प्रकृति के रूप में मानकर असज्जनता का रूपांकन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खलपात्रों के निरूपण की साहित्य में एक विस्तृत परम्परा रही है। इस परम्परा में भारत की सांस्कृतिक दृष्टि की विशेष रूप से अभिव्यक्ति होती है। समाज में बुरे काम करने वाला, समाज का अमंगल और अहित करने वाला असत्, दुष्टता, कपट, प्रपंच, आदि से युक्त या कम शब्दों में कहें तो काम, क्रोध, मद, लोभ मोह का आगार जो व्यक्ति है वह असत् है खल है- ऐसी धारणा निर्धारित की गई जो हमें ऋग्वेद से लेकर समस्त वाङ्मय में फैली हुई दिखाई पड़ती है।

नाट्य शास्त्र के अभ्युदय के साथ यही दृष्टि सैद्धान्तिक रूप धारण करके अवतरित होती है और प्रतिनायक का स्वरूप निर्धारित होता है। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि सत् का पराभव नहीं देखना चाहती। असत् का पराभव

१- सज्जन तजत न सज्जनता, कीन्हेहु दोष अपार।
ज्यों चन्दन छेदै तऊ, सुरभित करहि कुठार। १७५

२- दुष्ट न छाड़े, दुष्टता, पोषै राखै ओट।
सरपहि कैसो हित करो, चुपै चलावै चोट।। १७६ वृंद सतसई पृ० १९

३- वृंद सतसई प० सं० १७५ पृ० २३

और सत् की विजय ही उसका चरम उद्देश्य है। यही कारण है कि संस्कृत में दुखान्त नाटक का अभाव है तथा महाकाव्यों के नायक का स्वरूप धीरोदात्त रखा गया। सत् सदा विजयी है, असत् सदा पराजित होता है। यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की दृष्टि एक सीमित या एकांगी दृष्टि होती है जो मानव-मन को अनुदार और सामा-हीन दृष्टि से देखती है। किन्तु इस दृष्टि में लोक मंगल का समावेश साहित्य का चरम लक्ष्य माना गया है यह कहना अनुचित न होगा। भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में काव्य और लोक मंगल का घनिष्ट संबंध मान्य रहा।

मुगल शासन का पतन तथा अंग्रेजी शासन की एकछत्र स्थापना भारतीय सांस्कृतिक जीवन में एक नूतन युग लेकर अवतरित होती है। पाश्चात्य सभ्यता और साहित्य का सम्पर्क मध्ययुग की रूढ़ियों और परम्पराओं पर आघात करता है। साहित्य-भाषा बदलती है नई शैलियों का विकास होता है। इतना ही नहीं नूतन विचारों और भावों का ग्रहण होता है। चली आती हुई परम्परायें कुछ दूर तक चलती हैं किन्तु धीरे धीरे पिछड़ने लगती हैं जैसे कि भाषा के क्षेत्र में या मानव मनोविज्ञान के क्षेत्र में। "कु" और "सु" के निर्धारित मानदंड आगे चलकर धीरे धीरे अर्थहीन से होने लगते हैं क्योंकि मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण विज्ञान मनुष्य के व्यक्तित्व की परख उसकी परिस्थितियों और वातावरण की सापेक्षता में करता है। प्राचीन और मध्यकालीन भारत की नैतिक दृष्टि खलता या असतता को एक प्रकृतिनिष्ट विशेषता मान कर अलग हो जाता था किन्तु आधुनिक दृष्टि उस मानदंड को स्वीकार न करके और गहराइयों में जाना चाहती है कि यदि कोई बुरा है तो क्यों बुरा है, उसकी क्या मजबूरियाँ हैं, कौन सी परिस्थितियाँ उसे वैसा होने के लिए प्रेरित कर देती हैं और यदि वैसी परिस्थितियाँ न होतीं तो क्या वह भी अच्छा हो सकता था, इसकी सम्भावना लेकर चलता है। यह दृष्टि खल के लिए भी एक उदार और सहानुभूति पूर्ण रुख बना देती है। खल को खल बनाकर नहीं छोड़ती उसके अन्तर्मन में होने वाले घात-प्रतिघात का उद्घाटन करती है तथा उसके करुण और कोमल पक्ष को भी सामने लाती है।

इसी में मानव मन के परिवर्तन और सुधार की सम्भावनायें भी निहित हैं अतः हम देखते हैं कि आधुनिक दृष्टि का आरम्भ वहाँ से होता है जहाँ सुधारवादी तत्वों का समावेश हुआ। निश्चय ही सुधारवादी दृष्टि के पीछे १९वीं और २०वीं शताब्दी के सुधारवादी आन्दोलनों की प्रेरणा थी और आगे चलकर जब लेखकों

की दृष्टि मानवतावादी और मनोविश्लेषणवादी दृष्टियों का समन्वय करती है तो समाज में गर्हित पतित,कुटिल और खल समझे जाने वाले पात्रों के ही सद् और श्रेष्ठ पक्षों का उद्घाटन हुआ है ।

(२ब) परिवेश और उसकी अनुगूंज

जैसा कि हम पीछे संकेत कर चुके हैं, लगभग १८ वीं शताब्दी से भारतीय राजनैतिक रंगमंच के रंग बदलने लगे थे और १८५७ में गदर के उपरान्त महारानी विक्टोरिया की घोषणा और लार्ड कैनिंग की वायसराय रूप में नियुक्ति से भारत के राजनैतिक इतिहास का सर्वथा नया युग आरम्भ होता है। सर्वथा नया कहने का मूल कारण यह है कि मुस्लिम शासकोंने, शासन शैली में कोई परिवर्तन नहीं किया था, वही एक तंत्रात्मक शासन, वही राजा या सुलतान और वही सामन्त-शाही। ब्रिटिश शासन प्रजातंत्र के विचार को लेकर अवतरित हुआ जो व्यक्तित्व की स्वतंत्रा को अवसर देता है। महारानी विक्टोरिया की घोषणा के उपरान्त पुलिस विभाग, न्यायालय, डाक तार की व्यवस्था की ओर भी शासन ने विशेष ध्यान दिया किन्तु अंग्रेजी शासन की स्थापना का सबसे बड़ा प्रतिफल था वैचारिक क्रान्ति। रूढ़िवादी अंधविश्वासी दृष्टियों पर एक गहरा आघात लगा, जब नई शैली की शासन नीति प्रचारित हुई। नये परिवेश में न तो वे धार्मिक आडम्बर और अंधविश्वास बहुत दिन ठहर सके और न मध्ययुगीन कूपमंडूपता पांडित्य की चरम सीमा मानी जा सकने में समर्थ रही। यह बात दूसरी है कि अंग्रेजों की शासन नीति का उद्देश्य भारत की भलाई नहीं था किन्तु फिर भी जैसा कुछ नया सम्पर्क था, नई व्यवस्था थी। उससे आचार विचार में परिवर्तन तो हुआ ही। इसलिए हम इस युग को अलग रख कर देखते हैं और उसे आधुनिक युग की संज्ञा देते हैं।

राजनैतिक परिस्थिति

उन्नीसवीं शताब्दी में १८५७ ई० के पूर्व भारत में कोई सुदृढ़ केन्द्रीय शासन नहीं था। मुगल साम्राज्य का अन्त हो चुका था। शासन का स्वरूप राजतंत्र तो

अवश्य था परन्तु यह बिखरा हुआ एवं अव्यवस्थित था । अनेक छोटे बड़े राजा - महाराजा सीमित प्रदेश पर अपने हित के लिए प्रजा पर मनमाना शासन करते थे । शासन प्रजा की भलाई , समाज की उन्नति एवं देश को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से नहीं वरन् स्वार्थपूर्ति के हेतु किया जाता था ।

अंग्रेज भारत में राज्य करने के उद्देश्य से नहीं वरन् व्यापार करने के लिए आए थे , परन्तु उन्होंने भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाकर अपनी कुशल कूटनीति द्वारा सम्पूर्ण भारत पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया । अंग्रेजों की नीति भारतवासियों को राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करने की बिल्कुल नहीं थी । फिर भी अंग्रेजों की अपनी ही नीति ने भारत में राष्ट्रीयता का भाव जगा दिया । सन् १८८५ ई० में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई । अंग्रेजों की शासन प्रणाली अत्यन्त कठोर, निर्दय एवं हिंसात्मक थी । भारतीयों को विचारों के अभिव्यक्ति की भी स्वतंत्रता प्राप्त न थी ।

१६२० से ३६ तक की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त संघर्षमय थी । ऐसी संघर्षमय स्थिति में अंग्रेज अधिकारी ही दल के रूप में उभरे है । दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि नेताओं ने जनता के मन में स्वतंत्रता की आवश्यकता का अनुभव कराया । भारत की सभी जातियाँ हिन्दू एवं मुसलमान विदेशी शासन समाप्त करने के लिए एक दूसरे के निकट आ गई । फलस्वरूप जनता के मन में विद्रोह की अग्नि अग्नि भड़क उठी । भारत के इस काल की राजनैतिक परिस्थिति के चित्र में हिन्दू मुस्लिम दंगे भी देखने को मिलते हैं ।

सामाजिक परिस्थिति :

औरंगजेब के समय में मुगल शासन उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुँच कर पतन की ओर अग्रसर होने लगा था । सामन्तवादी धन,वैभव और अधिकार की अपरिमित शक्ति से शासक विलासी बन गये थे । असंयमित जीवन,इन्द्रिय तृष्णा एवं मद्यपान की प्रचुरता से समाज में अनेक दोष उत्पन्न हो गए । समाज में बाल-विवाह,बाल-हत्या, सती-प्रथा,पर्दा-प्रथा,वाँलेमेद,आदि अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गई थीं । नारी की स्थिति बड़ी दयनीय थी । यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि हिन्दुओं का शारीरिक,

मानसिक और चारित्रिक रूप विकार ग्रस्त हो गया था । अतः वर्तमान स्थिति में हिन्दुत्व में कई ऐसे अवगुण उपस्थित हो गए थे , जिससे वह रुग्णप्राय हो रहा था । उसे एक ऐसे चिकित्सक या सुधारक की आवश्यकता थी जो उसे सदियों से पीड़ित दासता के बंधन से निकाल कर नए मार्ग को प्रशस्त करता ।

जातिवाद,रूढ़िवादिता स्त्रियों के अधः पतन की ऐसी स्थिति में अंग्रेजी शासन काल के साथ आने वाले शिक्षा प्रचार एवं समाज सुधार के वैधानिक प्रयासों ने सामाजिक वातावरण में नया युग आरम्भ किया । पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के माध्यम से एक ओर हमें ज्ञान मिला तो दूसरी ओर विज्ञान । शिक्षा एवं विज्ञान ने हमें बौद्धिक चेतना दी । जिससे भारत में सामाजिक जागरण की एक व्यापक लहर दौड़ गई । भारतीय समाज को बोध हुआ कि वह कितना पिछड़ा है । उसकी सामाजिक प्रथायें उसे पीछे की ओर ढकेलती थीं , जब कि बौद्धिक जागरण के कारण प्राचीन साहित्य और संस्कृति का गहन अध्ययन हुआ ।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया । सती-प्रथा बाल-विवाह,दहेज-प्रथा,अनमेल विवाह,वेश्या-वृत्ति आदि सामाजिक समस्याओं के मूल में आर्थिक कारण था जो समाज पर छाई हुई थी । इसके अतिरिक्त बहुविवाह, खानपान प्रतिबन्ध , समुद्र यात्रा के कारण जाति बहिष्कार ,नशाखोरी,पर्दा,स्त्रियों की हीनावस्था,धार्मिक साम्प्रदायिकता आदि अनेक कुप्रथाओं का चलन हो गया था । इन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है । समाज सुधारकों ने तत्कालीन समस्याओं को देखा और उन कुरीतियों का समाधान करने के लिए विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों को जन्म दिया -ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज,आर्य समाज थियोसाफिकल सोसायटी आदि । सन् १८२८ ई० में राजा राम मोहन राय ने समाज में प्रचलित कुरीतियों को दूर करने के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की । सुधारवादी आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को भी प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उच्चादर्शों से अवगत कराना था । राजाराम मोहन राय ने बहु-विवाह,बाल-विवाह,बहुमूर्ति पूजा आदि को दूर करने का प्रयत्न किया । सती प्रथा का विरोध किया और विधवा विवाह की माँग की । सन् १८२६ ई० में कलकत्ते में "वेदान्त कालेज " की स्थापना की । सन् १८२८ ई० में कौमुदी " नामक पत्र का सम्पादन किया । उनका उद्देश्य प्राचीन संस्कृति के प्रति

आस्था उत्पन्न करना और धर्म के वास्तविक रूप से परिचित कराना था । सन् १८६७ ई० में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई । इसके प्रवर्तक आचार्य न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे थे । इस संस्था का सर्वप्रमुख उद्देश्य जाति व्यवस्था को समाप्त करना, विधवा विवाह,नारी शिक्षा का प्रचार तथा बाल विवाह जैसी क्रूर प्रथा का निषेध करना था । सन् १८७५ ई० में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज में प्रचलित मतभेदों को दूर करने के लिए आर्य समाज की स्थापना की । जाति व्यवस्था का आधार जन्म न मान कर कर्म को माना । अछूत वर्ग की शिक्षा , नारी शिक्षा, विधवाविवाह एवं विदेशयात्रा को आवश्यक बताया । वेदों के पठन-पाठन का अधिकार सब को दिया गया । सन् १८८६ ई० में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई । इसके प्रवर्तक मैडमब्लावात्सकी और कर्नल आॅल्काट थे । इस संस्था की कार्यकर्त्री एनी बेसेन्ट ने हिन्दू धर्म की प्राचीन संस्कृति को श्रेष्ठ बताया ।

पाश्चात्य सभ्यता,संस्कृति और शिक्षा के कारण लोगों में बौद्धिक जागरण उत्पन्न हुआ जिससे जनता स्वयं समाज की बुराइयों को देखने लगी और सुधार के लिए प्रयत्नशील हुई । ऐसी स्थिति में नीतिपरक शिक्षा प्रद और सुधारात्मक उपन्यासों का जन्म हुआ ।

धार्मिक परिस्थिति :

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू धर्म का रूप अत्यन्त विकृत हो गया था । कर्मकांडियों ने धर्म को आडम्बर का रूप देदिया था । कुप्रथाओं और परम्परागत रीति-रिवाजों को धर्म की मान्यता प्राप्त हो गई थी । अंधविश्वास और अज्ञानान्धकार में डूबी हुई जनता अपने वास्तविक धर्म से विमुख हो रही थी । तीर्थ स्थानों में व्यभिचार,मठों में रंगरलिया और मंदिरों में देवदासियों का बोलबाला था । धर्म के रक्षक ब्राह्मण अपने उत्तरदायित्व को भूल गए थे । मूर्तिपूजा,वालिमेद,वर्णव्यवस्था आदि बुराइयों से रहित इस्लाम और ईसाई धर्म उनके लिए आकर्षण के केन्द्र बन गए थे ।

पाश्चात्य और पुनर्जागरण के इस युग में वेदान्त,गीता तथा हिन्दू धर्म की मूलभूत धारणाओं के प्रति शिक्षित समुदाय में एक नूतन आकर्षण उत्पन्न हुआ ।

राजाराम मोहन राय,केशवचन्द्रसेन,स्वामी दयानन्द,~~मदाम वालम~~,ब्लावात्स्की, कर्नल आल्काट,रामकृष्ण,परमहंस तथा विवेकानन्द आदि ने धार्मिक अंधविश्वास, छुआछूत,वर्णव्यवस्था,बाह्याडम्बर बहुमूर्तिपूजा तथा हिन्दुओं की अपने धर्म की ओर उपेक्षा भावना पर जोरदार व्यंग्य किया और उन कुरीतियों को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाये जो धर्म की आड़ में अव्यवस्था उत्पन्न कर रही थी । महात्मागाँधी ने धर्म के क्षेत्र में जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया वह था हरिजन उद्धार । मंदिरों का द्वार हरिजनों के लिए खोल दिया । व्यक्ति चरित्र के उन्नयन का महत्व सिद्ध किया । छुआछूत की भावना के कारण निम्न जाति की जनता अधिकाधिक संख्या में ईसाई धर्म को स्वीकार कर रही थी । गाँधी जी ने जनता को सब धर्मों में समानता[१] बता कर विधर्मी होने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया ।

आर्थिक परिस्थिति :

ब्रिटिश शासन व्यवस्था के प्रभाव से भारत की अर्थ व्यवस्था में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए । अंग्रेजी शासन व्यवस्था जैसे कार्यालयों , न्यायालयों, शिक्षालयों आदि की व्यवस्था के कारण क्लर्क,अफसर,डाक्टर,वकील,शिक्षक आदि के बहुत से नए रोजगार उदित हुए जिसके साथ मध्यवर्गीय समाज का उदय हुआ । यह वर्ग सामन्तों की भाँति शोषक वर्ग नहीं था । फिर भी निम्न वर्ग की दशा बिगड़ने लगी । अंग्रेजों की आर्थिक नीति ने यहाँ के कुटीर उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया और ग्रामव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया । भारत से कच्चा माल सस्ते दाम में खरीदने और इंगलैण्ड की मशीनों द्वारा वस्तुओं के क्रय विक्रय के लिए ही अंग्रेजों ने भारत में रेलों और यातायात के साधनों का आविष्कार किया । अंग्रेजों ने किसानों का विभिन्न प्रकार से शोषण किया । कलकारखानों के निर्माण से भारत के कुटीर उद्योग धन्धे जो किसानों,कारीगरों के जीविकोपार्जन के आधार थे नष्ट हो गए ।

१- ईश्वर अल्ला तेरहि नाम ।

अंग्रेजों ने जमींदारी प्रथा को प्रारम्भ किया । दुर्भिक्ष, अकाल और कठोर शासन नीति के कारण असहाय किसानों को महाजन की शरण लेनी पड़ी । महाजन सूद पर रुपया देकर किसानों का शोषण करने लगे यह भी अंग्रेजों की चाल थी । अंग्रेजों की छलपूर्ण नीति और भारतीयों की बिगड़ती हुई स्थिति को देखकर देश के सुधारवादी नेताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ । प्रमुख राष्ट्रीय नेता रानाडे ने सरकार के स्वतंत्र व्यापार की कटु आलोचना करते हुए सरकार से देश के उद्योगधन्धों के उचित संरक्षण की माँग की ।

१९१७ सन् १९१७ ई० की रूसी क्रान्ति ने भारत के सोए हुए किसानों और मजदूरों में आत्मचेतना की भावना उत्पन्न कर दी । वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए । किसानों ने जमींदारी प्रथा को नष्ट करने के लिए आन्दोलन किए और अनेक " ट्रेड यूनियन " बनाकर अपने अधिकारों के लिए लड़ना आरम्भ कर दिया । देश की सारी सम्पत्ति विदेश पहुँच रही थी । इसका वर्णन भारतेन्दु जी ने भी किया है ।[१] उपन्यासकारों ने भी देश की बिगड़ती हुई स्थिति का वर्णन किया है ।

सांस्कृतिक परिस्थिति :

मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति परम्परागत विश्वासों और अंधविश्वासों से जकड़ गई थी । चेतना का उन्मुक्त विकास नहीं हो सका था । इस युग की रूढ़ धार्मिक मान्यतायें थीं । धार्मिक शिक्षा पर ही अधिक बल दिया जाता था । प्राचीन साहित्य, दर्शन, गणित और व्याकरण की शिक्षा ही सर्व सम्पन्न समझी जाती थी ।

१- अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।
ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी ।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री ।
भा० ग्र० भा० दुर्दशा पृ० ५६८

लौकिक सुख की अपेक्षा पारलौकिक सुख ही जीवन का केन्द्र था,चरम लक्ष्य था मोक्ष । ब्राह्मण कर्मों का बोलबाला था । सामाजिक कानूनों का निर्माण ब्राह्मण इच्छानुसार किया करते थे । उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में व्यक्ति कर्म पर भरोसा न कर भाग्य पर भरोसा करता था । वैज्ञानिक साधनों के अभाव में व्यक्ति भाग्यवादी,निराशावादी और जीवन से उदासीन हो गया था ।

पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क से मध्ययुगीन रूढ़ियों और विचारधाराओं का विघटन होने लगा और नवीन विचारधाराओं ने जन्म लिया । व्यक्ति के जीवन और दृष्टिकोण में महान अन्तर आ गया । विदेशी संस्कृति से प्रभावित होते हुए नवजागरण युग के विचारकों और सुधारकों ने उन्हीं बातों को मान्यता देना चाहा जिनके अनुकरण से किसी भी प्रकार की अन्तर्विरोधी स्थितियाँ न उत्पन्न हों और सम्पूर्ण संस्कृति में एकता बनी रहे । ईसाई धर्म को स्वीकार न करते हुए भी राजा राम मोहन राय आधुनिक भारत का निर्माण करना चाहते थे । स्वामी विवेकानन्द भारत की आध्यात्मिक संस्कृति में विश्वास करने पर भी पश्चिम से सामाजिक तथा राजनैतिक संगठन की शिक्षा लेना आवश्यक समझते थे । पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क से हिन्दुओं ने परम्पराजनित रूढ़ विचारों के स्थान पर नवीन विचारों एवं कर्म को प्रधानता देना स्वीकार किया ।

आलोच्यकालीन[1] परिस्थितियों का उपन्यास के खलपात्रों की परिकल्पना पर प्रभाव :

आलोच्यकालीन परिस्थितियों का गहरा संबंध उपन्यास से है जिसका उदय ही इस युग में होता है । वस्तुत: काव्य या महाकाव्य एक सूक्ष्म सम्वेदना को लेकर ,सूक्ष्म अनुभूति स्तर की अपेक्षा रखते हैं जब कि उपन्यास अपने कथा तत्व की रोचकता के अनुसार बात को पाठक तक पहुँचाने की सहज क्षमता से युक्त है । अत: यह विधा इस युग में युग की बात समाज तक पहुँचाने के लिए उपयुक्त समझी गई और सहज ही इसकी लोकप्रियता लेखक और पाठक के बीच बढ़ चली । हम देखते हैं कि युग की परिस्थितियों का गहरा संबंध उपन्यास की विधा से है जिसका जन्म और विकास आलोच्य काल में होता है ।डॉ० वार्ष्णेय के शब्दों में " अधोगति के गर्त में गिरे हुए देश का इस दृष्टि से उद्धार करना वास्तव में गंगा को ब्रह्म लोक से भूतल पर लाना था, और इसी महान कार्य को सम्पन्न करने का गुरुतर भार हिन्दी उपन्यास साहित्य ने अपने ऊपर लिया उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में । "[2]

" यथार्थ मानव अनुभवों एवं सत्य का आकलन होने के नाते हिन्दी उपन्यास सहज ही उस नैतिक सक्रियता के स्पन्दन की वाणी बन गया जिससे १९ वीं शताब्दी बड़े विकल रूप से स्पंदित थी । उपन्यासकार मध्ययुगीन धर्माधिकारी और नैतिक उपदेश देने वाले गुरु का आधुनिक उत्तराधिकारी है । "[3] इसलिए आदर्शवाद और सुधारवाद उसके रक्त प्रवाह की प्रमुख शिरायें हैं ।

उपन्यास के आरम्भिक काल में दो विरोधी प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं एक ओर तो सुधारवाद के नाम पर भारतीय परम्पराओं का प्रबल समर्थन करते हुये, तथा पश्चिम के प्रभाव को नकल और घातक मान कर हेय दृष्टि से देखने वाले उपन्यासकार

१- आलोच्यकालीन - १८८२ से १९३६ ई०

२- डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी उपन्यास-उपलब्धियाँ पृ० १०

३- डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी उपन्यास-उपलब्धियाँ पृ० १५

दूसरी ओर वे उपन्यासकार हैं जो परिवर्तन के आकांक्षी हैं ; रूढ़ और व्यर्थ परम्पराओं से मुक्तिकामी हैं ।

प्रारम्भिक युग के बहुत से सनातन पंथी उपन्यासकार जैसे किशोरी लाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा मेहता, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध आदि प्राचीन आदर्शवादी विचारों के पोषक हैं । ये बहुविवाह नारी परतंत्रता,[1] बाल-विवाह,[2] सती-प्रथा[3] एवं पर्दा-प्रथा जैसी मान्यताओं से प्रभावित हैं । 'आदर्श हिन्दू' की 'प्रियंवदा', 'सुशीला विधवा' की 'सुशीला' रूढ़िवादी पर्दा प्रथा का समर्थन करती हैं । इन उपन्यासकारों की दृष्टि उपदेशों तक ही सीमित थी किसी प्रकार का सुधार या परिवर्तन वांछनीय नहीं समझते थे । विधवाओं को संयमित जीवन व्यतीत कर परलोक में पति से मिलन का आश्वासन वा पति पत्नी के संबंधों को जन्मजन्मान्तर का बंधन ही इनका विचार था । विधवा जीवन से उत्पन्न व्यभिचार पर इनकी दृष्टि नहीं जाती क्योंकि ये रूढ़िवादी हैं । निष्कर्षत: इस दृष्टि के मूल में और कुछ नहीं, नारी संबंधी पुरुष की वह मध्यकालीन एकांगी दृष्टि ही है जो उसे नारी को एक शंकास्पद, संदेहास्पद और अशक्त प्राणी के रूप में ही देखने, समझने को बाध्य करती है । उसे व्यक्तित्वहीन तथा पापों की खान मान कर चलता है ।"[4]

१८८२ से १९३५ ई० तक के प्राय: समस्त उपन्यास सुधारवादी आन्दोलनों से प्रभावित हैं एवं नवीन चेतना से ओत-प्रोत हैं । इस युग के उपन्यासकारों का उद्देश्य तत्कालीन समाज में फैली हुई बुराइयों को दूर करना और युगानुरूप उसमें परिवर्तन लाना था ।

सुधारवादी आन्दोलनों के प्रवर्तकों की भाँति प्रेमचन्द, प्रसाद, अनूप लाल मंडल, आदि अपने अपने उपन्यासों में विधवाओं की दयनीय स्थिति का चित्रण कर उनके सुख-सुविधा के लिए वनिता आश्रम, प्रेमाश्रम और सेवासदन जैसी संस्थाओं की कल्पना अपने अपने पात्रों द्वारा करवाते हैं । निराला 'अलका' के उपन्यास में विधवा वीणा

१- किशोरी लाल गोस्वामी - माधवी माधव वा मदन मोहिनी दूसरा भाग पृ०७५-७६

२- आदर्श हिन्दू भाग १ पृ० २१६

३- आदर्श हिन्दू भाग १ पृ० १५०-१५७

४- चण्डी प्रसाद जोशी - हिन्दी उपन्यास-समाजशास्त्रीय विवेचन पृ० ४६

की शादी अजित से कराकर विधवा विवाह की समस्या को स्वस्थ रीति से सुलझाने के लिए सचेष्ट दिखाई देते हैं । 'प्रसाद' 'कंकाल' में मंगल और गाला का विवाह, 'प्रेमचन्द' 'गोदान' में चमारिन-सिलिया और मातादीन का विवाह करा कर वृद्धि के खोखलेपन की और ध्यान आकृष्ट करके उसकी निरर्थकता ज्ञापित कराना चाहते हैं तथा इन्हीं सुधारवादी पात्रों द्वारा भारत संघ की स्थापना करवाते हैं जो समाज की विकृतियों के प्रतिकार का नवीन ढंग है । 'प्रतिज्ञा' (१९२९), 'गबन' (१९३०) और 'गोदान' (१९३६) में प्रेमचन्द ने, 'त्यागपत्र' (१९३७) में 'जैनेन्द्र' ने और 'निर्वासिता' (१९२९) में अनूपलाल मंडल ने अनमेल विवाह तथा दहेज जैसी कुरीतियों का चित्रण कर समाज के उस वर्ग की स्थिति का दिग्दर्शन कराया है जो धन के अभाव में अपनी सुयोग्य कन्याओं का विवाह बूढ़ों से कर देता है । 'निर्मला' उपन्यास की 'निर्मला' 'निर्वासिता' की अन्नपूर्णा, 'गबन' की रतन आदि इसके उदाहरणस्वरूप हैं । 'प्रतिज्ञा' और कायाकल्प में प्रेमचन्द ने सुमित्रा और चक्रधर ऐसे पात्रों की कल्पना कर दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध किया है । अनमेल विवाह की बुराइयों को दिखा कर उनमें सुधार लाने के उद्देश्य से ही मृत्यु शैय्या पर पड़ी निर्मला के मुख से लेखक कहलवा देता है - " बच्ची तो आपकी गोद में छोड़े जाती हूं अगर जीती जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा, चाहे कुंवारी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा, इतनी ही आपसे प्रार्थना है । " [१]

अछूतोद्धार की समस्या का समाधान करने के लिए प्रेमचन्द कर्मभूमि में अमरकान्त के माध्यम से अछूतों के प्रति अभिमानहीन व्यवहार का संदेश दिलवाते हैं । गोदान में चमारिन सिलिया का संबंध ब्राह्मण मातादीन से कराकर छुआछूत के उन्मूलन का प्रयास किया । प्रेमचन्द, प्रसाद और निराला आदि उपन्यासकार वेश्या समस्या का समाधान उनके विवाह के द्वारा उनके समाजीकरण में ही मानते हैं और ऐसे पुरुष सुधारकों की कल्पना करते हैं जो वेश्याओं को कीचड़ से निकाल कर उनका जीवन सुखमय बनाते हैं । वेश्या कनक के साथ विवाह करने वाले कुमार इसी आदर्श का प्रतीक है । [२]

१- प्रेमचन्द - निर्मला पृ० १८६

२- निराला- अप्सरा

संयुक्त परिवार से उत्पन्न बुराइयों का चित्रण ,अवधनारायण ने (मफली बहू) कौशिक (मा[1929]) प्रसाद (तितली[1934]) ऋषभ चरण जैन (विमाता) प्रेमचन्द (रंगभूमि[1922]),कर यह दिखाने का प्रयास किया है कि आज सम्मिलित परिवार की परम्परागत व्यवस्था कितनी दोषपूर्ण है इसका समाधान छोटे परिवार में ही सम्भव है ।

नारी की आर्थिक परतंत्रता एवं प्रत्येक प्रकार की स्वतंत्रता पर पुरूष समाज का अंकुश,उनमें शिक्षा का अभाव भी सामाजिक विकृति का एक कारण था । यह एक ऐसी कमी थी जो एक सभ्य समाज के लिए बड़ी लज्जा की बात थी । समाज की दशा सुधारने के लिए आवश्यक था कि उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाए। उपन्यासकारों ने नारी को समाज में गौरवशाली स्थान दिलाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव किया इसके लिए नारी की मानसिक और चारित्रिक शक्तियों का उद्घाटन किया -"ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी " जैसी चली आती हुई धारणाओं का खंडन करती हुई समाज एवं पुरूष के जीवन में नारी के अभाव तथा महत्व को उद्घाटित किया । उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी स्वतंत्रता एवं नारी शिक्षा का प्रतिपादन किया और उनकी परतंत्रता के विरूद्ध आवाज उठाई । प्रेमचन्द ने "प्रतिज्ञा " में "सुमित्रा," गोदान में "मालती ," प्रसाद ने "तितली " में "तितली " और "शैला ," कंकाल में "गाला ," जैसी शिक्षिता एवं स्वतंत्र विचार रखने वाली नारियों की रचना की ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक युग के समाज सुधारकों का ध्यान मुख्य रूप से नारी की उपेक्षा और दमन पर ही केन्द्रित रहा । नारी को ही केन्द्र में रखकर उन्होंने विभिन्न प्रकार के आन्दोलन चलाए , संस्थाएं स्थापित की तथा समाज में इन्हें मान,प्रतिष्ठा और आदर की वस्तु माना । उनके उद्देश्य को पूर्ण करने में प्रेमचन्द,प्रसाद,विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक,भगवती प्रसाद वाजपेयी,चतुरसेन शास्त्री, निराला आदि उपन्यासकारों ने योग दिया और कुछ नवीन सुधारों के लिए जनता को प्रोत्साहित किया जो समाज के नवसंस्कार के लिए आवश्यक थी । अब साहित्यकार के पास जो एक बड़ा सशक्त और प्रबल हथियार था उपन्यास,जिसका उपयोग करने में वह चूक सकता था, उसने समझ लिया था कि समाज की कुरीतियों को जितना संस्थाएं [illegible] स्थापित करके दूर किया जा सकता है ~~उसका उतना ही समाधान संस्थाएँ आदि~~

~~स्थापित करके दूर किया जा सकता है~~ उसका उतना ही समाधान उपन्यास के माध्यम से भी किया जा सकता है ।

स्वाधीनता संग्राम के इस युग ने साहित्य के लिए इतनी सामग्री प्रस्तुत की कि इस युग का साहित्य राष्ट्रीय एवं स्वाधीनता की भावना से युक्त है । कविता, नाटक, उपन्यास जो कुछ साहित्य लिखा गया उस पर इस युग की राजनीति की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है । ब्रिटिश शासन के अत्याचारों के विरुद्ध होने वाले आन्दोलनों का प्रभाव साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था । महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले आदि राजनीतिक नेताओं के ~~प्रभाव~~ प्रभाव से में प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला आदि उपन्यासकार भी क्रान्तिकारी पात्रों की सृष्टि द्वारा योग प्रदान करते रहे । प्रेमचन्द का विचार था कि " साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का समान जुटाना नहीं है - उसका ~~स्तर~~ दरजा इतना न गिराइये । वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है । "[१] यद्यपि अधिकांश उपन्यास सामाजिक समस्याओं में अधिक उलझे रहे तथापि यह कहना अनुचित न होगा कि १६०० के बाद के बहुत से उपन्यास राजनीतिक उथल पुथल से सीधा संबंध स्थापित करते हैं । इस दृष्टि से प्रेरित होकर लेखक का ध्यान मध्ययुगीन इतिहास के पृष्ठों को काला करने वाले देश द्रोहियों की ओर गया था । किशोरी लाल गोस्वामी ने 'मीरजाफर खाँ' को हमारे सामने देश की मान-मर्यादा और स्वतंत्रता बेचने वाले के ही रूप में प्रस्तुत किया है । ब्रजनन्दन सहाय, लज्जाराम शर्मा मेहता, प्रेमचन्द, प्रसाद, भगवती प्रसाद बाजपेयी, निराला आदि के उपन्यासों में तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव दिखाई पड़ता है । पुलिस के अत्याचार अंग्रेजों की कठोर शासन-नीति और उसके दुष्परिणाम भारतीयों का स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयत्न, उसके लिए विभिन्न प्रकार के राजनीतिक आन्दोलन और अंग्रेजों को निकाल भगाने के प्रयत्नों का चित्रण ही उस युग के उपन्यासकारों का मुख्य लक्ष्य रहा । लज्जाराम शर्मा मेहता के "आदर्शदम्पति", किशोरी लाल गोस्वामी के 'चन्द्रावली' प्रेमचन्द के "प्रेमाश्रम" वृंदावन लाल वर्मा के "कोतवाल की करामात" और निराला के "अप्सरा" में पुलिस

१- प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य पृ० १५

के अत्याचारों एवं उनके भ्रष्टाचारों का यथार्थ चित्रण मिलता है।

"रंगभूमि" में प्रेमचन्द ने सूरदास जैसे पात्र की सृष्टि गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के प्रतीक रूप में की है। उनका विचार है कि किसान ही क्या साधारण से साधारण सूरदास जैसा व्यक्ति भी अन्याय को चुपचाप न सहकर उसका विरोध करता है। स्वाधीनता तभी प्राप्त हो सकती है जब सम्पूर्ण देश राजनैतिक भावना से ओतप्रोत हो जाए।

कायाकल्प और रंगभूमि में प्रेमचन्द, सरकार तुम्हारी "आँखों में" उग्र, "गदर" और "सत्याग्रह" में ऋषभ चरण जैन ने देशी रियासतों में अराजकता फैलाने वाले देशी नरेशों की स्वार्थ वृत्ति और उनके विलासी चरित्र का चित्रण तथा हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक आन्दोलन को अहिंसात्मक रूप देने के लिए चक्रधर और अमरकान्त जैसे पात्रों की कल्पना की।

कर्मभूमि में प्रेमचन्द मुख्य रूप से गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन और लगानबन्दी आन्दोलन का चित्रण करते हैं जिसमें हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच तथा स्त्रियाँ तक भाग लेती हैं और उसका नेतृत्व सफलतापूर्वक करती हैं। कर्मभूमि का 'आत्मानन्द' लगानबन्दी आन्दोलन को गतिमान करने में क्रान्ति का मार्ग अपनाता है जब कि अमरकान्त कांग्रेस सरकार की अहिंसात्मक नीति द्वारा सुधार का पक्षपाती है। ब्रिटिश न्याय व्यवस्था और अंग्रेजों की कूटनीति का भी चित्रण मिलता है।

वस्तु सामाजिक परिवेश की भाँति राजनीतिक संघर्षों का प्रभाव भी इस युग के साहित्यकारों पर पड़ना आवश्यक था। राजनीति के क्षेत्र में सुधार लाने में जो कार्य राष्ट्रीय नेताओं द्वारा किया जा रहा था उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य राजनैतिक उपन्यासों द्वारा सम्पन्न होता हुआ[१] दृष्टिगोचर होता है।

१- जहाँ उपदेश व्यर्थ हो जाते हैं वहाँ साहित्यकार बाजी मार ले जाता है। इसका जीता जागता उदाहरण साहित्य और इतिहास दोनों में है। विलासी मिर्जा जयशाह का जीवन इस छोटे से दोहे से बदल जाता है -

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल
अलि कली ही सौं बिधौ, आगे कौन हवाल।"

ब्रिटिश शासन नीति के कारण गाँवों का आर्थिक विघटन हो गया। हस्त उद्योग धन्धे जीविकोपार्जन के लिए बेकार हो गये कारण बड़े बड़े कल कारखानों और जमींदारी प्रथा ने किसानों को आर्थिक रूप से खोखला बना दिया। जमींदारों के अत्याचारों को कम करने और जमींदारी प्रथा को हटाने तथा उसमें सुधार लाने की दृष्टि से प्रेमाश्रम के "प्रेमशंकर" तितली के "इन्द्रदेव" और गोदान के "मेहता" जैसे पात्र सतत् प्रयत्नशील है। ये पात्र वास्तविक रूप से देश की उन्नति तथा भलाई के लिए जमींदारी प्रथा का विनाश चाहते है। प्रेमचन्द का विचार था कि १८५७ के स्वाधीनता के प्रथम प्रयास में अंग्रेजों की सहायता प्रदान करने वाले राजे महराजे ही जमींदार बने हुये हैं जो गरीब किसानों का रक्त चूसकर अपना घर भरते हैं। गाँधी जी के प्रतीक रूप प्रेमशंकर भी किसानों की दशा में सुधार, जमींदार के दृष्टिकोण परिवर्तन में ही मानता है। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित ज्ञानशंकर का अत्याचार अधिक स्पष्ट रूप में सम्मुख आता है।

देश में बौद्धिक जागरण के लिए निराला किसानों का शिक्षित होना अनिवार्य मानते थे। उनका विचार था कि अशिक्षा के कारण ही किसान अपने अधिकारों से अनभिज्ञ रहकर जमींदारों के अत्याचार को सहता है बेगार और लगान के बोझ से दबा रहता है। गोदान का होरी इसका प्रतीक है। निराला "अलका" उपन्यास में विजय और अजित के माध्यम से किसानों में शिक्षा का प्रचार करवाते हैं क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही शोषण की प्रक्रिया को दूर किया जा सकता है।

धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जो परिवर्तन हुआ वह यह था कि सनातन धर्म अपने वास्तविक रूप में प्रगट हुआ और उसने साहित्य पर भी अपना प्रभाव डाला। धर्म हमारी संस्कृति का मुख्य तत्व है अतः आधुनिक युग का उपन्यासकार भी उसकी ओर ध्यान दिये बगैर रह नहीं सका। धार्मिक कुरीतियों का चित्रण और उसमें सुधार लाने के लिए प्रतीकात्मक पात्रों की सृष्टि ही इस काल के उपन्यासकारों का मुख्य ध्येय रहा है। उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के नाम, कथावस्तु तथा पात्रों की सृष्टि भी सुधारवादी दृष्टिकोण से की है। ऐसे स्थलों में उपन्यासकार साहित्यिक कम नीतिवादी तथा सुधारक अधिक दिखाई देता है।

आलोच्य युग के उपन्यासकारों जैसे पंडित लज्जाराम शर्मा मेहता, पं० किशोरी लाल गोस्वामी, बाबू ब्रजनन्दन सहाय, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध आदि ने

सनातन धर्म को मानने वाले पात्रों द्वारा समाज में अपने सुधारवादी दृष्टिकोण को व्यक्त किया । ये नारी शिक्षा को महत्व तो देते थे पर स्कूली शिक्षा के बजाय घर में नीति शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना ही उचित समझते हैं । सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में फैले हुये भ्रष्टाचारों का विरोध करते हुये भी वे प्राचीन धर्म को ज्यों का त्यों अपनाने की शिक्षा देते हैं/लेखक अपनी प्राचीन मान्यताओं के अनुसार ही आधुनिक फैशन परस्त पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित लोगों को प्राचीन संस्कृति के गुणों को दिखा कर उसमें सुधार लाना चाहते हैं ।

इस युग के उपन्यासकार एक और तो पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से उत्पन्न बुराइयों से भारतीय धर्म की रक्षा करना चाहते है वहीं दूसरी ओर वे भारतीयक परम्परागत रूढ़िवादी विचारों से समाज को मुक्त करना चाहते है । किशोरी लाल गोस्वामी के "माधवीमाधव वा मदनमोहिनी " उपन्यास में डाक्टर पात्र "जमना " की अंतिम घड़ियों में प्राचीन धर्म की ओर ध्यान आकृष्ट करता हुआ कहता है -
" इसे केवल गंगाजल पान कराइये और स्पिरिट मिली हुई अंग्रेजी दवा पिला कर इसका अन्त न बिगाड़िये ।"[१]

प्रेमचन्द युग में व्यक्ति का धार्मिक दृष्टिकोण बदल गया । उन्होंने प्राचीन वर्णाश्रम धर्म में उत्पन्न हो जाने वाली कुरूपता , अनैतिकता तथा बाह्याडम्बर को देखा और उसमें सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील हुए । इस युग के उपन्यासकारों को धर्म की खोखली मान्यताएँ स्वीकार नहीं थी । प्रेमचन्द तथा अन्य आदर्शोन्मुख भावधारा के उपन्यासकार धर्म की जर्जर स्थिति में सुधार के पक्षपाती है ।

धर्म के क्षेत्र में पनपने वाली अनैतिक भावना और मनुष्य के व्यभिचार की प्रवृत्ति का चित्रण प्रेमचन्द के "प्रतिज्ञा " में कमला प्रसाद, "प्रेमाश्रम " में ज्ञानशंकर प्रसाद के कंकाल में "देवनिरंजन", उग्र के शराबी में हीरा का पति तथा ऋषभ चरण जैन के "मंदिर दीप " का नागरदास आदि में दृष्टिगत होता है । वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता के कारण ही महान व्यक्ति भी समाज में उपेक्षित समझे जाते हैं । प्रेमाश्रम

१- किशोरी लाल गोस्वामी - माधवीमाधव व मदन मोहिनी पृ० २०१ भाग २

का प्रेमशंकर "तितली " का इन्द्रदेव, वा शैला तथा 'निरुपमा' का डा० कुमार इस विचार धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

धर्म के क्षेत्र में संकीर्ण भावना और छुआछूत के कारण हिन्दू ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगे थे । हिन्दू ईसाई न बन सके इसको रोकने के लिए स्वामी दयानन्द की भाँति उग्र भी अपने "मनुष्यानन्द " उपन्यास में अघोड़ी जैसे पात्र की कल्पना करते है जो गाँधी जी के प्रतीक रूप में अवतरित हुआ है और अछूतोद्धार के लिए प्रयत्न करता है क्योंकि छुआछूत के कारण हिन्दू अत्यधिक संख्या में विधर्मी हो जाते थे । धर्म के नाम पर जनता का शोषण करने वाले महन्तों, सेठों साधुओं आदि का चित्रण, प्रेमचन्द के सेवासदन का महन्त, गबन के सेठ "करोड़ीमल " "निर्मला " का परमानन्द आदि खल के रूप में मिलते हैं जो खल तो हैं ही, साथ ही अपनी स्वार्थवृत्ति के लिए किसी प्रकार का सुधार या परिवर्तन आपेक्षित नहीं मानते ।

भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति में विश्वबन्धुत्व की भावना के पोषक विवेकानन्द के प्रतीक रूप प्रभुसेवक [१] का चित्रण प्रेमचन्द रंगभूमि में करते हैं । प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा तथा चतुरसेन शास्त्री सभी पवित्रतावादी नैतिक दृष्टिकोण के समर्थक हैं । "हृदय की परख ", "कुंडली चक्र ", "निर्मला " सभी उपन्यासों में लेखक नैतिक आचरणों का महत्व प्रदान करता है । प्रसाद आधुनिक विचारों को महत्व देकर धर्म का नवीन रूप प्रस्तुत करते हैं । "कंकाल " में वह विजय पात्र के माध्यम से व्यक्तिगत धर्म के महत्व का संदेश दिलवाते हैं ।

इन बदली हुई दृष्टियों का उपन्यास के अन्तर्गत चरित्र चित्रण पर यह प्रभाव पड़ा कि सत् असत् के मापदंडों में परिवर्तन आ गया । प्रेमचन्द की दृष्टि में सारवी कुनियाँ भी ग्राह्य है अपने नैतिक आचरण एवं सत् कर्मों के कारण । पर दुश्चरित्र मातादीन ब्राह्मण होते हुये भी हेय दृष्टि से देखा जाता है अपने अनैतिक आचरण के कारण । प्रसाद के कंकाल की (कमला), निराला के निरुपमा का (डा०कुमार आदि सभी की दृष्टि में यही पात्र सत् एवं धार्मिक है जो समाज की दृष्टि से नैतिक

१- विदेश पहुँचने के पश्चात् प्रभुसेवक का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है , उससे भी स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका भ्रमण की याद आती है ।

चण्डी प्रसाद जोशी -हिन्दी उपन्यास:समाजशास्त्रीय विवेचन पृ० ३१८

आचरण वाला है । दूसरे शब्दों में जब देश के महान पुरुषों द्वारा धार्मिक जागृति के लिए आन्दोलन हो रहे थे तभी उपन्यासकारों ने भी उनके आदर्श को अपने पात्रों में मूर्त करने की चेष्टा की ।

आलोच्यकालीन परिस्थितियाँ और उनके उपन्यासगत प्रभाव को देखने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमें इस युग में दो प्रकार के खलपात्र मिलते हैं । एक तो वे जो प्राचीन हिन्दू धर्म की मान्यताओं एवं नैतिकता का अपहरण करने वाले खलपात्र, जैसे पति की मृत्यु पर विधवा नारी को पूर्ण संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिये यदि वह ऐसा नहीं करती तो हम उसे दुराचारिणी, व्यभिचारिणी, कुलटा आदि नामों से सम्बोधित पाते हैं । पर्दा प्रथा का विरोध करने वाली, पति के अत्याचारों को चुपचाप न सहनेवाली स्त्री समाज में हेय समझी जाती थी । समाज में प्रचलित रीति रिवाज, रहन-सहन, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक का पालन करना ही उसके जीवन का केन्द्र था । इसे यों भी कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में जनता के लिए दो प्रकार के आदेश थे धार्मिक तथा नैतिक । धार्मिक आदेशों की अवज्ञा , धर्म के विपरीत कार्य करना पाप समझा जाता था और नैतिक अर्थात् सामाजिक आदेशों की अवज्ञा अपराध कहा जाता था । धार्मिक तथा नैतिक -सामाजिक दोनों ही दृष्टि से अपने कर्तव्य को न निभाने वाला या उसके विपरीत चलने वाला पतित कहा जाता था । साधारणतः यही कहा जाता था कि उस व्यक्ति का पतन हो गया । कर्तव्य से च्युत होना ही पतन है ।"[१]

उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार लज्जाराम शर्मा किशोरी लाल गोस्वामी , गोपालराम गहमरी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध आदि के उपन्यासों में खलपात्रों का एक परम्परागत क्रम मिलता है । व्यक्ति के विपरीत गुणों को प्रधानता दी जाती थी । इनके खलपात्र का लेखक के दृष्टिकोण की विशेष उपज है। ये उपन्यासकार या तो नायक के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए खलपात्रों की कल्पना करते हैं या समाज की कुरीति के विभत्स रूप को दिखाने के लिए उन कुरीतियों का समर्थन करने वाले पात्र को खल के रूप में रखा है । इनके खलपात्र आरम्भ से अन्त

१- धर्मेन्द्रनाथ - पतन की परिभाषा पृ० १

तक एक ही प्रकार का खलतामय व्यक्तित्व लेकर चलता है । लेखक उनके चरित्र में यह सम्भव दुर्बलता भरकर खल के वीभत्स रूप को चित्रित करना चाहता है , अत: चरित्र आद्योपान्त एक सा होता है । इस युग के उपन्यासकार की दृष्टि खलपात्रों के साथ सहानुभूति पूर्ण न होकर उपेक्षा घृणा प्रताड़ना एवं भर्त्सनापूर्ण होती है । लेखक उनके चरित्र के असत् अंश को इस सफाई के साथ प्रस्तुत करता है कि पाठक या उपन्यास के अन्य पात्र भी उसको बुरी ही दृष्टि से देखते हैं । पर धीरे धीरे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क से लेखक की परम्परागत धारणाओं में परिवर्तन होता गया । बीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों में खलपात्रों का वह वीभत्स घृणास्पद रूप नहीं मिलता जो सिर्फ दुराचारी, अनाचारी, व्यभिचारी और हत्यारा ही है वरन् उनमें कोमल भावनायें भी हैं जो परिस्थिति कुसंग आदि से परिवर्तित हो जाते हैं[1] या लेखक उनके चरित्र को सुधार देता है । प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, कौशिक आदि के उपन्यासों में आदर्शवादी दृष्टि में परिवर्तन आ गया । अब वह परम्परा के नाम पर समाज की कुरीतियों का पोषण करने वाले व्यक्ति को खल न मान कर रूढ़िवादी परम्पराओं से घिरे व्यक्ति को खल के रूप में रखते हैं । लेखक खलता की ओर अग्रसर करने वाली परिस्थितियों के दोष को दृष्टिपथ से ओझल नहीं होने देता । सेवासदन की 'सुमन' इसीलिए वेश्या बनती है कि उसका विवाह एक अनुपयुक्त व्यक्ति गजाधर से हो जाता है । कौशिक के माँ उपन्यास की 'बेगम' घोर दारिद्र से मजबूर होकर ही अपनी सुन्दरी कन्याओं को वेश्यावृत्ति करने की स्वीकृति देती है । कृष्णसिंह के रिश्वत लेने के अपराध के मूल में वह दहेज प्रथा है जो हिन्दू लड़की के विवाह का बड़ा क्रूर अंश है । सुखदा के तीखे स्वभाव से प्रताड़ित होने पर ही अमरकान्त सकीना की ओर आकर्षित होने लगता है । बहुविवाह की कुप्रथा के फलस्वरूप विशालसिंह का जीवन विशाक्त हो उठता है और वे चौथा विवाह करते हैं । ताहिरअली अपनी दो विमाताओं के बार बार कोंचने पर ग़बन करके जेल का भागी होता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव स्वभाव संबंधी दृष्टि अधिक विस्तृत हुई । अब खल न तो सामाजिक रूढ़ियों का पालन करने वाला, न ही सत् पात्र के कार्य में बाधा उत्पन्न करने वाला प्रतिनायक ही रहा । मानव मन

१- प्रेमचन्द ने कायाकल्प तथा कर्मभूमि में कन्नासिंह तथा कालेखाँ जैसे हिंसक व्यक्तियों का हृदय परिवर्तन कर दिया है ।

में निहित कमजोरियों और कुंठाओं से ग्रस्त, मानव के आन्तरिक चरित्र का विश्लेषण, उसके व्यक्तित्व की कसौटी बनती है। कभी-कभी यह कहना भी कठिन हो जाता है कि वह सचमुच खल है क्योंकि उपन्यासकार उसकी मानव सुलभ दुर्बलताओं से भी सहानुभूति रखता हुआ प्रतीत होता है। आरम्भिक उपन्यासकारों की भाँति उसे पापी दुष्ट आदि विशेषणों से लांछित नहीं करते।

अध्याय - १

आलोच्यकालीन उपन्यास: एक सर्वेक्षण

अध्याय १

आलोच्यकालीन उपन्यास : एक सर्वेक्षण
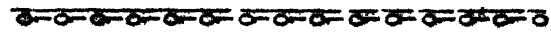
आधुनिक काल की नूतन परिस्थितियों में साहित्य ने नवीन मोड़ लिया। नवीन विचारों और शैली का साहित्य सम्मुख आया। मध्ययुग में काव्य भक्तिपरक था। रीतिकालीन साहित्य एक विशेष शास्त्रीय दृष्टि को लेकर चला, जो सीमित जीवन की झांकी देता था और वह भी विशेष उदात्त रीति से नहीं। श्रृंगार प्रधान होने के कारण उसमें अधिकांशत: विलासी जीवन का ही वर्णन था। रीतियुग का साहित्य सामयिक जीवन से असम्पृक्त था। अभी तक रीतिपरक विचार धारा साहित्य में स्थान ग्रहण किये थी पर आधुनिक युग में उसका बना रहना सम्भव न था। शासक के साहित्य और संस्कृति से होड़ की भावना जगना स्वाभाविक था साथ ही इस युग के बुद्धिजीवी को अपने प्राचीन साहित्यिक गौरव का भी स्मरण हुआ और वह वर्तमान कूपमंडूक अवस्था से ऊपर उठने के लिए छटपटा उठा।

तत्कालीन राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने हिन्दी साहित्य को गति देने में योग प्रदान किया। अंग्रेजों के आगमन से समाज की रूपरेखा एवं शासन पद्धति के बदलने और वैज्ञानिक आविष्कारों से मानव कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। पाश्चात्य साहित्य जैसे `सर फिलिप सिडनी ` के `दि काउन्टेस आव पेम्ब्रोक्स ` आर्केडिया `जान लिली के `यूफ्यूस ` राबर्ट ग्रीन के `पेन्डास्टो ` आदि गद्यात्मक ग्रन्थों में दुष्टों तथा लम्पटों की चंचलता और प्रपंच की कथाएं हैं।"[१] इस प्रकार के कथात्मक गद्य का हिन्दी के प्रारम्भिक युग के गद्य पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। गद्य का प्रादुर्भाव नवीन परिस्थितियों से उत्पन्न साहित्य के उत्तरदायित्व को वहन करने में सर्वथा योग्य और उपयोगी सिद्ध हुआ। नवीन विचार धारा के साथ

१- सूरज प्रसाद खत्री - अंग्रेजी साहित्य का इतिहास पृ० १०७

साथ साहित्य के क्षेत्र में भी नवीन विधाओं का जन्म हुआ, जिसमें उपन्यास की विधा अत्यन्त विशिष्ट है । उपन्यास को अंग्रेजी में 'नावेल' गुजराती में 'नवलकथा' मराठी में 'कादम्बरी' और बंगला तथा हिन्दी में उपन्यास कहते हैं । [१]

सन् १८५० ई० के पूर्व ही गद्य अस्तित्व में आ गया था । १९वीं शताब्दी के आरम्भ में ही इंशाअल्लाखाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लल्लूलाल जी ने सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, सदलमिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' मुंशी सदासुखलाल ने 'सुखसागर' आदि कथापरक, गद्यात्मक ग्रन्थों की रचना की थी । ये रचनायें हिन्दी कथा साहित्य के गद्य में प्रथम चरण कहे जा सकते हैं । इसी काल में संस्कृत से गृहीत सारंगसदावृक्ष, किस्सा तोता मैना, किस्सा साढ़े तीन यार, कथा प्रसंग के अतिरिक्त फारसी से अनुवादित कहानियाँ जैसे चहारदवेश, किस्सा हातिम ताई, तिलस्मे होशरुबा गुलबकावली आदि भी कथात्मक साहित्य का अंग बन रही थी । इनमें कई विशेषतायें थीं । ये गद्यात्मक, काल्पनिक एवं कल्पनात्मक थी । साथ ही इनमें मनोरंजन का तत्व भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान था । कथा की दृष्टि से कुछ का आधार पौराणिक था, कुछ का फारसी परम्परागत । हिन्दी गद्य कथा साहित्य के विकास में ये रचनायें निश्चय ही बहुत महत्व रखती हैं ।

यह सत्य है कि साहित्य की वह विधा जिसे उपन्यास की संज्ञा दी जाती है अंग्रेजों के आगमन के पूर्व हिन्दी कथा साहित्य में उपलब्ध न थी । इसके विशिष्ट रूप एवं गुण से भारतीय सर्वथा अनभिज्ञ थे । संस्कृत में कथा एवं आख्यायिका के अन्तर्गत क्रमश: कादम्बरी तथा हर्षचरित का उल्लेख किया गया है । पश्चिम में उपन्यास का जन्म लगभग १७वीं १८वीं शताब्दी में हो चुका था और अंग्रेजी उपन्यास १९वीं शताब्दी से भारतीय साहित्य के सम्पर्क में आने तक यह विधा समुचित विकास को प्राप्त हो चुकी थी । उपन्यास योग्य सामग्री हमारे कथा साहित्य में उपस्थित थी परन्तु उसे उपन्यास रूपी ढाँचे में ढालने की कला तब ज्ञात हुई जब उसका रूप एवं गुण हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश शासन के कारण विभिन्न परिवर्तित परिस्थितियों ने भी उपन्यास जैसी विधा के लिए सामग्री प्रदान की ।

१- हिन्दी साहित्य कोश भाग १

काव्य और महाकाव्य इस युग में नवीन परिस्थितियों के उद्घाटन में असमर्थ थे । क्योंकि समाज, चरित्र एवं विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण जितनी सफलता से उपन्यास कर सकता था उतना कोई अन्य विधा नहीं । यह तथ्य उपन्यास के जन्म के समय इंगलैंड में भी स्वीकार किया गया था । पाठक और लेखक की संतुष्टि के लिए उपन्यास की विधा समर्थ थी । प्रेस के आविष्कार और साधारण जनता की मनोरंजनात्मक साहित्य पढ़ने की मनोवृत्ति ने उपन्यास रचना के मार्ग को प्रशस्त कर दिया ।

हमारे प्रारम्भ के मौलिक उपन्यास लेखकों ने उपन्यास लिखने की कला विदेशियों के सम्पर्क से सीखी और उपन्यास कला पर कभी कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष प्रभाव पश्चिम का देखा जा सकता है । यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि " हिन्दी उपन्यास के स्वरूप निर्माण में पाश्चात्य उपन्यासों का यथेष्ट स्थान रहा है ।" [१] यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति में उपन्यास भी पाठ्य क्रमों में निर्धारित रहते थे । डेनियल डिफो का " राबिन्सन क्रूसो " , जेन आस्टिन का " प्राइड एण्ड प्रेजुडिस ", सर वाल्टर स्काट का ' इवानहो ' और केनिलवर्थ, डिकेन्स का स्टेलर ए टेल आव टू सिटीज, थैकरे के वैनिटी फेयर, हेनरी वस्ताँड आदि समय समय पर पाठ्यक्रमों में निर्धारित होते रहे हैं इनसे एक तो उपन्यास की कला के संबंध में और दूसरे उपन्यास के कथ्य के संबंध में भी हिन्दी के लेखक को आदर्श मिलते रहे ।

<u>पूर्व प्रेमचन्द युग</u> : यही कारण है कि उपन्यास का आरम्भिक युग अनुवादों से प्रारम्भ होता है । १८६० में पंडित बद्री लाल ने राबिन्सन क्रूसो का अनुवाद किया, बनियन के पिलग्रिम्सप्रोग्रेस का अनुवाद "यात्रा स्वप्नोदय" (१८६४) के नाम से हुआ, रैनाल्ड के "फास्ट" का अनुवाद हरकृष्ण जौहर ने "नरपिशाच" नाम से किया । राई हाउस प्लाट का अनुवाद "सत्यवीर" नाम से हुआ (१९०२); लन्दन रहस्य "द मिस्ट्रीज आफ द कोर्ट आफ लंदन" का तथा "पीतल की मूर्ति" "द ब्रास स्टेच्यु" का अनुवाद है । राइडर हैगर की "शी" का अनुवाद "श्री या अवश्यमाननीया" के रूप में हुआ । विल्की कालिन्स के "द वीमेन्स इन व्हाइट" का अनुवाद "भीलवसन

१- नन्द दुलारे वाजपेयी - साहित्यिक विवेचन पृ० ५

सुन्दरी " के नाम से तथा "द मून स्टोन" का अनुवाद "जीवनमृत रहस्य" के नाम से तथा आर्थर कानन डॉयल के "ए स्टडी इन स्कारलेट" का अनुवाद "गोविन्द राम" नाम से गोपाल राम गहमरी ने किये । अनुवादों के महत्व को उपेक्षित नहीं किया जा सकता उनका प्रभाव पहले तो ऊपर ही ऊपर था किन्तु धीरे धीरे विचार, भावना तथा अभिव्यक्ति पर भी अज्ञात रूप से छनता गया ।" [१]

आरम्भिक उपन्यासकार क्योंकि इस कला के प्रयोग में नये थे इसलिए प्राय: ही उनके कथानक अंग्रेजी उपन्यासों के समान होते थे तथा उनके पात्र अंग्रेजी के पूर्व रूप प्रोटोटाइपस (Prototypes) से होते थे । अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में जो स्वच्छंदतावादी आन्दोलन था वह एक अनगढ़ और अधिक आदिम रूप में रोमांचक कथाओं के रूप में अवतरित हुआ था ।" [२] स्थानिक रूपों में इस प्रकार के उपन्यासों ने हमारे आरम्भिक युग के उपन्यासकारों को प्रभावित किया । इसमें संदेह नहीं कि "दास्ताने अमीर हमज़ा" जैसी फ़ारसी कथाओं की भी परम्परा सामने थी तथापि अंग्रेजी के गौथिक रोमांसों से भी आरम्भिक उपन्यासकारों ने प्रेरणा ग्रहण की । इस युग में

---

1. "The impostance of these translations and novels cannot be ignored. Their influence was at first on the surface and so, detectable, but later it permeated so deeply that these works influenced the ideas, conception and expression of the writers without their being fully aware of it ." - The influence of English on the development of Hindi Fiction 1885 - 1936. Dr. Usha Saxena . P. 49.

2. "The English Romantic movement, which found its supreme expression in poetry was reflected in a somewhat cruder and more primitive manner in the novel, where it helped to inaugurate a new literary genre .... the thriller." Lovett & Hughs : The History of the Novel in the England. P. 108 .

रैनाल्ड बहुत लोकप्रिय था और चन्द्रकान्ता संतति के पात्र भी उसे पढ़ते हुये दिखाई पड़ते हैं । संतति के लेखक ने स्वीकार किया है - " मैंने देश विदेश की विभिन्न कथायें बड़े मनोयोग से पढ़ी थीं और उनको पढ़ कर मुझे यह प्रेरणा हुई कि मैं भी इसी प्रकार के अद्भुत कथानकों की सृष्टि से जनता का मनोरंजन कर यश लाभ करूँ । इसलिए मैंने चन्द्रकान्ता संतति लिख डाली ।" [१]

अंग्रेजी के गौथिक नावेल की कथावस्तु उलझी हुई, असम्भव घटनाओं से भरी हुई होती थी और दुराव, हत्या, द्वंद्व, वेशपरिवर्तन, अपहरण, पलायन, उढ़रना (elopment) षडयंत्र, जाली प्रपत्र, पुराने अपराधों की खोज तथा खोये हुये वारिसों की पहचान इसकी प्रमुख विशेषतायें होती थी ।" [२]

इन तत्वों का गहरा प्रभाव हमें किशोरी लाल गोस्वामी तथा देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है । गोपालराम गहमरी के उपन्यासों पर रैनाल्ड, राइडर कानन डायल का प्रभाव देखा जा सकता है । इस युग में एडगर वालेस उदीयमान प्रतिभा थी । " मंझा डाकू " में एडगर वालेस के " दी हैंड आफ पावर " की गहरी छाप दिखाई पड़ती है । रोमांचक घटनाक्रम और रोमांस इस प्रकार के उपन्यासों की विशेषतायें हैं । गहमरी जी के देवीसिंह पर रैनाल्ड के जोजफ विलमिट का प्रभाव तथा ठनठन गोपाल पर राइडर हैगर्ड का प्रभाव देखा जा सकता है । जासूसी उपन्यासों पर कानन डायल का भी गहरा प्रभाव है ।

१- डा० नगेन्द्र - विचार और अनुभूति पृ० २६

2. The Goethic novels in their plots were " complicated and abounded in the wildest imprababilities and in those incidents which were the common places of romantic fiction ....concealments, assassinations, duels, disguises, kidnappings, escapes, elopements, intrigues, forged documents, dicoveries of old crimes and identifications of lost heir's." - Henry A. Beers : A History of English Romanticism in the Eighteenth Century , P. 250.

किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिये कि जहाँ तक चारित्रिक आदर्श का प्रश्न है हिन्दी लेखक भारतीय परम्पराओं को विस्मृत नहीं करता । उपन्यास की विधा विदेशी है परन्तु हमारे उपन्यासों की आत्मा विदेशी नहीं, उनके लिए सामग्री विदेशी साहित्य से नहीं वरन् अपने ही साहित्य, परिवेश एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से ली गई । यही कारण है कि हम आरम्भिक उपन्यासों में क्रूरसिंह-डा० राम चरन, रत्नाकर आदि खलपात्रों को अन्त में अपने उद्देश्य में पराजित पाते हैं और अनेक स्थलों पर असत् पात्र ग्लानि ग्रस्त भी होते हैं तथा साथ ही प्रियंवदा,[1] चन्द्रकान्ता [2] आदि में एक निष्ट प्रेम तथा सतीत्व रक्षा के भाव का उत्कर्ष देखते हैं ।

साहित्य गगन में भारतेन्दु के उदय, राष्ट्रीय भावना की जागृति के साथ ही हिन्दी में उपन्यास कला का विकास हुआ था । हिन्दी में सर्वप्रथम उपन्यास बंगला, मराठी और अंग्रेजी के अनुवाद रूप में प्रकाश में आये । गदाधरसिंह ने 'कादम्बरी' दुर्गेशनन्दिनी, प्रताप नारायण मिश्र ने 'राधारानी' तथा बाबू राधाकृष्ण दास ने 'स्वर्णलता' आदि उपन्यासों का अनुवाद किया ।

अनूदित उपन्यासों की रचना के साथ ही मौलिक उपन्यास भी प्रकाश में आये । सन् १८८२ ई० में लाला श्री निवासदास ने 'परीक्षागुरु' की रचना की जो हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है । इससे पहले सन् १८७० ई० में गौरीदत्त ने 'देवरानी - जेठानी' की कहानी एवं १८७७ ई० में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की रचना की थी, किन्तु यह विवादग्रस्त है कि इनमें से कौन हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास स्वीकार किया जाय ।

कथावस्तु की दृष्टि से प्रारम्भिक उपन्यासों को हम निम्नलिखित पाँच वर्गों में विभाजित करके रख सकते हैं -

१-उपदेशात्मक सामाजिक उपन्यास
२-तिलिस्मी उपन्यास
३-जासूसी उपन्यास
४-प्रेम प्रधान उपन्यास
५-भाव प्रधान उपन्यास

१- लज्जाराम शर्मा के 'आदर्श हिन्दू'

२- देवकी नन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता'

सन् १८८२ ई० से १९१७ ई० तक का युग शिल्प की दृष्टि से प्रयोगात्मक युग कहा जाता है । इस युग के शिक्षाप्रद सुधारवादी उपन्यास देश की, समाज की स्थिति के प्रति सबसे अधिक जागरूक दिखाई पड़ते हैं । यह युग पुरातन परम्पराओं एवं रूढ़ियों तथा नूतन वैज्ञानिक एवं पाश्चात्य प्रभावोंजनित संघर्ष का युग था। इस प्रकार के उपन्यासों का लेखक यथार्थ के प्रति जागरूक है , यद्यपि आदर्शवाद उसकी प्रेरणा है ।वैज्ञानिक संस्कृति के प्रभाव ने उन्हें एक वैज्ञानिक दृष्टि भी दी है । अत: राजा-रानियों और राजकुमार - राजकुमारियों की कहानी के स्थान पर ये अधिक यथार्थवादी दृष्टि लेकर चलते हैं अब हम देखते हैं कि दरिद्रवर्ग , पारिवारिक जीवन की संकटगत समस्याओं (नये बाबू,बड़ा भाई,सास-पतोहू) रईसी और कुसंग (परीक्षागुरु) वेश्या ,(काजर की कोठरी) देवदासी प्रथा (कुसुम कुमारी) बाल-विधवा(माधवीमाधव) अंग्रेजी शिक्षा का कुप्रभाव(बिगड़े का सुधार,स्वतंत्ररमा परतंत्र लक्ष्मी)साम्प्रदायिकता (निस्सहायहिन्दू) आदि प्रश्नों को लेकर चलते हैं और उनका सुधारवादी दृष्टिकोण बड़ा स्पष्ट है । यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए प्रसाद ने इसे " लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात" बताया है । लघुता का स्पष्टीकरण करते हुए वे उसे" साहित्य के माने हुए सिद्धान्त के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दु:ख और अभावों का वास्तविक उल्लेख" कहते हैं ।[1] इस प्रकार यथार्थवाद की मूल भावना वेदना है । जीवन में लघुता के कारण,दुर्बलता के कारण ,विषमता और क्रूरता के कारण जो अभाव उत्पन्न होता है उसकी अभिव्यक्ति यथार्थवाद की मूल भावना है । अत: यथार्थवाद का सीधा और प्रत्यक्ष संबंध वस्तु जगत से है, जहाँ दुर्बलों ,असफलों और क्षतों के रूप में भी जीवन के अभाव साकार होते हैं । वस्तुत: हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में यथार्थवाद की तीन स्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं । पूर्व प्रेमचन्द युग सोद्देश्य यथार्थवाद का है । जहाँ तक सुधारवादी उपन्यासों का संबंध है ,प्रेमचन्द और उनके युग के उपन्यासों में जो यथार्थवाद का स्वरूप मिलता है उसे हम सामाजिक यथार्थवाद कह सकते हैं । उत्तर प्रेमचन्द काल में प्रकृत यथार्थवाद का विकास होता है । बालकृष्ण भट्ट ने " सौ अजान एक सुजान " के अन्त में इस विचार को स्पष्ट करते हुये कहा है । अन्त में हम अपने पढ़ने वालों को सूचित करते हैं[2] कि

१- प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृ० १२

२- बालकृष्ण भट्ट -सौ अजान एक सुजान पृ० १०३ उपसंहार तेइसवां प्रस्ताव

"आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हो तो हमारे इस उपन्यास को पढ़कर आशा करते हैं सुजान बनें, इस किस्से के अजानों को सुजान करने के लिए चन्दू था और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा।" अत: इन सुधारवादी उपन्यासों में अजान ही लेखक की सुधारवादी दृष्टि के बीच में से खलपात्र के नाना रूपों में उभरता है। कभी वह रूढ़िवादी है और कभी पाश्चात्य शिक्षा का अंधानुकरण करने वाला, कभी वह समाज की गंदी परम्पराओं में से उभरता है और कभी धार्मिक ढोंगों में से, कभी इतिहास के पृष्ठों से।

परीक्षागुरु के पश्चात् प्रमुख उपन्यासकार बालकृष्ण भट्ट का "नूतन ब्रह्मचारी" (१८८३ ई०) सौ अजान एक सुजान (१८९२ ई०) राधाकृष्ण दास का "निस्सहाय हिन्दू" (१८९० ई०) अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का ठेठ हिन्दी का ठाठ (१८९९) अधखिला फूल (१९०७) लज्जाराम शर्मा मेहता का आदर्श दम्पति (१९०४) हिन्दू गृहस्थ, बिगड़े का सुधार (१९०७) धूर्त रसिक लाल (१८९९) स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी (१८९९) आदि उपन्यासों की रचना हुई। हम ऊपर कह चुके हैं कि इन उपन्यासों की रचना उपदेश, नीति एवं शिक्षा के उद्देश्य से की गई। इनमें मन को अभिभूत करनेवाली प्राणवान शक्ति का भले ही अभाव हो और शिल्प की दृष्टि से सौन्दर्य की कमी हो किन्तु इनमें लेखक की यथार्थवादी दृष्टि उल्लेखनीय है। नैतिकता एवं आदर्श के माध्यम से समाज में सुधार करना एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करना इनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए इन उपन्यासों में दो प्रकार के पात्र मिलते हैं, एक तो वे जो अच्छाइयों की खान होते थे दूसरे वे जो आदि से अन्त तक बुराइयों से घिरे रहते थे। सत् पात्र के आदर्श चरित्र को दिखाने के लिए पहले उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, खलपात्र की विजय भी उतीत होती है परन्तु अन्त में खलपात्रों को अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है और सत्पात्र विजयी घोषित होता है। इन उपन्यासों में सत् असत् का निर्णय धार्मिक परम्पराओं पर निर्भर करता था। इन लेखकों में परिवार और समाज से संबद्ध विविध प्रश्नों की चर्चा तो मिलती है किन्तु सनातन धर्म की रूढ़ियों के प्रति बड़ा प्रबल मोह है जिसके कारण वे पर्दा और विधवा विवाह का विरोध करते हुये दिखाई पड़ते हैं। सती-प्रथा के दैवी गुणों की व्याख्या करते हैं और यहाँ तक वेश्या को समाज के लिए उपयोगी भी बताते हैं। इस प्रकार उपन्यासकार की धार्मिक चेतना पर परम्परागत धारणा का गहरा प्रभाव दिखाई

पड़ता है और उपन्यास उसी की प्रेरणा से रचित होते हैं । प्रारम्भिक उपन्यासों (किशोरी लाल गोस्वामी, लज्जा राम शर्मा आदि) में खलपात्रों के चरित्र में किसी प्रकार का सुधार या पश्चाताप की भावना या लेखक की सहानुभूति के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी । खलपात्रों के प्रति सामाजिक दृष्टि घृणापूर्ण और द्वेषभाव लेकर चलती है ।

सन् १८९१ ई० में देवकी नन्दन खत्री के "चन्द्रकान्ता एवं चन्द्रकान्ता सन्तति" के साथ साथ एक अन्य शैली के उपन्यासों की लहर आई जिसमें तिलिस्मी और अय्यारी उपन्यास की रचना हुई । किशोरी लाल गोस्वामी का "लखनऊ की कब्र" या "शाही महलसरा" (१९१५ ई०) दुर्गा प्रसाद खत्री का "भूतनाथ" (१९०६ ई०) देवकी नन्दन खत्री का "नरेन्द्र मोहिनी (१८९३-९५ ई०) आदि इसी प्रकार के काल्पनिक रोमांचकारी उपन्यास हैं । जीवन के दुःखमय वातावरण से ऊबकर मानव मन को क्षणिक विश्राम देने के उद्देश्य से ही चमत्कारी चक्करदार तिलिस्मी उपन्यासों की रचना की गई । देवकीनन्दन खत्री ने कहा - " अद्भुत के प्रति निर्बाध आकर्षण होने के कारण मेरी कल्पना उत्तेजित होकर उस चित्रलोक की सृष्टि कर सकी । आखिर लोगों के पास इतना अवकाश था और जीवन की गति इतनी मंद थी कि उन्हें कुछ चाहिये था जो उसमें उत्तेजना भर सके, निदान वे साहित्य से उत्तेजना की माँग करते थे । "[1] केवल उपदेश मात्र उपन्यास पाठक को रमाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे थे और उपन्यासकारों ने अनुभव किया कि उपन्यास को जनप्रिय बनाने के लिए मनोरंजन का तत्व अनिवार्य है । अतः तिलिस्मी और ऐय्यारी उपन्यासों में जीवन का चित्र न होकर इच्छाओं के अनुसार ही कल्पना को मूर्त रूप प्रदान किया जाता था । इसके क्रियाशील पात्र कौशलों से रचित बाजीगर के समान यंत्रचालित सा काम करते थे । औत्सुक्य तृप्ति ही इन उपन्यासों का एकमात्र उद्देश्य था । इनकी कथावस्तु से उत्पन्न शंकाओं का समाधान नहीं हो पाता था । इन उपन्यासों में खलपात्रों का चित्रण अधिकतर नायक के प्रतिद्वंद्वी अथवा अधिकारपिपासु के रूप में ही हुआ है । कथानक में उनकी स्थिति या तो प्रतिनायक की रही है अथवा खल के रूप में नायिका ।

१- डा० नगेन्द्र - विचार और अनुभूति पृ० २६

खलपात्र किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति विशेष के साथ ही छल आ करता है, उसकी खलता का क्षेत्र सीमित होता था, वह घूमफिर कर कभी इसका कभी उसका अहित नहीं करता । इन खलपात्रों में साहस, धोखा द्वेष एवं प्रतिहिंसा का निरूपण हुआ है । देवकी नन्दन खत्री की अद्भुत कल्पना का चरम रूप तिलिस्म की रचना में मिलता है जिससे संबद्ध विचित्र और अतिशयोक्ति पूर्ण व्यक्तित्व से युक्त अय्यार खलपात्रों के रूप में सामने आये हैं ।

देवकी नन्दन खत्री के पश्चात् गोपाल राम गहमरी ने विषय वस्तु में एक नया मोड़ उत्पन्न कर जासूसी उपन्यासों की सृष्टि की । गोपाल राम गहमरी के " गेरुआबाबा " (संवत् १६८६ वि०) "ठनठन गोपाल " (१६३४ ई०) गाड़ी में खून आदि जासूसी उपन्यास हैं । इन्होंने तिलिस्मों के अविश्वसनीय अस्तित्व के स्थान पर यथार्थ जीवन में होने वाली घटनाओं जैसे हत्या, चोरी, अपहरण आदि के रहस्यों का उद्घाटन करना ही अपना एकमात्र उद्देश्य रखा । तिलिस्मी उपन्यासों से पाठकों की जिज्ञासा तृप्ति नहीं होती थी । ये जासूसी उपन्यास उनकी अपेक्षा वास्तविकता के अधिक निकट थे, यद्यपि अतिशयोक्ति इनका भी प्राण है । इन उपन्यासों में हत्या, भयादोहन (ब्लैकमेल) अपहरण, व्यभिचार और अपराध का बाहुल्य है । खलपात्रों का विधान तो आदर्श चरित्र को उभारने की दृष्टि से रखा जाता था न अवगुणों को प्रकाश में लाने के लिए । खलपात्रों के छलपूर्ण कार्यों का विभिन्न प्रकार से रहस्योद्घाटन ही इनका प्रमुख ध्येय था । इससे खलपात्रों के दुष्टतापूर्ण कार्य, बुद्धिकौशल, साहस एवं पौरुष का पता चलता है । वस्तुतः गहमरी जी ने अपने सम्पूर्ण पात्र समुदाय को दो कोटियों में बाँट दिया है । एक वर्ग के पात्र सज्जनता के तथा दूसरे दुर्जनता के प्रतीक हैं । सज्जनपात्र भद्र, कुलीन, श्रेष्ठ, गुण सम्पन्न, सदाचारी, विनम्र, मृदुभाषी, सहिष्णु तथा उदार हैं तो दुर्जन पात्र दुष्टता, मक्कारी, बेईमानी और क्रूरता की साकार मूर्ति हैं, ये कालान्तर में या तो सुधर जाते हैं या अपने अपराध की गम्भीरता के कारण मृत्यु दंड पाते हैं । गहमरी जी का दृष्टिकोण सुधारवादी था अतः उनका दृष्टिकोण एवं उपचार दोनों ही पक्षपात पूर्ण दिखाई पड़ते हैं । सज्जन सदा उनकी सहानुभूति के पात्र रहे हैं और दुर्जन उनकी घृणा का शिकार हुये हैं । इन उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण आदर्शवादी रहा है और सद्प्रवृत्ति की विजय होती है तथा असत् की पराजय होती है ।

इसी काल में पं० किशोरी लाल गोस्वामी के प्रेमप्रधान सामाजिक उपन्यासों जैसे 'अंगूठी का नगीना' (१९१५ ई०) 'चन्द्रावली' (१९०४ ई०) "प्रेममयी (१८७१) आदि की रचना की । इनमें समाज की गम्भीर समस्याओं एवं जीवन के वास्तविक स्वरूप का चित्रण होने के स्थान पर रीतिकालीन नायक नायिकाओं के प्रेमपूर्ण व्यापारों का चित्रण है, जो कभी कभी अश्लीलता की सीमाओं का भी स्पर्श करता हुआ दृष्टिगोचर होता है । गंगा प्रसाद गुप्त, ब्रजनन्दन सहाय आदि के उपन्यासों में प्रेम कथा की प्रधानता है । प्रेमप्रधान उपन्यासों में कभी कभी ऐतिहासिक परिवेश की भी रचना की गई । किशोरी लाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास "लाल कुँवर" (१९१३ ई०) "सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई" (१९०९ ई०) 'सोने की राख वा पद्मिनी' "लवङ्गलता" (१८९०) आदि मुस्लिम शासन काल को अपना उपजीव्य बनाते हैं किन्तु सिर्फ नाममात्र का ऐतिहासिक वातावरण ही इनमें रहता था । ऐतिहासिक वातावरण की आड़ में लेखक प्रेमलीला को ही महत्व देता था किन्तु एक महत्वपूर्ण उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उपन्यास का कथानक प्रेमप्रधान होने पर भी सदा ही खलता के केन्द्र में प्रेम नहीं होता -अर्थात् शाश्वत त्रिकोण की स्थिति और संघर्ष नहीं होता । यह स्थिति हमें "तारा वा क्षात्रकुलकमलिनी" 'लवंगलता', हीराबाई वा बेहयाई का बोरका" आदि कुछ एक उपन्यासों में ही मिलती है जिनमें क्रमशः सलाबत खाँ, सैय्यद अहमद, अलाउद्दीन प्रतिद्वंद्वी प्रेमी खलपात्रों के रूप में आये हैं, अन्यत्र उपन्यास में चाहे वे प्रेम प्रधान ही क्यों न हो पदलिप्सा, अधिकार कामना, यशलिप्सा तथा धन लोलुपता ही खलता के मूल कारण सिद्ध हुए हैं ।

आलोच्य युग में लिखे गये विभिन्न प्रकार के उपन्यासों में भाव प्रधान उपन्यासों की भी रचना हुई । ठाकुर जगमोहन सिंह का श्यामास्वप्न (१८८८) ब्रजनन्दन सहाय का सौन्दर्योपासक, राधाकान्त आदि उपन्यासों में व्यक्ति के हृदयोद्गार का चित्रण होने के कारण भाव प्रधान आलंकारिक भाषा में लिखे गये । इसमें पात्र घटना या परिस्थिति से प्रभावित न होकर पात्र भावना के वशीभूत होकर कार्य करते है । इस प्रकार के उपन्यासों में हम प्रायः खलपात्रों का अभाव पाते हैं क्योंकि भावुकता की भूमि पर लेखक प्रायः कल्पनाशील आदर्श में विचरण करता है। इस युग में धार्मिक एवं पौराणिक उपन्यासों की भी रचना हुई । तिलिस्मी अय्यारी और जासूसी उपन्यास जिनमें के बीच्य कथानहीं उभरकर आते थे । लेखकों ने यह अनुभव

कि स्त्रियों के योग्य कथा साहित्य लिखा जाये अत: ऐसे उपन्यासों की आवश्यकता प्रतीत हुई जिनसे मनोरंजन के साथ साथ स्त्रियों का हित भी हो सके । अन्य प्रकार के उपन्यास के लिए सामग्री का अभाव भले ही रहा हो परन्तु संयोग से जिस प्रकार के उपन्यास की आवश्यकता थी उसके लिए पुराणों में सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी । पौराणिक कथानक तत्कालीन समाज के लिए बहुत उपयोगी समझे जाते थे । ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने 'सीतावास' (१९२०) जगदीश झा 'विमल' ने 'सती सुलक्षणा' संवत् १९८४ और तारणी प्रसाद शर्मा ने 'सती सुलोचना', कात्यायनी दत्त त्रिवेदी ने 'द्रौपदी', 'पतिव्रता गांधारी' (१९१७) आदि धार्मिक शिक्षा प्रद उपन्यासों की रचना की । स्त्री शिक्षा से संबंधित होने के कारण इनके खलपात्रों का क्रम परम्परागत ही है ।

आरम्भिक युग में लिखे गये उपन्यासों का शिल्पगत महत्व सम्भवत: उतना नहीं है जितना आगे के उपन्यासों का । क्योंकि इस काल के लेखकों की दृष्टि अपने अपने विषय तक सीमित थी । कुछ लेखक तो केवल उपदेश की दृष्टि से और कुछ केवल मनोरंजन की दृष्टि से उपन्यास रचना कर रहे थे किन्तु मात्र रचना की दृष्टि से वे जागरूक थे । खलपात्रों की बहुरंगी रूपरेखायें हमें इस युग के उपन्यासों में मिलती है । कभी अय्यार तो कभी वासनामय प्रेमी, तो कभी विलासी राजा, कभी ईर्ष्यालु मित्र तो कभी सामन्त स्वभाव वाले रईस, तो कभी ठग खल के रूप में आये हैं । यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि खलपात्रों की रचना करते समय उनकी धारणायें प्राचीन धर्म ग्रन्थों और नीति शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट जीवन के आदर्शों पर आधारित थी। उनके असत् पात्र स्वार्थ के लिए रीति-नीति का उल्लंघन करते हैं । आगे चलकर जब व्यक्ति के व्यक्तित्व की स्वीकृति को महत्व दिया जाने लगा तब परम्परा और रूढ़ि के सामने जो प्रश्न चिन्ह बने उन्होंने खलता के मानदंडों में परिवर्तन प्रस्तुत किया ।

नूतन परिवेश में संसार और जीवन के संबंध में दृष्टिकोण आमूल चूल बदला है और अब भी बदल रहा है, उद्योग और वस्तुओं के उत्पादन और वितरण के तरीकों का बिल्कुल कायाकल्प हो गया है । जिन बुनियादी शर्तों पर लोग काम के लिए या विनोद के लिए परस्पर मिलते या अपने संगठन बनाते हैं वे बदल गई हैं । पुरानी आदतें और परम्परायें अत्यधिक अस्तव्यस्त हो गई हैं । समाज का पुराना वर्गीकरण छिन्न भिन्न हो गया है, यात्रा और प्रवर्जन पिछी जमाने में जितने

असाधारण थे आज उतने ही साधारण और आम है । पहले जो बाधायें राष्ट्रों को एक दूसरे से अलग करती थीं वे आज वैज्ञानिक कारणों से महत्वहीन हो गई हैं । ऐसी स्थिति में कर्तव्यों और गुणों की उस लम्बी सूची के पुनर्मूल्यांकन की स्थिति उत्पन्न होती है जिन्हें सुदीर्घ काल ने हमारी नजरों में सम्मान्यनीय बना दिया था। परिस्थितियों के परिवर्तन ने आज उनके व्यावहारिक अर्थ को अनिश्चित और विवाद ग्रस्त बना दिया है । नई समस्यायें और नए प्रश्न सामने हैं जिनमें ऐसे नैतिक मूल्य हैं जो स्वत: अनिश्चित और विवादग्रस्त है जैसे राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, पूँजीवाद और श्रम, विज्ञान और धार्मिक परम्परा,युद्ध और शान्ति , प्रतिस्पर्धा और सहयोग , उद्योग क्षेत्र में मुक्त व्यापार और राज्य के आयोजन, प्रशासन में लोकतंत्र और अधिनायक तंत्र , ग्रामीण जीवन और शहरी जीवन, देशी और विदेशी , व्यक्तिगत पूँजी निवेश और शेयर आदि । इसके अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन उन असंख्यक संबन्धों को ध्वंस की ओर ले जा रहे हैं जो रूढ़िजन्य नैतिकता के मुख्य संरक्षक रहे हैं । ऐसी स्थिति में विमर्शात्मक नैतिकता का प्रश्न उठता है । हमारा इस युग का उपन्यासकार नये परिवेश तथा नूतन प्रश्नों के प्रति पूर्णतय: जागरूक दिखाई पड़ता है । अगर संस्कार और प्रथायें विकृत हो चुकी हैं तो वही सलता का कारण बन जाती हैं । पुरातन मूल्यों में अनास्था का भाव,सामाजिक रीति-नीति को भी तार्किक दृष्टि से देखता हुआ बहुतेरों की महत्ता का अवमूल्यन करता है । इस अवमूल्यन या संशय के मनोभाव का ही प्रमाण भगवती चरण वर्मा की चित्रलेखा है जिसका आरम्भ ही इस प्रश्न से होता है कि पाप क्या है ? महाप्रभु रत्नांबर कहते हैं - "पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है ,पर सदा असफल रहा हूँ । पाप क्या है और उसका निवास कहाँ है यह बड़ी कठिन समस्या है । " १

१- भगवती चरण वर्मा - चित्रलेखा पृ० ५
उन्नीसवीं आवृत्ति

प्रेमचन्द युग :

१९१८ से १९३६ के काल में उपन्यास कला उपदेश और मनोरंजन के सीमित दायरे से निकल कर सामाजिक जीवन के विविध पक्षों के चित्रणकी ओर अग्रसर हुई। यों तो विविध आंदोलनों, अंग्रेजी शिक्षा, वैज्ञानिक संस्कारों के फलस्वरूप अपनी सामाजिक परम्पराओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि का उदय पिछले युग के सुधारवादी उपन्यासों में हो चुका था किन्तु प्रेमचन्द ने शिल्पसौन्दर्य के साथ यथार्थवाद का समन्वय करके हिन्दी उपन्यास को एक नया ही रूप दिया है। सामाजिक चेतना ने इस युग के उपन्यासों को तिलिस्म और रहस्य की रोमांचक दुनियाँ से खींच लिया और समसामयिक समाज और देश की दशा की ओर ध्यान आकृष्ट किया, विज्ञान और धार्मिक रूढ़ि, अंधविश्वास और वास्तविकता के सिद्धान्तों को यथार्थवादी दृष्टि से देखने की प्रेरणा दी। अत: वह रोमांसपूर्ण संसार जिसमें प्रेमी-प्रेमिका, राजकुमार-राजकुमारी, तिलिस्म और अनहोनी घटनायें थीं सहज ही ढहने लगीं। उपन्यासकारों ने परम्परा से दमित नारी की दयनीय स्थिति, सामाजिक समस्याओं तथा कुरीतियों का यथार्थ चित्रण कर उनसे मुक्त होने और उनमें सुधार लाने की भावना से समस्या प्रधान उपन्यासों की रचना की। जमींदारी, महाजनी, दहेज, गाँधीवाद एवं पूँजीवाद विचारधारा का प्रभाव भी इस युग के उपन्यासों पर दृष्टिगत होता है।

इस युग का उपन्यासकार जीवन के यथार्थ को सामने लाने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हुआ। यथार्थवादी वह होगा जो धूप और अँधेरे को उसी मात्रा में स्वीकार करने में समर्थ हो जिस ढंग से वे सब तत्व और मध्यवर्ती तत्व जीवन में प्रवेश करते हैं।" [1]

---

1. "Realist should be one who is prepared to draw equally from all sides to admit sunshines as well as darkness in the proportion to which these all intermediate elements enter into life." Foundations of English Prose - Ward. P. 83.

अत: पात्रों का वैविध्य इस युग के उपन्यासों की अभूतपूर्व विशेषता के रूप में प्रस्तुत होता है । राजा-रानी,राजकुमार-राजकुमारी , ऐय्यार और जासूस, व्यापारी - रईस और समाज सुधारक के दिन बीत चुके थे ।उपन्यासकार के सामने अब नये कथानक थे । विदेशी शासकों की कठोर नीति एक ओर , दूसरी ओर राष्ट्रीयता का आन्दोलन,किसान आन्दोलन और दीवारी और अंग्रेजी शासन के पिट्ठू आफिसर, खुशामद परस्त राजे-महराजे , रायबहादुर और खानबहादुर,पूँजीवाद अर्थ व्यवस्था में से उभरते हुये मिल मालिक और मजदूर के संघर्ष तथा मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति सामाजिक और नैतिक समस्यायें तिलिस्म और रहस्य के नितान्त काल्पनिक संसारसे निकल कर उपन्यासकार अपने चारों ओर के समाज के प्रति जागरूक होता हुआ समाज को कीड़े की तरह खाने वाले,वेश्यावृत्ति,दहेज,जाति-प्रथा,विदेशी-शासन-पद्धति तथा वर्ग संघर्ष का चित्रण करने लगा । अब खलपात्र इन्हीं प्रश्नों में से उभरते हैं,कभी क्रूर मिलमालिक के रूप में,कभी हृदयहीन जमींदारों के रूप में ,कभी रक्त तक चूस जाने वाले महाजन के रूप में,कभी व्यक्ति की उपेक्षा करके जाति की संकुचित सीमाओं का निर्धारण करने वाली पंचायत के रूप में और कभी अंग्रेजी शासन व्यवस्था के अधिकारी वर्ग के रूप में । शोषक वह चाहे सामाजिक क्षेत्र में ज्ञानशंकर , तीन कौड़ी बाबू जमींदार के रूप में है अथवा पारिवारिक क्षेत्र में कमलाचरण , गजाधर मुंशी, तोता राम,राजा महेन्द्र प्रसाद,मि० खन्ना जैसे पतियों के रूप में है जनता के प्रतिमानों के रूप में सामने आते हैं । इस युग के उपन्यासकार की पात्र रचना के क्रम में दो बातें दर्शनीय हैं एक तो उसकी मानवतावादी दृष्टि जो परम्परा से दुष्ट अथवा श्रेष्ठ को माने हुये व्यक्तियों के मूल्यों में लौट पौट कर देती है , दूसरे मानव स्वभाव की द्वैध रूप की स्वीकृति अर्थात् जो दुष्ट है वह आद्योपान्त दुष्ट ही नहीं है वरन् उसके स्वभाव में भी कुछ सत् अंश वर्तमान है और जो अच्छा है उसमें भी ईर्ष्या,लोभ तथा अन्य अवगुण पाये जा सकते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्राचीन दृष्टिकोणों के प्रति जोरदार आन्दोलन दृष्टिगत होता है । पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा वह जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते थे । उनका दृष्टिकोण एकांगी नहीं था । वह पात्रों के सत् और असत् दोनों पक्षों का यथार्थ चित्र अंकित करते थे । अनेक पात्रों को बहुधा स्वार्थपरता और परार्थ चिन्ता उदारता और संकीर्णता , कर्तव्यपरायणता और कामना पूर्ति आदि परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के पथ से गुजरना पड़ता है ।अब

यह बात दूसरी है कि उनके पात्र यह निर्णय लेने में देर नहीं करते कि उनका मार्ग कौन सा है। " मानवता के बड़े हिमायती होते हुये भी उन्होंने अपने उपन्यासों में मानव की स्वाभाविक कुछ दुर्बलताओं को खुलकर चित्रित किया है। "[1] प्रेमचन्द ने सेवासदन में जहाँ कामुक, स्वार्थी, निर्दयी, धर्म के नाम पर पापाचार करने वाले महन्त राम दास का चित्रण किया है वहीं निस्वार्थी दयालु परोपकारी महात्मा गजानन्द का चित्रण करना भी नहीं भूले हैं।

प्रेमचन्द ने "सेवासदन", गबन", निर्मला", प्रतिज्ञा और गबन आदि उपन्यासों की रचना विशुद्ध विशुद्ध रूप से सामाजिक समस्याओं जैसे विधवाविवाह, दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह आदि को दृष्टि में रखकर की। अन्य उपन्यास जैसे प्रेमाश्रम कर्मभूमि, गोदान में सामाजिक, राजनैतिक आन्दोलनों तथा जमींदारों के अत्याचार को दिखा कर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद द्वारा उपन्यास कला में विषय वस्तु की दृष्टि से नया दृष्टिकोण उपस्थित किया।

प्रेमचन्द ने सामाजिक विषमताओं और कुरीतियों का यथार्थ चित्रण करने तथा सत्पात्र के आदर्श चरित्र को उभारने के लिए ही खलपात्रों की रचना की है। प्रेमचन्द के खलपात्र मानव हैं इसलिए पश्चाताप और सुधार के द्वारा अन्त में वह साधारण मानव का सा आचरण करने लगते हैं।

प्रसाद ने कंकाल", तितली" और इरावती (अपूर्ण) की रचना कर समाज की जर्जर एवं खोखली नींव तथा उसमें फैले भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण कर मानव अधम मनोवृत्ति का परिचय दिया। सम्मिलित परिवार की बुराइयाँ, समाज में फैली विषमता तथा उससे उत्पन्न ईर्ष्या, द्वेष, दुष्टता आदि का चित्रण प्रसाद की विशेषता है।

प्रेमचन्द, प्रसाद के अतिरिक्त विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की "माँ" "भिखारिणी" वृंदावन लाल वर्मा के "प्रत्यागत", "लगन", "कुंडली चक्र" चतुर सेन शास्त्री के "आत्मदाह", "अमर अभिलाषा", ऋषभ चरण जैन के "वेश्यापुत्र" "भाग्य" बेचन शर्मा उग्र का "शराबी" भगवती प्रसाद बाजपेयी के "लालिमा" आदि उपन्यासों में उपरोक्त नाना प्रकार की समस्याओं का चित्रण मिलता है। भगवती चरण वर्मा ने चित्रलेखा में मानव मन की दुर्बलताओं-सबलताओं, पाप पुण्य की नैतिक मान्यताओं में अन्तर उपस्थित कर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि पाप पुण्य

१- डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० सं० ५६

स्वयं में कुछ नहीं है परिस्थिति विशेष ही किसी आचरण पाप अथवा पुण्य होने की उत्तरदायी है ।

वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास "गढ़कुंडार" "विराटा की पद्मिनी", "मुसाहिब जू" आदि में बुन्देलखंड के बीते हुए वातावरण का यथार्थ चित्र दृष्टिगत होता है । ऐतिहासिक परिवेश में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्र प्रेम और साहस की रोमांचकारी घटनाओं का वर्णन इनमें किया गया है । पात्रों के चित्रण में देश काल, वातावरण, भाषा - शैली सभी तत्वों का ध्यान रखा गया है । इन उपन्यासों में राज्य में अराजकता फैलाने वाले राजनीतिक तत्वों का यथार्थ चित्र इनकी विशेषता है । निराला का प्रभावती उपन्यास भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

प्रेमचन्द तथा उनके युग के अन्य उपन्यासकार इस तथ्य में विश्वास करते थे कि कला का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व के सबसे महत्वपूर्ण मोड़ का चित्रण करना है । उन्हें मानव के अंतर्गत महान मानवीय तथ्य में क्षणभर के लिए भी अविश्वास नहीं था और उनका विचार था कि सामाजिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों के बीच उसकी विशेषताओं का तथा संघर्ष का ठीक ठीक अंकन हो सकता है । उनकी सहानुभूति दलित और पीड़ित के साथ होती थी और प्राय: अत्याचारी उनकी कु दृष्टि का पात्र होता था । उसमें वे या तो परिवर्तन कर देते हैं, सुधार ले आते हैं या किसी न किसी रूप में दंडित करते हैं, यही उनके काव्यात्मक स्वप्न का स्वरूप है । लूकाच ने कहा है -"कथावस्तु यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने का काव्यमय रूप है । "[१]

प्रेमचन्द ने दहेज (निर्मला) विधवा विवाह (प्रतिज्ञा) अनमेल-विवाह अमरकान्त और सुखदा (कर्मभूमि) इन्दु और महेन्द्र (रंगभूमि) सुमन और गजाधर (सेवासदन) सुमित्रा और कमला (प्रतिज्ञा में) तोताराम और निर्मला (निर्मला) भैरव और सुभागी (रंगभूमि) वेश्या (सेवासदन) वृद्धविवाह (कायाकल्प और रंगभूमि) बाल-विवाह, अन्तर्जातीय तथा अन्तर साम्प्रदायिक विवाह (रंगभूमि) आदि विभिन्न सामाजिक समस्याओं के परिवेश में समाज के लिए श्रेय का मार्ग निर्धारित करने की चेष्टा की है ।

१- स्टडीज इन यूरोपीयन रियलिज्म पृ० १६३

मानव मन के ऊहापोहों के संबंध में वैज्ञानिक दृष्टि का प्रादुर्भाव होने उपन्यास के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की बहुलता दृष्टिगत होती होती है। अभी तक उपन्यास में समाज की समस्याओं को ही महत्व दिया जाता था परन्तु प्रेमचन्द के साथ ही साथ जैनेन्द्र,इलाचन्द्रजोशी, अज्ञेय आदि उपन्यासकारों ने सामाजिक परिवेश में मानव मन में उठने वाले संघर्षों , अन्तर्द्वन्द्वों का सूक्ष्मता से विश्लेषण कर उसका चित्रण करना अपने उपन्यासों का ध्येय बनाया । मानव मन की बाह्य क्रियायें गौड़ हो गई अन्तर्मन में उठने वाली भावनाओं ,संवेगों और विचारों का विश्लेषण करना महत्वपूर्ण माना जाने लगा । क्योंकि व्यक्ति में बाह्य और अन्तर की टकराहट प्रतिक्षण प्रतिध्वनित होती रहती है , बाह्य सदैव ही अन्तर के समानान्तर नहीं होता ।

२० वीं शताब्दी पर सबसे गहरा प्रभाव एक ओर फ्रायड का और दूसरी ओर मार्क्स का हुआ । इसका अनुभव पश्चिमी आलोचकों ने प्रथम महायुद्ध के बाद ही किया था । फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद व्यक्ति मानस की अन्तरंग रेखाओं के उद्घाटन को महत्व देता है । इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारण के मूल्यों में ही मूलभूत परिवर्तन प्रस्तुत करता है ,नूतन नैतिक मूल्यों के प्रश्नों को उभारता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के चरित्र के निर्माण में उसके वातावरण का प्रभाव कितना है और परिस्थिति की बाध्यता कितनी है यह तथ्य मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में सामने आये । यह दृष्टि सद् और असद् के निर्णायक या क्रम निर्धारण में भी परिवर्तन प्रस्तुत करती है । जो सामान्यत: देखने में महान है श्रेष्ठ है साफ सुथरा है उसी के भीतर दुष्टता के कीड़े रह सकते हैं और जो सामान्यतः देखने में भद्दा,गन्दा और पतित हैं उसी में महानता के तत्व रह सकते हैं । " कंकाल' में जयशंकर प्रसाद ने एक स्थान पर देवनिरंजन के द्वारा कहलावाया है -"किशोरी मैंने सोचकर देखा कि मैंने जिसे सबसे बड़ा अपराधी समझा था वही सबसे अधिक पवित्र है ।"[१] वस्तुत: कंकाल समाज के कंकाल को ही विजय,तारा मोहन जैसी जारज संतानों,यमुना जैसी अविवाहित माताओं , गुलेनार जैसी बाल वेश्याओं , लतिका जैसी परित्यक्त स्त्रियों,घंटी जैसी अनाथ कुलशील छोकरियों के रूप में प्रस्तुत करता है

१- प्रसाद - कंकाल पृ० २६०

और यह कहना चाहता है कि जब सारा समाज ही चारज है तो कुछ एक को ही घृणा का पात्र क्यों समझा जाये । यह दृष्टि परम्परागत नैतिक मान्यताओं और आदर्शों पर भी आघात करती है । हिन्दी में जैनेन्द्र,अज्ञेय,इलाचन्द्रजोशी आदि के उपन्यासों में इस प्रवृत्ति का विकास दिखाई पड़ता है । जैनेन्द्र के परख सुनीता , इलाचन्द्र जोशी के (घृणामयी) या लज्जा आदि इसी प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं इन उपन्यासों में लेखक ने पात्रों के चरित्र का मानवीकरण करके नायक के चरित्र में ही खलपात्र की कमजोरियों का दिग्दर्शन कराया है । नायक को ही खलनायक का बाना पहना दिया है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के साथ साथ निराला के यथार्थवादी उपन्यास भी प्रेमचन्द युग की विशेषता है । निराला की "निरुपमा","अप्सरा" तथा अलका" यथार्थवादी उपन्यास की श्रेणी में आते हैं । इनमें निराला के काव्य गीतों तथा उनकी काव्यात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । प्रेमचन्द की भाँति निराला ने भी जमींदारों के निर्मम अत्याचारों एवं उनकी स्वार्थवृत्ति का चित्रण कर नारी के अदम्य साहस और सतीत्व का परिचय दिया । उग्र ने नग्न यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की ।

अतः हम कह सकते हैंकि प्रेमचन्द युग में उपन्यास कला निरन्तर परिपक्वता को प्राप्त होती गई । नीति एवं उपदेश के सीमित घेरे से निकल कर वह मानव जीवन के अनुभूति चित्रण ,उत्थान-पतन,समाज की अवस्थाओं और मानव चरित्र के विश्लेषण की ओर अग्रसर हो रही थी । आदर्श और यथार्थ अभी भी उसके विचारों मानदंड थे । वैज्ञानिक युग में मानव की अपरिमित शक्ति ने ज्ञान विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता के साथ ही उपन्यास के क्षेत्र को भी विकसित किया ।

अध्याय - २

उपन्यास और कथ निरूपण

अध्याय - २

उपन्यास और स्त्रीनिरूपण

उपन्यास की परिभाषा :

उपन्यास कल्पनात्मक गद्य कृति है । असीम होने के कारण कल्पना सीमाबद्ध नहीं हो सकती । कल्पना वास्तविकता पर आधारित है और वास्तविकता परिवर्तनशील है । नवीन अनुभव होते रहने से कल्पना कहीं पर भी अन्त को प्राप्त नहीं होती । अपने राजनीतिक,सामाजिक आदि परिवेश से संचालित होने के कारण उपन्यास की निश्चित परिभाषा सम्भव नहीं । अत: समय समय पर उसकी नवीन परिभाषायें सृजित होती रही हैं । उपन्यास के अनेक पक्ष हैं - कथावस्तु,पात्र,शिल्प आदि ।विद्वानों ने भिन्न भिन्न दृष्टियों से परीक्षा कर उपन्यास की परिभाषा करने का प्रयत्न किया है । किसी वस्तु के समस्त पक्षों का एक साथ अवलोकन करना, प्रथम तो सम्भव ही नहीं है फिर भी यदि उसके सारे पक्षों को दृष्टि में रखकर उसकी परिभाषा करें भी तो वह परिभाषा न होकर मीमांसा हो जायेगी । इसके अतिरिक्त उपन्यास की कोई निश्चित परिभाषा निर्धारित न हो सकने का एक अन्य कारण यह भी है कि उपन्यासों के एक ही पक्ष पर विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं । फिर भी पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों अपनी अनुभूतियों एवं विचारों के अनुसार समय-समय पर उपन्यास की परिभाषा करते रहे हैं । हम यहां पर कुछ परिभाषाओं का उल्लेख करके उनकी दृष्टि की विवेचना करेंगे ।

शिप्ले के अनुसार -"उपन्यास गद्य में लिखी हुई पर्याप्त आकार की उस कल्पित कथा को कहते हैं जिसमें <u>यथार्थ जीवन का प्रतिबिम्बित करते हुए पात्र और</u>

कार्य व्यापार कथानक के अन्तर्गत चित्रित हों ।"[१]

उपन्यास की कथा ऐतिहासिक अर्थ में सत्य नहीं होती प्रत्युत सत्यानुरूप होती है ।[२] डा० हर्बर्ट जे० मुलर के अनुसार -"उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है, चाहे वह यथार्थ हो अथवा आदर्श और इस प्रकार उपन्यास में अनिवार्यतः जीवन की आलोचना रहती है ।"[३] फील्डिंग उपन्यास को मनोरंजक गद्य महाकाव्य मानते हैं ।"[४] क्लारीव उपन्यास को "स्वकीय युग के यथार्थ जीवन और रीति-व्यवहार का चित्र मानते हैं ।"[५]

लार्ड डेविड सिसिल का कथन है कि -"उपन्यास एक ऐसी कलाकृति है जो हमें एक जीवित जगत से परिचित करा देती है । यह जगत अनेक दृष्टियों से हमारे जगत से ही समान होता है और साथ ही उसका अपना निजी व्यक्तित्व भी बना रहता है ।"[६]

---

1. "A fictitious prose tale or narrative of considerable length in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot." Shipley. The quest for literature.
2. Encyclopaedia Britannica Vol.16 London.
3. "The novel is typically a representation of human experience whether liberal or ideal and therefore inevitably a comment upon life." Herbert J. Muller. Modern Fiction- A study of values - P. 14.
4. "A comic epic in prose is of course too narrow in one direction."
5. "The novel is a picture of real life and manners and of the times in which it is written." Progress of Romance. P.18
6. Hardy the Novelist. Lord David Cecil.

जे० बी० प्रीस्टले का कथन है -"उपन्यास गद्य कथा है जिसमें मुख्यत: काल्पनिक पात्र और घटनाएँ रहती हैं । उपन्यास को जीवन का एक बड़ा दर्पण कहा जा सकता है । इसमें साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक विस्तार वादी दृष्टि रहती है । उपन्यास को हम अनेक रूप से वर्णित कर सकते हैं । उसे सादा और सरल वर्णन,सामाजिकता का चित्र,चरित्र प्रदर्शन, तथा जीवन दर्शन यान आदि कह सकते हैं और यदि इन सारी विशेषताओं को छोड़ कर उसे केवल उपन्यासकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कहें तो भी अनुचित न होगा ।"[१]

हेनरी जेम्स ने अपने निबन्ध"द आर्ट ऑव फिक्शन" में उपन्यास की परिभाषा देते हुये कहा है कि'उपन्यास अपनी व्यापक परिभाषा में जीवन का व्यक्तिगत तथा प्रत्यक्ष प्रभाव होता है ।"[२] इसका तात्पर्य यह है कि जीवन की व्याख्या इसमें वैज्ञानिक या सैद्धान्तिक नहीं होती है । एक ओर उसका आधार उपन्यासकार के व्यक्तित्व में निहित कल्पनात्मक बोध है दूसरी ओर जीवन का प्रत्यक्ष प्रभाव है ।"

डा० श्यामसुन्दर दास के अनुसार-"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।"[३] उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का कथन है कि-"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[४] डा० भगीरथ मिश्र का मत है कि युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उपन्यास कहलाता है ।"[५]

---

1. The English Novel P. 1-2
2. 'A novel is in its broadest definition a personal,a direct impression of life ; P. 298.

३- डा० श्याम सुन्दर दास -साहित्यालोचन पृ० १८०

४- प्रेमचन्द - कुछ विचार पृ० ३०

५- डा० भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र पृ० ७६

डा० गुलाब राय के अनुसार-" उपन्यास कार्य-कारण की श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"[1]

डा० गणेशन ने उपन्यास के रंजक तत्व और जीवन संबंध का समीकरण करते हुये कहा -" उपन्यास मनुष्य के सामाजिक वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक प्रतिरूप है, जो प्राय: एक कथा सूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।"[2]

भारतीय एवं पाश्चात्य मतों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनोरंजन का प्रबल माध्यम होने के साथ साथ उपन्यास यथार्थ और आदर्श जीवन की कल्पित कथा, अखण्ड समाज, व्यक्ति और उसके रीति-रिवाजों का चित्र है । उपन्यास में ऐतिहासिक सत्य कल्पना के रंग से रंजित हो जीवन का काव्य बन जाता है । अधिकांश परिभाषाओं में उपन्यास के अन्तर्गत मानव जीवन के चित्रण को स्थान दिया गया है । उपन्यास मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों के विश्लेषण द्वारा व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का परिचय देता है ।

पात्रों और घटनाओं में वह मानव के बल-दौर्बल्य, साहस-भीरुता, ज्ञान अज्ञान, विवेक-अविवेक, दासता-अदासता, अनुरक्ति-विरक्ति, धैर्य-अधैर्य, संतोष-असंतोष, सहिष्णुता-असहिष्णुता, प्रेम-घृणा, सुख-दु:ख, विकास-ह्रास, उन्नति-अवनति, जय-अपजय, सज्जनता-असज्जनता, उदारता-कृपणता, कोमलता-कठोरता, सुन्दरता-कुरूपता, एवं महानुभावताऔर लघुता आदि का उपन्यास एक सफल परिचायक है ।

आज मनुष्य की विचारधारा एवं क्रिया-कलाप अत्यन्त विस्तृत हो गया है । उसकी बौद्धिक क्षमता की कोई सीमा नहीं । अत: उपन्यास का क्षेत्र मानव तक ही सीमित न रह कर सृष्टि की समस्त वस्तुओं में व्याप्त है ।

१- बाबू गुलाब राय - काव्य के रूप पृ० १४७

२- डा० गणेशन - हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन पृ० २६

उपन्यास अस्तित्व के चर - अचर , जड़ - चेतन जो कुछ भी प्रकृति द्वारा निर्मित है उन सभी का ऐसा चित्र है जो उनके गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन-उनके गुणों की विभिन्नता-,उनकी समता का बोध-,उनकी अनुभूतियों एवं अनुभवों को व्यक्त,-उनके रीति रिवाजों-सभ्यता,संस्कृति एवं कला को प्रकाशित-उनके जीवन काल में घटित घटनाओं का वर्णन-किसी भी साधन द्वारा आविष्कृत,अन्वेषित, एवं उत्पन्न वस्तुओं का निरूपण -प्राकृतिक,व्यक्तिगत,पारिवारिक,सामाजिक,राजनैतिक, आर्थिक,नैतिक एवं आध्यात्मिक स्थितियों को प्रकट-,कल्पना का सहारा लेकर भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों के उनके सभी शारीरिक , मानसिक,बौद्धिक एवं आत्मिक पक्षों को गल्प की आड़ में स्पष्ट करता है । यही कारण है कि आज उपन्यास ने महाकाव्य का स्थान ले लिया है । यथार्थ जीवन की जैसी अभिव्यक्ति उपन्यास में सम्भव है ,वैसी महाकाव्य के अन्दर नहीं । नाटक , छोटी कहानी आदि भी अपनी संकुचित सीमाओं के कारण यथार्थ के सूक्ष्म और पूर्ण अंकन में उतनी सफल नहीं जितना उपन्यास । "मानव जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ चित्र उपस्थित करने के लिए उपन्यास साहित्य का क्षेत्र अपेक्षाकृत अन्य साहित्यिक रूपों से अधिक उपयुक्त है ।"

अतः हम कह सकते हैं कि उपन्यास एक कृति है जैसे एक चित्र या मूर्ति । जिस प्रकार चित्रकार तूलिका के द्वारा मानव मन एवं प्रकृति के भावों को प्रकट करता है उसी प्रकार उपन्यासकार भी शब्दों के माध्यम से मानव जीवन की गहराइयों को चित्रित करता है ।

उपन्यास में मानव जीवन की अभिव्यक्ति :

उपन्यास मानव जीवन की सफल अभिव्यक्ति है । यह मानव जीवन की कहानी है - एक प्रकार से मानव की कहानी है ।

उपन्यास पर यह दायित्व स्वभावतः आ जाता है कि वह जीवन का उसी के अनुरूप प्रतिनिधित्व करें । मानव जीवन सीमाबद्ध नहीं । जीवन का रूप रंग अनंत हैं । प्रत्येक जीवन अपनी विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम होता है ।

उपन्यास में चित्रित मानव जीवन तभी प्राणवान होता है जब वह अपनी व्यक्त परिस्थितियों के आलोक में प्रस्तुत हो । कथा में मानव जीवन का परिचय उसके इस्टक चरित्र एवं परिस्थिति आदि से मिलता है । उपन्यास में मानव जीवन का परिचय भी साधारणतया इन्हीं आधारों पर मिलता है । मानव जीवन का परिचय देने के लिए उपन्यासकार को अनुभव,मानवमनोविज्ञान का ज्ञान,मानव जीवनों में रुचि,मानव जीवन के अध्ययन की जिज्ञासा और सहानुभूति आदि को साथ लेकर चलना अनिवार्य है । मात्र उपन्यास जीवन की अभिव्यक्ति की सबसे सशक्त विधा के रूप में स्वीकृत है ।

जे० बी० प्रीस्टले ने उपन्यास को दर्पण सदृश माना है किन्तु उनकी यह परिभाषा अधूरी ही है । दर्पण में केवल बाह्य रूप,रंग,आकार और आकृति का प्रतिबिम्ब पड़ता है । उपन्यास की विशेषता यह है कि वह अपनी सामर्थ्यानुसार बाह्य स्थिति को प्रकट करने के साथ-साथ आन्तरिक स्थिति एवं पात्र के गुण अवगुण को भी प्रकाशित करता है । दर्पण में स्वरूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है स्वभाव का नहीं । मन,बुद्धि एवं चित्त की आन्तरिक स्थितियों एवं उसमें हो रही उथल पुथल का ज्ञान कराना उपन्यास का ही कार्य है । उपन्यास में मानव स्वभाव,स्वभाव के सत् एवं असत् रूप,उदात्त एवं अनुदात्त तत्वों का दर्शन होता है ।

मानव स्वभाव का पूर्ण रूप उपस्थित करना अथवा उसका पूर्ण चित्र अंकित करना उतना ही दुःसाध्य है जितना आकाश की सीमा निर्धारित करना । मानव स्वभाव के अमर होने का रहस्य उसके विस्तार अथवा आकार में नहीं प्रत्युत उसकी विचित्रता अथवा उसके प्रकार में छिपा हुआ है । व्यक्तिगत प्रवृत्ति ही स्वभाव है । स्वभाव मानव व्यक्तित्व का सत्व है । व्यक्तित्व कार्य है स्वभाव है कारण । स्वभाव रुचि निर्मित करता है और वह उसी में दृष्टिगोचर होता है । मानव स्वभाव प्रकृति के अधीन एवं अनंत भाव का प्रत्यक्ष रूप है ।

मानव स्वभाव की अभिव्यक्ति उसके कर्म,वाणी एवं व्यवहार द्वारा होती है । कर्म एवं वचन के आधार पर ही चरित्र के स्वभाव का निर्णय किया जाता है। मानव स्वभाव की सम्पूर्ण चेष्टायें,कर्म एवं मुख से उच्चरित सम्पूर्ण वाणी वचन है । अभिप्राय की पूर्ति के लिए कर्म एवं अभिप्राय की अभिव्यक्ति के लिए वचन है । कर्म एवं वचन ही जीवन का वहन करते हैं । गूंगा जिसके पास वाणी का अभाव है वह

अभिप्राय अभिव्यक्ति के लिए संकेत का अवलम्ब ग्रहण करता है ।

स्वभाव में पूर्व संस्कार का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इस तथ्य को तो स्वीकार करेंगे ही कि जीवन की परिस्थितियाँ एवं वातावरण प्रत्येक पात्र के जीवन में मौलिक एवं नवीन प्रभाव डालते रहते हैं । ये सर्वदा,सर्वत्र एवं सर्वथा नूतन संस्कार भिन्न भिन्न स्वभाव निर्मित एवं उत्पन्न करते हैं । एक ही जैसी परिस्थिति वातावरण और संगति में पलकर भी जब विभिन्न पात्र भिन्न भिन्न स्वभाव प्रदर्शित करते हैं तो उसका कोई सूक्ष्म अथवा गूढ़ रहस्य होता है । यह रहस्य यह है कि सब की शारीरिक , मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक क्षमता एक ही स्तर की नहीं होती। जब इनकी विभिन्नता का कारण खोजते हैं तो उत्तर में केवल संस्कार का प्रभाव ही समझ में आता है । संस्कार चाहे पूर्व हो या प्रत्यक्ष,स्वभाव में भिन्नता का कारण वे ही हैं ।

त्रिगुण के आधार पर मानव स्वभाव को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है ।[1]सतोगुणी,रजोगुणी एवं तमोगुणी । सतोगुणी स्वभाव की दृष्टि विश्व कल्याण पर , रजोगुणी स्वभाव की दृष्टि प्रथम अपने फिर दूसरे के हित पर एवं तमोगुणी स्वभाव की दृष्टि केवल अपने स्वार्थ पर रहती है । एक का लक्ष्य परहित, दूसरे का स्वहित और तीसरे का इन दोनों भावनाओं से सर्वथा विपरीत शुद्ध स्वहित होता है ।

तुलसीदास जी ने मानव स्वभाव को तीन वर्गों में विभाजित किया है- "एक सुमन प्रद,एक सुमन फल,एक फलहिं केवल लागहि ।" एक केवल करता है कहता कुछ नहीं । एक कहता भी है और करता भी है । एक केवल कहता है और करता नहीं ।

मानव स्वभाव का सबसे आकर्षक गुण उसकी विभिन्नता है । अनुभवसिद्ध है कि मानव विविध ढंगों से व्यवहार करता है । व्यवहार का कारक स्वभाव ही आधार है । एक ही प्रकार की स्थिति में दो व्यक्ति एक ही ढंग का व्यवहार करते नहीं पाये जाते । एक अत्यन्त मधुरता से और दूसरा अत्यन्त कठोरता से प्रस्तुत होता है ।

१- सत्वं रजस्तम इतिगुणा: प्रकृति सम्भव: ।
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।। गीता १४।५

प्रेम, धैर्य, विश्वास, सहिष्णुता, कुशलता एवं दूरदर्शिता के अतिरिक्त व्यक्ति समाज, शासन एवं परिस्थिति से निपटने में इनके विपरीत भावों से भी प्रेरित होता है ।

यही व्यवहार भेद प्रिय-अप्रिय, अथवा सत्-असत्, सुन्दर-असुन्दर, उदात्त-अनुदात्त का सृजन करता है । उदात्त यदि उत्कृष्ट संकेत की सशक्त अनुभूति है, सौन्दर्य का चरम रूप है तो अनुदात्त निकृष्ट विचारों एवं भावों की रूपरेखा है और सुसंस्कृत सौन्दर्य बोध पर आघात करता है । मूल्यवादी सौन्दर्य दृष्टि भी अनुदात्त को स्वीकृति नहीं देती । सत्-असत् स्वभाव का रूप अथवा गुण है । व्यावहारिक दृष्टि से स्वभाव को केवल सत् असत् दो ही वर्गों में विभाजित किया जाता है । स्वभाव का यह सत् असत् भेद पात्र को सत् अथवा असत् की कोटि में रखता है ।

आचरण में व्यक्त होकर सत् असत् किस प्रकार चरित्र को सामाजिक रूप से प्रिय अथवा अप्रिय बना देता है इसके उदाहरण के लिए तुलसीदास जी का यह निरूपण अद्वितीय है -

" बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं, मिलत एक दारुण दुःख देहीं ।"

साधु-असाधु, सुर-असुर, देव-दानव सभी स्वभाव के चरित्र होते हैं । सत् और असत् दोनों के रूप असंख्य हैं । सत् और असत् दोनों ही विविध परिमाण एवं रूप में चरित्र के व्यक्तित्व से प्रकट होता है । सत् की सुन्दरता का अनुपात सर्वत्र एक ही जैसी नहीं वरन् न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती है । इसी प्रकार असत् की भयंकरता भी सर्वत्र एक ही मात्रा में नहीं पाई जाती । साधु अथवा खल विभिन्न कोटि के होते हैं । उपन्यास रूपी दर्पण समाज के इन सत् असत् का वास्तविक रूप प्रतिबिम्बित करता है ।

प्रेमचन्द ने जब यह कहा कि "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ" तो उसका यही तात्पर्य है कि उपन्यासकार अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने में समर्थ है । व्यक्ति की क्रिया प्रतिक्रिया और उसके आन्तरिक मनोभावों का कारण, अध्ययन मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है । व्यक्ति कब कैसे क्या करता है इसका निरीक्षण इसका विशेष कार्य है । व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं तक ही नहीं, मनोविज्ञान ने उसकी भावनाओं, संवेगों एवं संवेदनाओं को भी अपने अध्ययन का विषय बनाया है । व्यक्ति की मानसिक दशा एवं स्थिति का अन्वीक्षण तथा मानव मन पर समय विशेष पर छिड़े रहे संघर्षात्मक [illegible] का पता लगाना

मनोविज्ञान का विशिष्ट लक्ष्य है ।

चिन्तन के क्षेत्र में विज्ञान के प्रवेश से मानव मस्तिष्क का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई । मानव जीवन की घटनाएँ और उसके बाह्य आचरणों का ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त उसके आन्तरिक भावों का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक समझा जाने लगा । घटना अथवा क्रिया के मूल कारण को प्रकाश में लाने के लिए मनोविज्ञान का अवलम्ब आवश्यक हो गया ।

पात्रों के केवल सामान्य बाह्य आचरणों और घटनाओं के केवल बाह्य रूप से पाठकों को पूर्ण संतोष प्राप्त होना सम्भव नहीं । पात्र की मानसिक स्थिति का विश्लेषण और घटनाओं के सूक्ष्म कारणों के स्पष्टीकरण के अभाव में कथा का खोखली एवं अभावग्रस्त प्रतीत होना स्वाभाविक है । मनोविज्ञान के आधार पर उपन्यास-कार की कल्पना पात्र की नस नस में प्रवेश कर उसे सब और से अनावृत करने में सफल हुई । समाज में निवास करने वाले व्यक्तियों को उनके यथार्थ रूप में सम्मुख उपस्थित करना सरल हो गया ।

अभिव्यक्ति की मनोवैज्ञानिक प्रणाली ने पात्र का अभ्यंतर खोल कर उसके मानस तल पर उत्पन्न हो रहे अथवा हो सकने के सम्भव संकल्प विकल्प का चित्र यथार्थ रूप में उपस्थित करना प्रारम्भ कर दिया । इससे पाठक की जिज्ञासाओं की निवृत्ति अधिक होने लगी । डा० देवराज उपाध्याय के अनुसार "मानव मस्तिष्क एक उलझा हुआ कबाड़ है । उसमें सारी चीजें अपने अस्थिर रूप में वर्तमान रहती है । इस अस्थिरता और चांचल्य को स्थिर और दृढ़ रूप में दिखलाने का प्रयत्न मनोवैज्ञानिक उपन्यास करता है ।" [१]

हम संकेत कर चुके है कि मानव स्वभाव एवं उसका अन्तर्जगत पात्र के कर्म,वाणी एवं विचारों में प्रतिबिम्बित होता है । कर्म,वाणी एवं विचारों का चित्रण मनोविज्ञान का आधार प्राप्त कर अपनी प्रणाली में पात्र की मनोस्थिति को भी व्यक्त कर मनोवैज्ञानिकता का रूप ग्रहण कर लेती है । पात्र की मनोस्थिति का

१- डा० देवराज - जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ २

ज्ञान व चित्रण कला में मनोवैज्ञानिकता द्वारा ही सम्भव है । स्वभाव प्रेरित घटनायें प्रिय हों अथवा अप्रिय परिस्थिति के प्रकाश में जब पात्र के मनोविश्लेषण के साथ साथ चित्रित होती हैं तो वे अनिवार्यतः मनोविज्ञान पर आधारित होती हैं । उपस्थित परिस्थिति में पात्र के व्यवहार को उसके मानसिक स्तर एवं स्थिति के अनुरूप चित्रित करने के लिए मनोविज्ञान की आवश्यकता अपेक्षित है ।

पात्र जैसा भी है और अपनी योग्यता,सामर्थ्य,~~कुछ भी कर~~ क्षमता एवं गुण के अनुसार अमुक परिस्थिति में वह जो कुछ भी कर सकता है या उसे जो करना चाहिए उसको उसी प्रकार उपन्यास में प्रस्तुत करना लेखक की मनोवैज्ञानिक योग्यता पर निर्भर है । मनोविज्ञान से परिचित होने के लिए व्यक्ति निरीक्षण एवं आत्मान्वेषण दोनों ही आवश्यक हैं । प्रकृतिदत्त मानव सबलता एवं दुर्बलता सभी में न्यूनाधिक मात्रा में वर्तमान है । व्यक्ति निरीक्षण द्वारा मानव मन का प्राप्त परिचय आत्मनिरीक्षण के संयोग से अधिक स्पष्ट एवं सुबोध हो जाता है । उपन्यासकार ने मनोविज्ञान के प्रति कितनी अभिरुचि और उत्सुकता रखी है और उसने व्यक्ति निरीक्षण ,आत्मनिरीक्षण को क्या महत्व दिया है इसी पर उसकी पात्र रचना की मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि की सफलता निर्भर है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास में मनोविज्ञान का प्रतिबिम्ब तो अनिवार्य ही है परन्तु वे उपन्यास भी जो इस कोटि में नहीं आते उनमें भी मनोविज्ञान का सर्वथा अभाव नहीं होता । पात्र के स्वभाव गुण एवं परिस्थिति से तो सभी उपन्यासों में परिचय देना पड़ता है इनमें से बहुत कुछ पात्र के मन से संबंधित रहता है। मन से संबंधित जो भी है उसके चित्रण में मनोविज्ञान स्वतः प्रतिबिम्बित होता है अन्तर प्रणाली में है । एक आधारित है मनोविज्ञान पर जब कि अन्य में प्रणाली का दृष्टिकोण भिन्न होता है ।

उपन्यास में असत् चित्रण का महत्व :

असत्विहीन समाज की कल्पना सम्भावना से परे एवं प्रकृति के विरुद्ध है । प्रत्येक युग का समाज युग की विशेषता के अनुरूप इस तत्व से सर्वथा युक्त रहा है । समाज में मानवता की मूर्ति सत् और पाशविकता की प्रतिमूर्ति असत् दोनों का ही दर्शन होता है । असत् वांछनीय,अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय न होते हुये भी समाज का

अभिन्न अंग है । अतिक्रमण, बलात्कार, अत्याचार, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, शोषण, हत्या और अनृत आदि समाज में होते रहते हैं । काम, क्रोध-लोभ की प्रवृत्ति एवं द्रोह, भ्रान्ति, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा आदि की भावनायें कारण रूप में देश, मनुज समाज परिवार अथवा व्यक्ति का अपकार और अनिष्ट करती रहती है । समाज में व्याप्त व्यथा , व्याधि तथा विपत्ति का कारण जब दैविक नहीं होता, तो होता है भौतिक दूसरे शब्दों में समाज का असत् तत्त्व । यह तत्त्व अपने अपकारी स्वभाव द्वारा समाज को संतप्त करता रहता है ।

मानव के असत् स्वभाव के अतिरिक्त कुरीतियाँ और विषमतायें भी भी समाज की दुर्दशा का कारण होती हैं । देश काल सापेक्षता के होते हुये भी इन कुरीतियों का पालन जिनके द्वारा होता है और जिनका समर्थन इन्हें प्राप्त होता है वह समाज का असत् अंग ही सिद्ध होता है । अतः कुरीतियों को असत् से पृथक नहीं किया जा सकता ।

असत् अनन्त रूप धारण कर समाज का अनिष्ट करता है । असत् अपने कुरूप अथवा विरूप मस्तिष्क में उत्पन्न अनेकों मिथ्या और भ्रान्तिपूर्ण विचारों के आधीन कार्य करता है । दुर्व्यसनी किसी लत में फँसकर अपने जीवन साथी ,संतान, संबंधी ,आश्रित और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का ध्यान छोड़कर उसे कष्ट पहुँचाता है । प्रभुता प्राप्त अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आर्थिक स्थिति का अनुचित लाभ उठाकर अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को हानि पहुँचाता है । कामासक्त और धनलोलुप अपनी तृष्णा एवं लिप्सा की शान्ति के लिए सतीत्व एवं सम्पत्ति का अपहरण करता है । क्रोध से ग्रस्त प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की भावनाओं में बह कर हत्या और प्रहार करने में तत्पर हो जाता है । अदूरदर्शी मोहवश अनुचित और अपकारी कृत्य कर बैठता है और ईर्ष्या, राग, द्वेष, लोभ, स्पर्धा आदि के वशीभूत हो मानव का द्रोही बन जाता है ।

उपन्यास में समाज को प्रस्तुत करने के लिए उसके सभी अंगों एवं कर्मों पर प्रकाश डालना अनिवार्य है । जीवन में जो असत् है उसके अभाव में साहित्य में समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित होना सम्भव नहीं । उपन्यास में समाज की वास्तविक स्थिति , दशा एवं रूप को दोष रहित चित्र असत् की उपेक्षा करके नहीं प्रस्तुत किया जा सकता । समाज का यथार्थ चित्र अंकित करने में उसमें से आकृतियाँ भी उभर

हैं आती हैं जो सुन्दर मनोहर और प्रिय न होते हुये भी चित्र की यथार्थता का अंश है । चित्र में असत् की छाया अनिवार्य ही नहीं स्वाभाविक भी है । असत् की उपस्थिति यदि चित्र को विकृति प्रदान करती है तो भी उसका निष्कासन नहीं हो सकता । असत् जन्य सामाजिक पीड़ा की गम्भीरता , तथा व्यापकता सदैव मानव चिंतन का विषय रही है । पीड़ा की मूक चीत्कार सर्वदा विचारणीय एवं प्रकाशनीय रही है । कुरूपता को कला में अवश्य स्थान मिलना चाहिये क्योंकि पूर्णता अपूर्णता से श्रेयस्कर है और यदि कला कुरूपता के प्रति अकिल वर्जना का भाव रखेगी तो उसकी पूर्णता अवश्यमेव विघटित होगी । दूसरी बात यह है कि सुन्दर और कुरूप एक दूसरे के मूल्यों एवं सीमाओं का निर्धारण करते हैं ।"[१]

समाज में असत् अशान्ति ,अव्यवस्था,भुखमरी रोग, व्यभिचार,आत्महत्या, मृत्यु और अभाव का कारण बनकर असत् ने उसे (समाज) अत्यन्त दयनीय और शोचनीय बना दिया है । असत् अनेकों आशाओं पर तुषारापात,हृदय को विदीर्ण, गोद को खाली,सुहाग को नष्ट,आश्रित को निराश्रित,पवित्र को अपवित्र और मानव को पशु बना देता है ।

इस प्रकार असत् का समाज से अनिवार्य संबंध है । यह समाज के लिए कल्याणकारी न होते हुये भी समाज का अत्यंत प्रभावशाली अंग और महत्वपूर्ण तत्व है । समाज के सत्प्रवृत्ति चरित्रों का महत्व,उनका सौन्दर्य और उनकी श्रेष्ठता उपन्यास में असत् चरित्रों के पार्श्व में प्रकट होती है । असत्-चरित्र , आदर्श,धर्म,नीति एवं मानव मर्यादा के प्रति सतर्क रहने वाले चरित्रों का परिचय कराता है । असत् उपन्यास में चित्रण का विशेष अधिकारी पात्र है ।

यह सत्य है कि जीवन संग्राम है । इसमें असत् से भी संघर्ष होता है । जिन समस्याओं ,कठिनाइयों एवं दुःखों का सामना करना पड़ता है अथवा समाज का जो साधारण दोष एवं अनिष्ट पक्ष है उन्हीं को प्रकाश में लाने के लिए उपन्यास के कथानक की सृष्टि साधारणतया की जाती है । ऐसे उपन्यासों का सर्वथा अभाव है जिसके कथानक में संघर्ष ने स्थान न पाया हो ; संघर्ष होता है व्यक्ति, परिस्थिति,

१- डा० कुमार विमल - सौन्दर्य शास्त्र के तत्व पृ० ६७-६८

एवं समाज से । विषम परिस्थितियाँ, बहुधा परिवार या समाज उत्पन्न करता है। असत् प्रतिकूल वातावरण, प्रतिरोध एवं बुराइयाँ उत्पन्न करता है । यही संघर्ष प्राय: कथा का विषय बन जाता है ।

कथा दुखान्त हो या सुखान्त किसी की समस्या अथवा वेदना ही उसके कथानक को जन्म देती हैं । समस्या और वेदना के अभाव में कथानक को प्राय: कोई आधार नहीं प्राप्त होता ।

उपन्यास में किसी के जीवन का कम, अधिक अथवा पूर्ण अंश चित्रित होता है । जीवन काल का व्यक्त अंश असत् के अभाव से कहीं रहित नहीं मिलता । ईर्ष्या, स्पर्धा, कुटिलता, धोखाधड़ी, अनैतिकता आदि के लिए कथानक में जहाँ अवसर उत्पन्न हुआ और स्वार्थी, अशिष्ट, कृतघ्न, भ्रष्ट आदि पात्र अवतीर्ण हुए वहीं असत् चित्रण स्वत: प्रस्तुत हो जाता है ।

सत् की महत्ता घोषित करने के लिए असत् का अस्तित्व अनिवार्य :

जहाँ तक मानव प्रकृति का संबंध है उसमें सत् और असत्, मानवी और पाशविक, उदात्त और अनुदात्त दो पक्ष हैं । सत् अथवा असत् कैसे अपना अभिधान ग्रहण करता है, किस आधार पर इसका नामकरण किया जाता है, एवं इनके भेद का ज्ञान कैसे प्राप्त होता है यह विचारणीय है । अनेकत्व ही भेद या अन्तर उत्पन्न करता है । वर्गीकरण का आधार सदैव अपेक्षा होता है । रूप और गुण में जो अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल लाभदायक और हितकर है उसे हम सत् की कोटि में रखते हैं । इसके विपरीत जो तुलना में कम अच्छा है उसे हम असत् की संज्ञा प्रदान करते हैं । सभी वस्तु या भाव एक जैसा नहीं होता, कुछ प्रिय और कुछ अप्रिय । प्रिय मन बुद्धि और चित्त को स्थायी शान्ति प्रदान करता है और कल्याणकारी है । किसी वस्तु या भाव को हम उच्च स्थान तभी प्रदान करते हैं जब उसकी अपेक्षा हमारे सम्मुख कुछ उससे निम्न कोटि का होता है । सत् या असत् कहना सर्वथा असम्भव हो जायेगा यदि कोई भेद प्रतीत न होगा ।

त्याज्य एवं निंदनीय होते हुये भी असत् का महत्व एवं शक्ति अपने स्थान पर सत् की अपेक्षा कम नहीं है । सत् और असत् दोनों में परिमाण भेद होता है । सत् की महत्ता जितनी घोषित करनी होती है उसकी तुलना में उसी परिमाण

के असत् की आवश्यकता भी पड़ती है । यदि अत्यंत उच्च कोटि के सत् का प्रदर्शन करना है तो उसी के सदृश उच्च कोटि के असत् को भी उपस्थित करना पड़ेगा । सत्, क्षमा, दया, उदारता, धैर्य, विनम्रता, सहिष्णुता आदि गुणों से शोभित होता है । किसी पात्र के इन गुणों को प्रकाश में लाने के लिए जिन अवसरों की आवश्यकता पड़ती है उसे वही पात्र प्रदान कर सकता है जो तुलना में उतना ही बुरा हो जितना कि प्रथम अच्छा है । उदाहरणार्थ राम के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए रावण का चरित्र चित्रण अनिवार्य सा हो जाता है । बिना रावण के चरित्र को प्रकाश में लाये राम के चरित्र की महानता प्रगट न हो सकेगी । किसी पात्र में सत् गुण किस मात्रा में विद्यमान है यह तभी ज्ञात होगा जब असत् पात्र अपने कर्मों द्वारा सत् पात्र को अपने गुणों को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करेगा । सत् में पात्र की कितनी निष्ठा एवं आस्था है इसका पता तभी लगेगा जब असत् पात्र द्वारा परीक्षा की घड़ी उपस्थित की जायेगी । असत् का सामना करने के लिए सत् को उसके वेग के अनुरूप प्रतिरोधक शक्ति की आवश्यकता होती है । सत् की पराकाष्ठा का परिचय असत् की पराकाष्ठा के परिचय के अभाव में नहीं दिया जा सकता ।

सत् का अस्तित्व असत् और असत् का अस्तित्व सत् के अस्तित्व पर निर्भर है । सत् की महत्ता शोभित करने के लिए असत् अनिवार्य है । अत: अपने अपने स्थान पर दोनों महत्वपूर्ण हैं । ईश्वर का ज्ञान माया कराती है । सत् का रूप असत् प्रस्तुत करता है ।

असत् पात्र की महत्ता इसलिए नहीं कि वह अनिवार्य रूप से हमें सत् की ओर अग्रसर करता है प्रत्युत असत् पात्र की महत्ता इसलिए भी है कि वह अपने विनाशकारी गुणों द्वारा रचनात्मक एवं कल्याणकारी गुणों से हमें अवगत कराता है । जिस प्रकार सत् हमें मानव सौन्दर्य, सौम्यता, शील आदि से परिचित कराता है उसी प्रकार असत् हमें असौन्दर्य कटुता दुष्टता आदि से परिचित कराता है । मानव स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत् असत् दोनों से ही परिचित होना आवश्यक है ।

उपन्यास में असत् पात्र की आवश्यकता बहुधा इसलिए पड़ती है कि वे अपने असत् चरित्र द्वारा सत् पात्र के गुणों की अभिव्यक्ति करें । कुछ उपन्यास में कथानक की भावना ही ऐसी होती है कि उसमें सत् पात्र के चरित्र को प्रकाश में लाने का दायित्व असत् पात्र पर ही रहता है । प्रेमचन्द के प्रत्येक उपन्यास में सत् असत्

पात्रों का चित्रण मिलता है अपने आदर्शवादी पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए ही उन्होंने खलपात्रों की रचना की ।'प्रतिज्ञा' में प्रेमचन्द अमृत राय के आदर्श चरित्र को उभारने के लिए "कमला प्रसाद ", रंगभूमि में सूरदास के विपरीत 'राजा महेन्द्रसिंह', कर्मभूमि में अमरकान्त के विपरीत 'धनीराम', प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर के विपरीत 'ज्ञानशंकर', गोदान में रायसाहब अमरपाल जैसे खलों को रखा है ।

प्रेमचन्द के अनुसार मानव में "निन्दा, क्रोध और घृणा यह सभी दुर्गुण है, लेकिन मानव जीवन में से अगर इन दुर्गुणों को निकाल दीजिए तो संसार नरक हो जायगा...... पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्प्रवृत्तियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रचंड घृणा हो, उतनी ही कल्याणकारी होगी । जीवन में जब घृणा का इतना महत्व है, तो साहित्य कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता है , जो जीवन का ही प्रतिबिम्ब है । मानव-हृदय आदि से ही "सु " और "कु " का रंगस्थल है और साहित्य की सृष्टि ही इसीलिए हुई कि संसार में जो "सु " या सुन्दर है, और इसीलिए कल्याणकर है, उसके प्रति मनुष्य में प्रेम उत्पन्न हो , और "कु " या असुन्दर और इसलिए असत्य वस्तुओं से घृणा । साहित्य और कला का यही मुख्य उद्देश्य है । "कु " और "सु " का संग्राम ही साहित्य का इतिहास है ।" [१]

" उपन्यास का नायक जहाँ अपने सृष्टा के जीवनादर्शों को अपने आचरण में अभिव्यक्त करते हुये उपन्यासकार के भावात्मक पक्ष को प्रकट करता है, वहाँ उपन्यास का खलनायक भी अपने समाज विरोधी आचरण द्वारा उपन्यासकार की नैतिकता संबंधी धारणाओं को अभिव्यक्त करता है । इस प्रकार नायक और खलनायक दोनों मिलकर उपन्यासकार के नैतिक चिंतन को अपने अपने ढंग से व्यक्त करते हुये उसके नैतिक आदर्शों और नैतिक मान्यताओं का पूरा पूरा परिचय दे देते हैं ।" [२] यहाँ हमें प्रीस्टले की परिभाषा का वह अंश भी सार्थक होता हुआ दिखाई देता है जहाँ उन्होंने उपन्यास को "उपन्यासकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कहा है ।"

१- " हंस " , सितम्बर १९३२

२- डा० सुखदेव शुक्ल - हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता पृ० २६३

सत् की विजय :

मानव संस्कृति का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्रत्येक युग में सत् असत् संघर्षशील रहे हैं। सत् असत् की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रही है। सत् पात्र जिस अमरत्व को प्राप्त हुये हैं उसे असत् नहीं प्राप्त कर सका है। नष्ट हो जाना पराजय है बना रहना विजय है। शरीर, धन, सम्पत्ति या वैभव का नाश पराजय नहीं, पराजय है यश, कीर्ति आदि का नाश।

असत् पात्र कभी विजयी होता नहीं दिखलाई पड़ता।[1] यह भारत की प्राचीन धारणा है। इसके प्रमुख कारणों में उसमें स्थिरता, आत्मबल एवं समर्थन का अभाव और भय का सर्वदा लगा रहना है।

सत् स्थिर है तथा असत् अस्थिर। सत् शाश्वत्, अविकारी एवं निश्चल है।[2] इन गुणों से युक्त होने के कारण सत् पात्र को एक दृढ़ता प्राप्त हो जाती है जो उसे विजयी बना देती है। कोई भी अस्थिर वस्तु या भाव स्थिर के सम्मुख नहीं टिक पाता। सत् का स्थिरता गुण उसे अपने स्थान पर इतना अविचल रखता है कि असत् के प्रहार से वह हिलता नहीं। स्थिरता का सबसे बड़ा गुण है उसकी शक्ति का केन्द्रित रहना। यह स्थिर शक्ति असत् की बिखरी शक्ति को समूल नष्ट करने में सहायक होती है। सत् पात्र ही अन्ततोगत्वा विजयी होते हैं अथवा असत् को भी अभिभूत कर सत् मार्ग पर प्रतिष्ठित करते हैं। विजय से अर्थ केवल भौतिक उपलब्धियों से नहीं आत्मिक उपलब्धियाँ भी उसमें सम्मिलित है।

सत् के विजयी होने का एक कारण यह भी है कि वह असत् की अपेक्षा अधिक बलवान है। सत् का यह बल केवल भौतिक नहीं, आत्मिक है। असत् पात्र के पास भौतिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक आदि बल भले ही हो परन्तु जहाँ तक

१- सत्यमेव जयति नानृतम्

२- सत्यं नामा व्ययं नित्यमविकारी तथैव च - महाभारत शांति पर्व १६२।१०

आत्मबल का प्रश्न है, उसमे संदेह ही होता है। सत्पात्र का बल आत्मबल है और वहाँ उसे विजय भी प्रदान करता है । आत्मबल के अभाव में अन्य बल सर्वदा अपूर्ण होते हैं । स्वाभाविक है पूर्ण के सम्मुख अपूर्ण कभी सफल नहीं हो सकता । असत्पात्रों के चरित्र में सर्वत्र आत्मबल का अभाव मिलता है । अनूपलाल मंडल अपने 'निर्वासिता' उपन्यास में भी सत् की विजय पर बल देते हुये कहते हैं कि -" पाप चाहे कितना भी छिपा कर क्यों न किया जाय, प्रकट हुए बिना नहीं रहता । मनुष्य इसको ढकने की चाहे कितनी चेष्टा क्यों न करें, एक न एक दिन उसका फूट निकलना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है । परमात्मा का जो काम होता है वह अवश्य सोच विचार कर होता है, उसके दरबार में किसी के पक्षपात का गुंजाइश नहीं । मनुष्य चाहे अपनी बुद्धि के अनुसार परमात्मा पर कुछ भी सोचे, पर उसके विधान में किसी प्रकार का अन्तर पड़ नहीं सकता । उसकी नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन हो ही नहीं सकता । प्रकृति का नियम ध्रुव सा अचल, हिमालय सा अटल और सागर सा गम्भीर है ।" [1]

विजय के लिए सहानुभूति अत्यंत आवश्यक है । सत् पात्र को आत्मा के अतिरिक्त धर्म, समाज एवं विधान का भी समर्थन प्राप्त रहता है । असत् पात्र केवल मलिन मन के तर्क से प्रेरित होता है । सत् को अन्तर एवं बाह्य दोनों ओर से प्रेरणा और उत्साह मिलता है । सत् का सभी आदर एवं प्रशंसा करते हैं । असत् को केवल उन्हीं का समर्थन प्राप्त होता है जिनके विचार एक सीमित भौतिक तल से ऊपर नहीं उठ पाते और जिनकी दृष्टि में इन्द्रिय जनित सुख ही जीवन का अंतिम लक्ष्य होता है । असत् पात्र निराधलंबी होने के कारण अवरोधों एवं प्रतिरोधों के सम्मुख नहीं टिक पाता । साधारण समर्थन के अवलम्ब से सत् पात्र प्रिय एवं अनुकरणीय बन जाता है ।

भय दुर्बलता प्रदान करता है । संशय नहीं असत् सदैव भय की स्थिति में रहता है । भय विह्वल होने के कारण असत् पात्र सदैव अंधकार, झूठ, छल, कपट, दुराव, धोखा, दगा, आडम्बर आदि का सहारा लेता है । असत् कर्म के सम्पादन में इन अवांछनीय उपायों की सहायता आवश्यक हो जाती है । विजय ऐसी अवलम्ब दुर्बलताओं द्वारा प्राप्त नहीं होती । असत् पर सत् की विजय प्राप्ति में निर्भयता का बहुत बड़ा हाथ है । सत् पात्र प्रथम तो वह स्वयं निर्भय रहता है और साथ ही साथ अभय प्रदान

१- अनूपलाल मंडल - निर्वासिता पृ० २०६ सत्ताइसवाँ परिच्छेद

भी करता है । विजय के लिए आवश्यकता साहस की है, भय की नहीं । सच्ची विजय पहले तो असत् कर्मों द्वारा प्राप्त ही नहीं होती और यदि असत् पात्र भी विजयी और सफल होते हैं तो उनकी दुस्साहसजन्य विजय भौतिक संसार तक ही सीमित रहती है । उनकी विजय को प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती । ऐसी विजय साहस नहीं वरन् दुस्साहस द्वारा प्राप्त होती है और दुस्साहस सर्वथा हिंसात्मक अतिक्रामक एवं बलात्कारपूर्ण होता है । ऐसी विजय स्थायी और कल्याणकारी नहीं होती । " आसुरी शक्तियाँ दैवी भाव के उदय का तथा विस्तार का सदा विरोध किया करती हैं परन्तु देर सबेर से विजय सदा दैवी भाव की ही होती है । " १

भारतीय लेखक यद्यपि यथार्थवाद के तत्वों को ग्रहण कर रहा है किन्तु फिर भी उसका झुकाव इसी ओर है । "सत्यमेव जयते " अब भी उसके दृष्टि का मार्ग प्रदर्शक है । आलोच्यकाल के उपन्यासों में हम प्रायः इस प्रवृत्ति की प्रधानता पाते हैं । देवकीनन्दन खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा मेहता, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, वृंदावन लाल वर्मा आदि सभी उपन्यासकार अन्त में सत् पात्र को ही विजयश्री प्रदान करते हैं । प्रेमचन्द ने मानव मन में विद्यमान दुर्बलताओं, क्रूरताओं, दुष्प्रवृत्तियों और पाप भावना का जीता जागता स्वरूप चित्रित किया है । आदर्श के पक्षपाती होते हुए भी यथार्थ से विमुख नहीं हुए हैं । मानव जीवन अच्छाइयों-बुराइयों का समन्वय है । जिस पात्र को प्रेमचन्द बुरा चित्रित करते हैं अन्त में उसमें भी पश्चाताप एवं सुधार की भावना उत्पन्न कर उसका उदात्तीकरण कर देते हैं ।

ञ — उपन्यास के तत्व और अभावों के निरूपण का स्वरूप तथा महत्व :

जिस प्रकार मानव शरीर की रचना पंच तत्वों के मिश्रण से होती है उसी प्रकार उपन्यास की रचना भी कई तत्वों के मेल से होती है । उपन्यास के निम्नलिखित तत्व माने गये हैं - १-कथावस्तु २-चरित्रचित्रण ३-कथोपकथन ४-भाषाशैली ५-वातावरण ६-विचार या उद्देश्य ।

१- साप्ताहिक संदेश पत्रिका आलेख १२ अगस्त १९६७

कथावस्तु -

उपन्यास कथा प्रधान गद्य रचना है अत: रोचक ढंग से विचारों का संप्रेषण करने के लिए कथावस्तु उपन्यास में मेरुदंड का काम करती है । एडविन म्योर के विचार में "श्रृंखलाबद्ध घटनायें और वह आधार जिसके सहारे वे आपस में गुथी हुई है कथानक है ।"[1] कथावस्तु रहित उपन्यास इसी प्रकार प्रतीत होता है जिस प्रकार बिना नींव का भवन । उपन्यास रूपी भवन कथानक रूपी नींव पर ही सफलता पूर्वक खड़ा किया जा सकता है जिसे बाद में अन्य तत्व सजीवता प्रदान करते हैं । ई०एम०फास्टर के अनुसार -"हम सभी इस बात पर सहमत होंगे कि उपन्यास का मूलभूत तत्व उसकी कथावस्तु है जिसके बिना उपन्यास का अस्तित्व सम्भव ही नहीं।"[2]

मानव जीवन अत्यन्त व्यापक है । मनुष्य हर क्षण नवीन अनुभव प्राप्त करता रहता है । संसार में असंख्य प्राणी हैं । प्रत्येक के अनुभव भिन्न भिन्न प्रकार के हैं । किसी भी कथा का निर्माण करते समय उपन्यासकार के लिए यह असम्भव सा हो जाता है कि वह उसमें मानव जीवन के समस्त अनुभवों का चित्रण करें । अत: प्रथम उपन्यासकार अपने या दूसरे के जीवन के किसी विशेष अनुभव को व्यक्त करने की योजना बनाता है और उसी के अनुरूप कथावस्तु का संगठन करता है । अत: हम कह सकते हैं कि जिस निर्दिष्ट योजना के अनुसार उपन्यासकार घटनाओं को (अन्य तत्वों से सजाता हुआ) क्रम प्रदान करता है वही कथावस्तु है ।

कथावस्तु के गुण :

उपन्यास की कथावस्तु रोचक और घटनाओं से सम्बद्ध होनी चाहिये । जिज्ञासा या कौतूहल कथावस्तु का प्राण है । कल्पना के चित्रण से कथावस्तु की जिज्ञासा और अधिक बढ़ जाती है । जब हम गोपाल राम गहमरी के "जासूस की डाली" उपन्यास में यह पढ़ते हैं कि जिज्ञासापूर्ण घटनाओं का क्रम ही बदल गया हो ऐसा ही

1. "Plot is the chain of events in a story and the principle which knits it together." Edwin-Muir .

2. "We shall all agree that the fundamental aspect of the novel is its story telling aspect .... without which it (novel) could not exist . " Aspects of the Novel 1962 P.33-34

मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि खूनी कौन है ? खूनी का पता लगाने के के लिए कथा में अन्य घटनाओं को चित्रित किया जाता है जिससे कथा आगे बढ़ती है।

कल्पना के साथ कथावस्तु में वास्तविकता लाने के लिए लेखक को ऐसी घटनाओं और वस्तुस्थिति की रचना करनी चाहिये जो सत्य प्रतीत हो । "कथावस्तु को अपने पैरों पर खड़ा रखने के लिए जो चाहिए वह है जीवन की विचित्र और अनियमित लय, स्वर और ऐन्द्रजालिक मायावी रूप की पकड़ ।"[1] श्रद्धाराम फुल्लौरी के भाग्यवती उपन्यास पढ़ने पर खलपात्री देवकी को ननन्द के रूप में कलह करते देख हमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं प्रतीत होती । क्योंकि स्वार्थवश या किसी के बहकाने में आकर कलह करने वाली देवकी का रूप स्वाभाविक है हर परिवार में ऐसी घटनायें घटित होती हैं ।

समसामयिक समस्याओं को उठाकर उनमें छुपने वाले पक्षों का उद्घाटन करके लेखक प्रायः हर मौलिक प्रसंगों की कल्पना कर लेता है । यों तो जीवन सदा और सर्वदा एक ही है और कोई लेखक कथावस्तु को सर्वथा मौलिक बनाने के लिए उनमें चित्रित पात्रों के रूप को भी मौलिक ढंग से चित्रित करता है । श्री श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु में जहाँ हमें एक ओर प्रकृतितः खलपात्रों का रूप दिखाई पड़ता है वहीं दूसरी ओर रईस बिगड़े हुये खुशामदी, धनी वर्ग की कमजोरियों का पता चलता है जिससे कथावस्तु में नवीनता आ जाती है । तिलस्मी उपन्यासों में इसके विपरीत दूसरे ही प्रकार की कथावस्तु मिलती है । तिलिस्मी उपन्यासों में नायक के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले प्रतिनायक के प्रसंगों को लेकर कथावस्तु की रचना की गई है । किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासों की कथावस्तु भी राजा-रानी या प्रेमी-प्रेमिकाओं के वासनात्मक प्रेम से सम्बद्ध है । गोपाल राम गहमरी के जासूसी

---

1. "Catching the very note and trick, the strange irregular rhythm of life, that is the attempt whose strenuous effort keeps Fiction on her feet." Henry James.

उपन्यासों की कथावस्तु में खूनी, हत्यारे को दृष्टि में रखकर लेखक एक ऐसी कथावस्तु का निर्माण करता है जो राजा-रानी या तिलिस्म से सम्बन्धित न होकर खल के उस रूप को सामने रखता है जिसे हम सफेद पोश खल कह सकते हैं । प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार जमींदार और महाजन से सम्बद्ध प्रसंगों को उठाकर मौलिक कथावस्तु की रचना करते हैं जिससे डा०, वकील, जमींदार, मिलमालिक, पुलिस, महाजन आदि के चरित्र का दोहरा व्यक्तित्व यथार्थ रूप में सम्मुख आ जाता है । समाज को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले खलपात्रों का रूप सर्वथा एक नवीन दृष्टि प्रस्तुत करता है । सभ्यता की आड़ में अपनी कामवासना को तृप्त करने वाले खलपात्रों `कमला प्रसाद`, `श्यामाचरण`, `बटुक प्रसाद` की कथा का आधार बनाकर समाज को नैतिक दृष्टि से पतित करने वाले खलों का रूप प्रस्तुत किया है । इस ढंग से प्राय: प्रत्येक उपन्यासकार खलपात्रों से सम्बद्ध कथा को भी नित-नित नित नूतन रंग देने में तत्पर रहे हैं । संघर्ष कथावस्तु की आत्मा है । संघर्ष कथावस्तु को गति प्रदान करता है और एक लक्ष्य की ओर भी अग्रसर करता है । कथावस्तु में संघर्ष के समावेश से मानव जीवन की वास्तविक कठिनाइयों का चित्र उपस्थित होता है एवं पात्रों के चरित्र को उभारता है । संघर्ष रहित कथावस्तु अपूर्ण रहती है । नायक के साथ ही प्रतिनायक की उद्भावना होने से जो विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं उनसे कथावस्तु में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । संघर्ष चित्रण से ही पात्रों के गुण अवगुण चित्रित होते हैं । उनके व्यक्तित्व की विशालता एवं संकीर्णता का परिचय भी संघर्ष द्वारा प्राप्त होता है । देवकी नन्दन खत्री के `चन्द्रकान्ता` उपन्यास में नायक वीरेन्द्र सिंह और प्रतिनायक क्रूरसिंह में चन्द्रकान्ता को प्राप्त करने में संघर्ष होता है जिससे कथा विकसित होती है अपने अपने उद्देश्य की प्राप्ति में दोनों प्रयत्नशील रहते हैं । खलपात्र को भले ही अपने उद्देश्य में सफलता न मिले पर षड्यंत्र निर्माण, अवरोधक तत्व उत्पन्न करने या साहस प्रदर्शन में वह किसी प्रकार कम नहीं होता । मानसिक संघर्ष को अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दी जाती है । प्रेमचन्द ने निर्मला उपन्यास में `मुंशी तोताराम` के मन में होने वाले घात-प्रतिघात का चित्रण कर कथावस्तु को एक नवीन रूप प्रदान किया । निर्मला से समुचित प्यार न मिलने पर उसे मानसिक आघात होता है फलस्वरूप निर्मला और मंसाराम को लेकर लेखक उसके मन में सन्देह उत्पन्न कर उसके मन में होने वाले घात-प्रतिघातों और उसके दुष्परिणामों को चित्रित

कर उसत्य के नये रूप को प्रस्तुत करता है ।

कथावस्तु के भेद :

कथावस्तु कई प्रकार की होती है जैसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, प्रेमाख्यानक आदि । मानव रूप तत्पश्च विराट है उसके जीवन के विविध पक्ष हैं उसकी समस्यायें और कार्य अनन्त हैं इसलिए उपन्यास की कथावस्तु का क्षेत्र स्वत: ही व्यापक और असीम हो जाता है । विविध प्रकार की कथावस्तुओं का पाया जाना ही इसका प्रमाण है । भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने कथावस्तु का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया है ।

१- वर्ण्य विषय की दृष्टि से

२- गुम्फन की दृष्टि से

३- संगठन की दृष्टि से

वर्ण्य विषय की दृष्टि से कथावस्तु के तीन भेद किये गये हैं -

१- प्रख्यात :

इतिहास पुराण और प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार पर निर्मित कथावस्तु को प्रख्यात् की संज्ञा दी जाती है । ऐसे उपन्यासों की रचना हिन्दी में यद्यपि अधिक नहीं हुई है फिर भी वृंदावन लाल वर्मा के "विराटा की पद्मिनी" या 'गढ़कुंडार' आदि उपलब्ध है जिनकी कथावस्तु प्राचीन इतिहास और अनुश्रुति पर निर्मित है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लेखक ने गढ़कुंडार में "नागदेव" जैसे दल को स्थान देकर कथा को प्रभावशील बनाया है । सम्पूर्ण कथावस्तु "नागदेव" के चरित्र के साथ ही साथ विकसित होती जाती है ।

२- उत्पाद्य :

उत्पाद्य कथावस्तु कल्पना के आधार पर गढ़ी जाती है ।[1] कल्पना की स्वाधीनता लेखक को कथावस्तु के मनमानी विस्तार के लिए छूट दे देती है । प्रेमचन्द के

---

१ - श्याम जोशी - उपन्यास सिद्धान्त पृ० १४

`ग़बन `,`प्रेमाश्रम `,`गोदान ` आदि सामाजिक उपन्यासों की कथावस्तु उत्पाद्य हैं। वस्तुत: इस प्रकार के ही उपन्यासों की संख्या सबसे अधिक है। इसका कारण यह भी है कि इस प्रकार के उपन्यासों में लेखक को समसामयिक यथार्थ उद्घाटित करने का सबसे अधिक अवसर मिलता है। जमींदारी, महाजनी प्रथा के दुर्गुणों को विवृत करते हुये प्रेमचन्द ने अपने कई उपन्यासों की रचना की है। इसी प्रकार दहेज,वेश्यावृत्ति,वैमत्य कुसंग और दारूद्ध आदि को भी केन्द्र बनाकर कितने ही उपन्यास लिखे गये जिससे समाज के कुरूप अंशों का सहज ही उद्घाटन हो पाता है।`गोदान` में जहाँ एक और लेखक मातादान जैसे ढोंगी,दारा जैसे हरजाई दल की कल्पना करता है वहीं दूसरी ओर राय साहब अमर पाल सिंह जैसे सफेद पोश और झींगुर सिंह महाजन जैसे पात्रों के चारों और लिपटे हुये घटना चक्रों की योजना करता है। यथार्थ के प्रस्तुतिकरण में लेखक नई नई घटनाओं को, नये नये प्रकार के खलपात्रों को कथा में स्थान देता है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति में अब किन किन शस्त्रों का प्रयोग करता है यह दिखा कर लेखक कथा के साथ साथ व्यक्ति चरित्र को भी उभारता है व इससे न केवल स्वाद बदलता है वरन् समाज का यथार्थ रूप सामने आता है।

मिश्र

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कल्पित घटनाओं और पात्रों की सृष्टि कर लेखक मिश्र कथावस्तु का निर्माण करता है।`मुसाहिब जू ` रानी दुर्गावती आदि इसी कोटि के उपन्यास है।

गुंफन की दृष्टि से कथावस्तु के भेद :

१- सरल -

इसमें एक ही कथा होती है जो समस्त घटनाओं को केन्द्रबिन्दु बनती है और समस्त घटनायें उसी से प्रस्फुटित होती है। प्रासंगिक या सहायक कथाओं के लिए प्राय: इसमें स्थान होता ही नहीं। अन्य कथाओं से बाधित न होने के कारण मूल कथा को विकसित होने का पूर्ण अवसर प्राप्त रहता है। इसे एकांगी कथावस्तु भी कहा जा सकता है। सियारामशरण गुप्त के `नारी `,और चतुरसेन शास्त्री के

"हृदय की प्यास" उपन्यास की कथावस्तु इसी प्रकार की है । हृदय की प्यास की कथावस्तु में लेखक ने बहुत ही सीधे और सरल ढंग से हलनायक प्रवीण की (inferiority) हीनता की भावना का मनोवैज्ञानिक अध्ययन में प्रस्तुत किया है उसकी यही भावना कथावस्तु का निर्माण करती है ।

२- संकुल (Compound)

इसमें दो या दो से अधिक कथायें समानान्तर रूप से चित्रित रहती हैं । दोनों कथायें प्रमुख ही प्रतीत होती हैं । कथाओं का अंत एक ही लक्ष्य की प्राप्ति में होता है। राधिकारमण सिंह का "रामरहीम " उपन्यास इसी प्रकार का है । इसमें बेला और बिजली की कथा साथ साथ चलती है परन्तु उनका अन्त एक ही लक्ष्य की प्राप्ति में होता है । बेला वेश्या होकर भी भगवान की भक्ति को ही अपनी जीवन का एक मात्र ध्येय बनाती है जब कि बिजली पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित विलासी वेश्या का रूप प्रस्तुत करती है । इन दोनों की जीवन कथा , उनकी समस्यायें तथा व्यक्ति वैचित्र्य कथा का ताना बाना बुनते हैं ।

३- शृंखलात्मक :

यह कथा का वह वर्गीकरण है जिसमें अनेक स्वतंत्र कथाओं के लिए स्थान है । उनकी कथायें भले ही भिन्न भिन्न क्यों न हों लेकिन लेखक उन प्रासंगिक कथाओं एवं घटनाओं को आपस में इस प्रकार एक दूसरे से संबद्ध कर देता है कि वे सब मिलकर एक पूर्ण कथावस्तु का रूप धारण कर लेती है । जयशंकर प्रसाद ने "कंकाल " में समाज की गंभीर स्थिति को दिखाने के लिए जहाँ धर्म की आड़ में अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले धार्मिक बलभाम देवनिरंजन की अवतारणा की , वहीं ताने वाले,मंगल के सम्पर्क में आने वाली यादी ,विजय यादव तथा वायम यादव और व्यभिचारी मिरचा यादव की प्रासंगिक कथाओं को इस कौशल से संजोया है कि सम्पूर्ण कथा एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता । कंकाल की कथावस्तु इस मूलभूत प्रश्न को लेकर चलती है कि समाज में नैतिक सिद्धान्तों और व्यवहारिक

आचरण में वैषम्य पाया जाता है ।
संगठन की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद किये गये हैं ।

१- निरवयव (Novel of Loose Plot)

निरवयव कथावस्तु में घटनाओं का एक ऐसा जाल बिखरा होता है जो अपने भिन्न भिन्न रंगों के ताने बाने से बुने होते है । घटनाओं में नायक के चरित्र को प्रधानता प्रदान कर कथानक का ढाँचा खड़ा किया जाता है गौण घटनाओं का भी वर्णन रहता है । इसमें कोई विशिष्ट योजना नहीं रहती लेखक कुछ भी कहने के स्वतंत्र रहता है । यदि इसमें से कुछ घटनायें हटा दी जायें तो कथा में कोई व्यतिक्रम नहीं उत्पन्न होता । तिलिस्मी उपन्यासों की कथावस्तु निरवयव होती है । इसमें नायक के चरित्र को उभारने के लिए लेखक खलपात्रों की अवधारणा करता है । अपराधी अपने अपराध को गोपनीय रखने के लिए ,जासूस उन गुप्त रहस्यों का भेद जानने के लिए ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं कि पढ़ने में आनन्द आ जाता है बिना पूरा पढ़े छोड़ने को मन नहीं करता ।"[१]

२- सावयव (Novel of Organic Plot

सावयव कथावस्तु में समस्त घटनायें एक दूसरे से संबंधित रहती हैं उन्हें विच्छिन्न नहीं किया जा सकता । समस्त घटनायें एक ही कथा के अनिवार्य उपकरण होती हैं । एक भी घटना को निकाल देने से कथावस्तु विशृंखल सी प्रतीत होने लगती है । गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की कथावस्तु सावयव होती है । जासूसी उपन्यासों की प्रत्येक घटना का महत्व होता है उनमें से किसी भी घटना को हटाया नहीं जा सकता क्योंकि आगे की गति के संकेत सूत्र उसमें निहित रहते हैं । हत्या के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए जासूस प्रारारों की कसौटी पर लेकर छोटी से छोटी घटनाओं में से हत्या के रहस्य का संकेत पा लेता है । यदि उनमें से कोई घटना या वस्तुस्थिति हटा दी जाय तो कथा विशृंखल सी हो जाती है । उदाहरण के लिए गोपालरामगहमरी के जासूसी उपन्यास हंसराज की डायरी का खलपात्र डा० कुलदीप

१- साहित्य संदेश - जुलाई अगस्त १९५६ पृ० १७

बड़ी सावधानी से डाक्टरी पेशे की आड़ में अफीम का तस्कर व्यापार करता है। अपने रहस्य को गुप्त रखने के लिए दिन प्रतिदिन हत्या भी करता है पर जासूस बड़ी कुशलता से शनैः शनैः उसके रहस्यमय कृत्यों को उघाड़ कर उसे जेल भिजवाने में समर्थ होता है।

कथावस्तु को प्रस्तुत करने में कभी लेखक वर्णनात्मक शैली का सहारा लेता है तो कभी आत्मकथात्मक, पत्रात्मक और डायरी शैली भी कथा प्रस्तुत करने में सहयोग प्रदान करती है। वर्णनात्मक शैली में लेखक खलपात्रों के चरित्र पर टीका टिप्पणी करता हुआ कथा को आगे बढ़ाता है। खलपात्रों को स्वयं अपने चरित्र के बारे में अधिक नहीं कहना पड़ता। गोपाल राम गहमरी, किशोरी लाल गोस्वामी श्रीनिवास दास आदि प्रारम्भ के उपन्यासकारों क ने वर्णनात्मक शैली के माध्यम से खलपात्रों की रूप रेखा उनकी कुरूपता, बोलने के ढंग, क्रियाकलाप, ईर्ष्या, घृणा, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, हत्या आदि की भावना को व्यक्त करते चलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि खलपात्रों के चरित्र के प्रति लेखक के मन में एक निश्चित धारणा होती है वह जिस श्रेणी के खल को उपन्यास में रखना चाहते हैं उसी स्तर की कुरूपता, वीभत्सता, ग्लानि, विश्वासघात आदि का वर्णन कर पाठक के मन में कम या ज्यादा घृणा का भाव भर देते हैं।

पात्र और चरित्र चित्रण :

पात्र ही वह ~~र्~~ एक मात्र बिन्दु है जिसमें उपन्यास के सभी अंग कथावस्तु चरित्र, कथोपकथन, भाषा, शैली और उद्देश्य संबद्ध होते हैं या बंधे रहते हैं। एडविन म्योर ने उपन्यासों का वर्गीकरण करते हुए तीन भेद बताये हैं जिसमें उन्होंने नाटकीय उपन्यास (घटनाप्रधान) उपन्यास की अपेक्षा चरित्र चित्रण के उपन्यास को अधिक महत्वदिया है। बिना पात्र की रचना के हम उपन्यास का ढाँचा ही नहीं खड़ा कर सकेंगे उसका विस्तार या उद्देश्य प्रगट करना तो दूर की बात है इसलिए उपन्यास रचना में जो सबसे आवश्यक वस्तु है वह है पात्र। "उपन्यास उनकी शैली और उनके कथावस्तु के वैशिष्ट्य के लिए नहीं याद किये जाते वरन् उनके पात्रों के वैशिष्ट्य के लिए सदा स्मृत रहते हैं - पात्र जिनमें सार्वभौमिक समता होती है वही उपन्यास का

जीवन होते हैं ।"[1] पात्र चाहे सत् हो या असत् उपन्यास में कथावस्तु के समानान्तर पात्र का महत्व है क्योंकि उपन्यास पात्र की कथा है । कथा अपने में स्वतंत्र नहीं । पात्रों में सत् पात्र के साथ खलपात्रों का भी महत्व है ।

चरित्र से तात्पर्य है उपन्यास में आये पात्रों का व्यक्तित्व ; उनके गुण तथा अवगुण जिनका निर्धारण उनकी क्रियाओं, व्यापारों और उनकी चिन्तन शैली के आधार पर होता है । चरित्र जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । चरित्र ही व्यक्तित्व का निर्माता है । चरित्र द्वारा ही मनुष्य स्तुति या निंदा का पात्र बनता है । चरित्र ही व्यक्तित्व को सौन्दर्य या कुरूपता प्रदान करता है । प्रत्येक मनुष्य का चरित्र अनुपम होता है । नितान्त समान चरित्र के दो व्यक्तियों का अस्तित्व संभव नहीं । प्रत्येक मनुष्य का चरित्र स्वयं उसका होता है । मानव चरित्र का पूर्ण अध्ययन आत्मज्ञान जैसा कठिन है । मानव चरित्र के विषय में हमारा ज्ञान वहीं तक सीमित है जहाँ तक हमें उसे देखने, सुनने एवं पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है ।
उपन्यासकार अपने पात्र की सृष्टि के साथ साथ उसका चरित्र भी निर्धारित कर देता है उसी चरित्र को लेकर पात्र कथा में अवतीर्ण होता है । उपन्यास जीवन का चित्र है उस चित्र में चरित्र का विशेष महत्व एवं स्थान होता है । उसका चित्रण अत्यन्त स्पष्ट एवं कथावस्तु के अनुकूल होने से ही उपन्यास सफल बनता है । जिस विचार से पात्र पाठक के सम्मुख उपस्थित किया जाता है उसी के अनुरूप उसका चरित्र चित्रण होता है । लेखक जिन विचारों का प्रतीक अपने पात्रों को बनाता है उपन्यास में आदि से अन्त तक वह उनके प्रति सजग रहता है ।

एक विशेष चरित्र के पात्र की कल्पना एक भिन्न बात है और उस पात्र के चरित्र का समुचित चित्रण एक भिन्न बात । उसके चरित्र पर पूर्ण प्रकाश डालने वाला कुशल चित्रण उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए अनिवार्य है ।

चरित्र चित्रण एक कला है । यह भी अनुभव अनुभूति और कला से निखरता है जिस उपन्यास में यह कला जितनी ही निखरी होती है वह उतना ही सफल होता है । यह बात भिन्न है कि सभी प्रकार के उपन्यासों में चरित्र चित्रण के अवसर या स्थान समान नहीं होते ।

१- द रिक्वीजीट्स ऑव फिक्शन - केन्डी बेल पृ० ३८

चरित्र चित्रण के गुण :

पात्रों के चरित्र चित्रण में उनकी सबलता के साथ साथ मानव सुलभ दुर्बलताओं का भी आवश्यक चित्रण इसलिए महत्वपूर्ण है कि ये कृत्रिमता और स्वाभाविकता के प्रमाण हैं । चरित्र चित्रण द्वारा उन्हें सजीव बनाने के लिए आवश्यक है कि कल्पना ऐसे पात्रों की की जायें जिसके व्यक्तित्व और अस्तित्व को पाठक स्वीकार करें । चरित्र चित्रण इतना कुशल हो कि पात्र चरित्र बनकर आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाये । तात्पर्य यह कि सत्पात्र के आन्तरिक पक्ष के साथ साथ उसका बाह्य पक्ष इस कुशलता से चित्रित हो कि वह सजीव हो उठे । इस गुण को लाने के लिए लेखक को जिन बातों पर ध्यान रखना होता है वह है अनुकूलता, स्वाभाविकता, मानव अन्तर्द्वन्द्व और पात्रों तथा उनके चरित्र की मौलिकता आदि ।

१- अनुकूलता

लेखक जब किसी भी पात्र का चरित्र चित्रण करने चलता है चाहे वह सत् पात्र हो या असत् पात्र हो, सबसे प्रथम बात यह ध्यान रखने की होती है कि चरित्र कथानक के अनुकूल हो । पात्र के अस्तित्व को दृष्टि में रखकर ही उसके चरित्र का चित्रण होता है । "मानव जीवन के अनुरूप उपन्यास में भी घटना और चरित्र के सूत्र आपस में इतने उलझे रहते हैं कि उन्हें अलग - अलग करके देखने का प्रयत्न ऐसा ही है जैसे किसी मुख का सौन्दर्य न देख कर नाक की बनावट पर प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करना और होठों के मोटेपन पर क्रुद्ध कर उनकी निन्दा करना ।"[1] पात्रों की योजना और उनके आवश्यक चरित्र चित्रण पर पूर्णतया ध्यान रखने से लेखक के उद्देश्य की पूर्ति भी होती है और चरित्र चित्रण की दृष्टि से उसकी रचना रोचक रहती भी । बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान" में लेखक सत्पात्र रघु के चरित्र को उल्लिखित करता हुआ कहता है कि वह "- जाति का ब्राह्मण था , पर

१- डा० रणवीर रांग्रा : हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास पृ०१६

कदर्यता में अत्यन्त पामर महाकृपण से भी गया - बीता था । केवल नामधारी ब्राह्मण था । परन्तु अल्पशिक्षित था चालाक इतना अधिक था कि अमीरों का रुख पहचान कर उन्हें खुश करने की कला में प्रवीण था ।"[1] उपरोक्त वर्णन से उसके चरित्र में हमें कृत्रिमता नहीं प्रतीत होती क्योंकि लेखक आद्योपान्त कथा में उसे खल के रूप में चित्रित करता है ।उसके प्रति उसका दृष्टिकोण पूर्व निर्धारित है इसलिए चरित्र चित्रण की दृष्टि से उसका चरित्र उसके कार्यों के अनुकूल हैं ।

स्वाभाविकता

स्वाभाविकता से तात्पर्य है चरित्र चित्रण का वास्तविकता एवं यथार्थ पर आधारित होना । कोई भी चरित्र चित्रण अस्वाभाविक या वास्तविकता से परे अपने असाधारण,विलक्षण या विचित्र रूप से नहीं वरन् वह अस्वाभाविक प्रतीत होता है जब पात्र के चित्रित गुण,शक्ति,ऐश्वर्य आदि की सम्भावनाओं को स्थापित करने के लिए उसके वैसे व्यक्तित्व से परिचित नहीं कराया जाता,जिसमें उसके इन अलौकिक गुणों का समावेश और ढंग का अवसर प्राप्त हो जाए । चरित्र चित्रण में मानव बल-दौर्बल्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती । चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि पात्र के व्यक्तित्व और कार्य में सामंजस्य बना रहे । प्रेमचन्द के "प्रेमाश्रम " उपन्यास में जब लेखक [illegible] गिरधर का परिचय देते हुये कहता है - "जबान से उनके दोस्त,दिल सेउनके दुश्मन थे ।"[2] तो उसका चरित्र स्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि वह चापलूस है जमींदार के सामने जमींदार की सी और असामियों के सामने असामियों की सी बातें करता है ।

अन्तर्द्वन्द्व

अन्तर्द्वन्द्व चरित्र चित्रण का प्रमुख तत्व है । राग,द्वेष,घृणा,क्रोध आदि पुंज मस्तिष्क को सदैव उद्वेलित करते रहते हैं । मन और बुद्धि के बीच होने वाले द्वन्द्व

१- बालकृष्ण भट्ट - सौ अजान एक सुजान पृ० ५७

२- प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम पृ० ७

संघर्ष से मनुष्य का चरित्र बनता बिगड़ता रहता है, उठता गिरता रहता है, उत्कर्ष और अपकर्ष को प्राप्त होता रहता है। चरित्र अन्तर्द्वन्द्व से प्रभावित होते हैं और अन्तर्द्वन्द्व उसमें परिवर्तन लाते रहते हैं। परिस्थिति के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकाश में लाया जाता है, क्योंकि अन्तर्द्वन्द्व स्वाभाविक हैं। अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण मानव मन के पर्याप्त ज्ञान पर सम्भव होता है। कथानक की दृष्टि से पात्र व्यक्तित्व के जीवन में कुछ ऐसे क्षण आ जाते हैं जब वह अन्तर्द्वन्द्व से विचलित हो उठता है। ऐसे अवसर पर यदि पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित नहीं किया जाता तो उसका चरित्र स्पष्ट नहीं हो पाता। ब्रजनन्दन सहाय के "लालचीन" उपन्यास के कलपात्र लालचीन में सु और कु विचारों में द्वंद्व होता है। गयास को धोखा करने के पहले उसकी अन्तरात्मा में द्वंद्व होता है उसके मन में विचार उठता है - अब मुझसे यह काम नहीं होगा। इस पथ पर मैं अब अग्रसर नहीं होऊँगा। इस दरबार से मुझे असीम सम्मान मिला है, इस वंश से मुझे असीम संपत्ति मिली है। मैं कृतघ्न होना नहीं चाहता। सारा राज्य गयास का गुणगान कर रहा है। ऐसे सम्मान-भूषण नरपति का अनिष्ट करना मैं नहीं चाहता। युक्ति कुछ नहीं दीखता कि मैं विश्वासघात करूँ।"[१] इस अन्तर्द्वन्द्व के द्वारा लेखक ने लालचीन के चरित्र को मानवीय तत्त्व प्रदान किया है।

मौलिकता

नवीनता ही मौलिकता है। सब मनुष्य समान होते हुये भी एक दूसरे से कुछ भिन्न होते अवश्य हैं। मौलिकता पात्र के चरित्र की नवीनता एवं चरित्र चित्रण के अधिक कलात्मक होने से आती है। चित्रण किसी अन्य पात्र की अनुकृति न होने पाये इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पात्र लेखक का अपना निजी, नवीन एवं अनुपम निर्माण हो। सफल चरित्र चित्रण के लिए आवश्यक है कि लेखक मानव

१- ब्रजनन्दन सहाय - लालचीन पृ० ७९

मनोविज्ञान का पंडित हो तभी वह उपरोक्त सभी गुणों को ध्यान में रखकर पात्र का चरित्र चित्रण कर सकेगा । मानव मन की सूक्ष्म भावनाओं के विश्लेषण से पात्र की आन्तरिक स्थिति का जब यथार्थ चित्रण हो जाता है तभी उसका चित्रण पूर्ण वास्तविकता के साथ निखरता है । प्रारम्भिक उपन्यासों में चरित्र चित्रण की बहुमुखी प्रतिभा का अभाव था । एक पात्र की क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का सफल चित्रण तभी सम्भव है जब वे मनोवैज्ञानिक ढंग से निर्धारित हों ।

चरित्र चित्रण में मौलिकता लाने के लिए आवश्यक है कि लेखक अपने पात्रों को अपने विचार, अनुभूति और अनुभव के बल पर चित्रित करें । पं० चन्द्रशेखर पाठक के उपन्यास 'अमरबली ठग' में अमरबली के चरित्र में कृत्रिमता कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती है जब लेखक उसके चरित्र को उद्घृत करते हुये कहता है कुसंग के कारण -" नर हत्या पाप है, यह भाव चित्त से दूर होने लगा ।"[1] अमरबली ठग के चरित्र को लेखक ने बड़े सफल कलात्मक रूप से चित्रित किया है ।

चरित्र चित्रण की प्रणाली :

उपन्यासकार अपने पात्रों के प्रति बड़ा संवेदनशील और जागरूक होता है अतः हम देखते हैं कि उपन्यासकार अपने पात्रों का चरित्र चित्रण करने के लिए कभी वर्णनात्मक शैली, तो कभी विश्लेषणात्मक और कभी अभिनयात्मक शैली का सहारा लेता है अर्थात् वह कभी तो स्वयं ही आलोचनात्मक ढंग से स्वपात्रों के चरित्र का वर्णन करता है । कभी लेखक उपन्यास के अन्य पात्रों के द्वारा ही उनके चरित्र पर प्रकाश डालता है और कभी कभी कथोपकथन के द्वारा उनके क्रिया कलाप और विचार को सामने रखता है । चरित्र चित्रण की वर्णनात्मक प्रणाली ही प्रारम्भिक युग के उपन्यासकारों ने अधिक अपनायी क्योंकि लेखक अपना निर्णय देने के लिए काफी स्वाधीनता रखता था । वर्णनात्मक प्रणाली द्वारा पात्रों के चरित्र का चित्रण करना अधिक आसान होता है । श्री निवासदास, लज्जाराम शर्मा, गोपालराम गहमरी, देवकीनन्दन खत्री आदि ने इसी प्रणाली का ही सहारा लिया है । वर्णनात्मक प्रणाली के

१- पं० चन्द्रशेखर पाठक - अमरबलीठग पृ० ५५.

कथोपकथन :

बाल्यकाल से लेकर जीर्ण अवस्था तक मानव जीवन का बहुत बड़ा अंश उसकी बातचीत करने में व्यतीत होता है । अत: उपन्यास के पात्रों का भी बातचीत करना स्वाभाविक है । आवश्यक कथोपकथन के अभाव में उपन्यास एक रस हो जाता है और पात्र निर्जीव से प्रतीत होने लगते हैं ।

कथोपकथन के साधारण कार्य जैसे कथानक को गति प्रदान करना, चरित्र पर प्रकाश डालना और घटनाओं का उल्लेख करना के अतिरिक्त इसका सबसे महत्व पूर्ण कार्य उपन्यास के पात्र के अभिप्राय, तात्पर्य और भावना की स्पष्टता से व्यक्त करना है । पात्र सदैव किसी न किसी स्थिति और वातावरण से प्रभावित रहता है उसकी स्थिति और वातावरण प्रगट रहने से पाठक पात्रों के बातचीत से उसके अधिक समीप हो जाता है । वर्णन उतना अंतर्मुख नहीं होता जितना कथोपकथन । पात्रों के व्यक्तित्व और उनकी भावनाओं में विश्वास कथोपकथन ही उत्पन्न करता है । पात्रों का एक दूसरे से क्या और कैसा संबंध है, एक दूसरे के कितने निकट या दूर हैं तथा उनके विचारों में कितनी समानता या असमानता है इस पर उचित प्रकाश केवल कथोपकथन द्वारा ही सम्भव है । घटनाओं की भूत, वर्तमान और भविष्य सभी स्थितियों का ज्ञान या संकेत कथोपकथन द्वारा सरलता से मिल जाता है । कथोपकथन द्वारा कथानक की भावना जितनी सरलता से व्यक्त होती है उतनी अन्य माध्यम से नहीं ।

कथोपकथन, कथावस्तु और पात्र रचना दोनों के लिए अनिवार्य हैं । वर्णन की अपेक्षा कथोपकथन स्वभावत: अधिक गतिवान होते हैं अत: उसके वेग से कथा को शीघ्रता से आगे बढ़ा देता है । स्थान और काल पर प्रकाश डालने के लिए वर्णन अवश्य उपयोगी हैं और इस विषय में कथा को आगे अवश्य बढ़ाता है वहाँ परन्तु जहाँ घटनाओं और पात्रों का प्रश्न आ जाता है वहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि कथोपकथन कथानक को आगे बढ़ाने में अधिक सफल होता है।

चरित्र प्रकाश में दो ढंग से आता है एक वर्णन दूसरे कथोपकथन द्वारा । चरित्र चित्रण की प्रणालियों में अभिनयात्मक प्रणाली को श्रेष्ठ माना गया है । कथोपकथन द्वारा अपने या अन्य के चरित्र पर प्रकाश डालना ही अभिनयात्मक प्रणाली

है । अतः यह सिद्ध हो जाता है कि चरित्र प्रकाश के लिए कथोपकथन कितना उपयोगी है । कथोपकथन में राग-द्वेष,भय-क्रोध आदि संवेदनाओं और संवेगों की भलक अधिक स्पष्ट रहती है । अतः चरित्र का आन्तरिक पक्ष भी सम्मुख आ जाता है जिससे उनके विघटित व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलती है । ऋषभचरण जैन के "मंदिरदीप " उपन्यास का खलपात्र "सागर दास " शराब के नशे में अपने प्रोफेसर से बातचीत करते हुये स्वयं अपने दुष्ट चरित्र को प्रगट कर देता है जैसे -" आपकी सलाह के लिए शुक्रिया ,लेकिन लेकिन अपनी आदत का मैं क्या करूँ । जिन्दगी दुहरी तरह बढ निकली है अब इसे सम्हालना मेरे बस की बात नहीं । कालेज और इम्तहान तो बहाने के लिए साथ लगाये हुए हूँ । वर्ना प्रोफेसर न मुझे पास होने की चिंता है, न डिग्री की परवाह ।"[१]

कथोपकथन के गुण :

कथोपकथन का महत्व और उसके कार्य कुछ विशेष गुणों पर निर्भर करते हैं । कथोपकथन में उपयुक्तता , स्वाभाविकता ,अनुकूलता , सम्बद्धता ,संक्षिप्तता और रोचकता आदि का उचित आदर होने से ही वह वांछित रूप में प्रगट होता है । सफल उपन्यासकार अपने पात्र की वाणी का सृजन करते हुए इन तत्वों का पूरा ध्यान रखता है ।

निराला के"अलका" उपन्यास की खलपात्र महावीर शोभा की माँ के मर जाने पर जब आकर उसे भूठी सहानुभूति दिखाता हुआ कहता है -" अब चलो , प्यारे लाल के यहाँ तुम्हें रख आयें । कोठरियों में ताले लगा दें,दो कुंजियों का गुच्छा ले आओ ताले कहाँ हैं,क्या किया जाय बेटी,अब सब दुनियाँ पर यही आफत है, फिर तुम्हारी माँ को गंगा जी पहुँचाने का बन्दोबस्त करें ।"[२]उसका यह कथन समय और स्थिति के अनुकूल है ।उसके इस कथन द्वारा लेखक उसके कपट पूर्ण व्यक्तित्व

१- ऋषभ चरण जैन - मंदिरदीप पृ० १००

२- निराला - अलका पृ० १३

बन्दीजान- अच्छा, पहले दो महीने का खर्च निकाली जाए साथ से - फिर दूसरी
बातचीत ।"

श्यामनाथ-" खर्च में कुछ माँग कर थोड़ा-सा ही लाया हूँ ।"

बन्दीजान उठकर बोली -" तो फिर कल ही बात करना आकर ।"[१]

लेखक बंदीजान की बातचीत से वेश्या की धनलोलुप प्रवृत्ति का चित्रण बड़ी सफलता से कर देता है । धन ही वेश्या के जीवन का केन्द्र होता है ।

अतः हम कह सकते हैं कि कथोपकथन द्वारा लेखक पात्र के बाह्य क्रिया कलाप के साथ ही साथ आन्तरिक मनोभावों को भी प्रकट कर देता है ।

वातावरण :

प्रत्येक कथा-विशेष अपना एक विशिष्ट वातावरण लेकर चलती है जिसका संबंध देश एवं काल से होता है । उपन्यासकार समाज विशेष अथवा परिस्थिति विशेष का चित्र अंकित करता हुआ उस वातावरण की भी रचना करता है जिसमें वे सब घटित हो रहा है और जिसमें उसके पात्रों का व्यक्ति वैशिष्ट्य उभर रहा है । वातावरण पात्र के जीवन में और उसके चरित्र निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करता है । पात्र के चरित्र की स्पष्टता से चित्रित करने के लिए आवश्यक है कि उपन्यास में उसके चारों ओर के वातावरण का यथार्थ चित्र अंकित किया जाए । उपन्यास के पात्र अपने स्वभाव के अनुसार नैतिक या अनैतिक वातावरण की सृष्टि करते हैं । शराबी, जुआरी, व्यभिचारी अपनी रुचि के अनुसार वातावरण में निवास करते हैं । बेचन शर्मा उग्र के 'शराबी' उपन्यास के शराब खाने के वातावरण का वर्णन करता हुआ लेखक कहता है -" चारों ओर सन्नाटा और दुर्गन्ध का राज्य था । कहीं पियक्कड़ जमीन या चटाई या नाबदान पर गाफिल पड़े अपनी मार्मों

१- बेचन शर्मा उग्र - शराबी पृ० ११३ द्वितीय सं० १९४५

१- विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक - माँ पृ० ३८० द्वि० सं०

से कैसवरी की गद्दी उतराई क्या रहे थे । पूर्वी कोने की दालान में पत्थर का एक ऊँचा सा चबूतरा था जिस पर कई घड़े ढके रहे थे । आसपास अनेक बोतलें भी पड़ी थी वहीं एक चटाई पर गल्ले के सन्दूक पर तकिया किये कलाल बेखबर पड़ा था । उसकी आँखें अधखुली थी । जैसे जागता हो । मगर नाक बोल रही थी ——— कलाल के सिरहाने दीवाल में बने मिट्टी के दीवट पर मिट्टी के बर्तन में मीठे तेल की मोटी बत्ती जल रही थी ।"१

सामाजिक वातावरण से अर्थ है समाज की भिन्न भिन्न स्थितियाँ जिसमें मनुष्य रहता है । प्रत्येक मनुष्य के परिवार मुहल्ले,नगर और देश का वातावरण दूसरे से पृथक होता है । प्रत्येक का अपना एक संसार होता है । अतः उपन्यासकार के लिए उस सामाजिक वातावरण को निर्मित करना आवश्यक है जो कथानक की भावना के अनुकूल हो और पात्र के व्यक्तित्व की सम रचना में सही परिवेश व्यक्त कर सके । उचित वातावरण की दृष्टि से समकालीन सामाजिक स्थितियाँ , रीति-रिवाजों,आचार व्यवहार और संस्कृति का यथार्थ चित्रण विश्वसनीय एवं प्रभावोत्पादक प्रतीत होता है । वातावरण के चित्रण में लेखक की पैनी दृष्टि आवश्यक है जिससे वह पाठक पर प्रभाव डाल सके और यथार्थ का अनुभव करा सके जो स्वाभाविक और सरल हो । उपन्यासकार अपने चतुर्दिक फैले हुये सामाजिक वातावरण से ज्ञान प्राप्त कर पात्रों के चरित्र और उनके जीवन में घटित घटनाओं के चित्रण में अधिक सफल होता है । उपन्यासकार को अपने सम्भाव्य वातावरण की दृष्टि कर लेने से कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सुविधा होती है । प्राकृतिक वातावरण भी पात्रों के चरित्र पर प्रभाव डालते हैं । निराला ने अपना उपन्यास के अलकाज महादेव के घर के चारों और के वातावरण का चित्रण करता हुआ लेखक

१- केसव कर्मा कृत - शराबी पृ० १६३ द्वितीय सं० १९६६

लिखता है कि चौपाल में पड़े महादेव प्रसाद कराह रहे हैं । तीन चार रोज से कमर में सख्त दर्द है, कुछ बुखार भी है । चारपाई के एक तरफ कच्ची मिट्टी के गमले में कंडे की आग सुलग रही है, धुवंध और मदार के कुछ पत्ते इधर उधर पड़े हैं जैसे सेंक की रही थी , और ये पत्ते बाँधने के काम में लाए गए थे ।" [1] कुंठा और कुत्सिता के कारण भी पात्र अनैतिक, गन्दे और विलासी वातावरण में रहने के आदी हो जाते हैं । वेश्यागामी को वेश्यालय का नाच रंग से भरा वातावरण ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । लेखक पात्र की रुचि के अनुसार ही विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करता है ।

शैली :

भावों के अभिव्यक्ति की पद्धति को शैली कहते हैं । अपने अभिप्राय को प्रगट करने के लिए शब्दों का चुनाव और उन्हें सजाना ही शैली है । कथा की वास्तविकता और चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता का बहुत कुछ दायित्व भाषा शैली पर होता है । भाषा ही उसके पात्रों को सजीव और सुन्दर बनाती है । अतः सदैव उपन्यासकार समासों अप्रचलित शब्दों अत्यधिक विशेषणों और निरर्थक रूपकों के प्रयोग से बचता है । शब्दों का उपयुक्त चुनाव, भावों का स्पष्ट चित्रण और मुहावरों आदि का सफल प्रयोग ही श्रेष्ठ शैली की विशेषता है । किसी कृति का सफल या असफल होना जितना उसकी मौलिकता या रोचकता पर निर्भर करता है उतना ही उसकी शैली पर । किशोरी लाल गोस्वामी के "लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा " उपन्यास में तत्कालीन भाषा शैली का चित्रण औपन्यासिक पात्रों की भाषा के द्वारा मिल जाता है -"कमबख्त तो कहीं का ! तू अभी तक जीता है । अफसोस , मौत का निवाला होकर भी तू यहाँ तलक जीता जागता आ पहुँचा ।" [2]

भाषा शैली ही व्यक्ति के सत् असत् चरित्र को प्रकाश में लाने में सहायक होती है । सामन्त की भाषा भूल-विपूर्ण, व्यंग्यपूर्ण, अशिष्ट, गँवारू, रौबीली,

---

१- निराला - कुल्ली भाट पृ० १३५

२- किशोरी लाल गोस्वामी - लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा पृ० ५६

असभ्य,मुहावरेदार और गाली आदि से युक्त होती है । कथोपकथन की भाषा भी चरित्र को प्रगट करने में उतनी ही सहायता करते हैं जितना चरित्र चित्रण । वृंदावन लाल वर्मा के कुंडली चक्र उपन्यास के खलपात्र मुजब्बत के इस कथन से -" जब सिर पर जूती बरसेंगी,तब होश ठिकाने आयेगा ।"[1] उसके निष्ठुर , हृदयहीन एवं निर्दयी होने का आभास मिलता है । इसी प्रकार - "क्यों बे सुअर ------- किस लिए आया है।"[2] ---------- हाथ का सांप बन आया"[3] साले हराम जादे । तेरी बोटी बोटी कुत्तों से न नुचवाईं तो मेरा नाम मुजब्बत नहीं ।"[4] किसानों के साथ इस प्रकार की गाली, अशिष्ट भद्दी भाषा का प्रयोग करा कर लेखक उसके ही कथोपकथन से पाठक के मन में उसके चरित्र की एक स्पष्ट रूपरेखा बना देता है । साथ ही खल की असभ्य और अशिष्ट शब्दावली के द्वारा वही वातावरण की सृष्टि में समर्थ होता है ।

खलपात्र अपनी रुचि एवं स्वभाव के अनुसार ही शब्दों का प्रयोग करते हैं । अनूपलाल मंडल के "निर्वासिता " उपन्यास में खलपात्र श्यामाचरण का यह सीधा और सरल वाक्य उसके कुटिल मन्तव्य को ही अधिक प्रगट करता है -" शायद मुझसे मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी हो ।"[5]

अनूप लाल मंडल के "निर्वासिता " उपन्यास का जमींदार तीनकौड़ी बाबू क्रूर मुहावरे का प्रयोग करते हुए अपने क्रोध को प्रगट करते हैं - " अच्छा अब सुबह ही उसकी खाल खींच कर भुस में न भरवा दूँ तो मेरा नाम नहीं ------ ।"[6] इसी प्रकार गोपाल राम गहमरी के "हंसराज की डायरी " उपन्यास का खलपात्र डा० मुकुन्द व्यंग्य पूर्वक कहता है -" गिरफ्तार नहीं खाक होगा । बाबा किया करें ।"[7] इससे उसके कुटिल स्वभाव का पता चलता है । शराबी पन्नालाल के मुँह से यह वाक्य उसके व्यक्तित्व के अनुरूप ही दिखाई पड़ता है -" यह साला मरकट

१- वृन्दावन लाल वर्मा - कुंडली चक्र पृ० ५०
२- वृन्दावन लाल वर्मा - कुंडली चक्र पृ० ११०
३- वृन्दावन लाल वर्मा - कुंडली चक्र पृ० १९०
४- वृन्दावन लाल वर्मा - कुंडली चक्र पृ० २०४
५- अनूप लाल मंडल - निर्वासिता पृ० २८०
६- अनूप लाल मंडल - निर्वासिता पृ० ८७
७- गोपाल राम गहमरी- हंस राज की डायरी - पृ०३३

सामने आ फटा ।" १ निगोड़ी, मतार[2], मिस्कीटक[3], सटक लगाना आदि गवारू मुहावरों का प्रयोग करके लेखक दुष्ट पात्रों के स्वरूप को यथातथ्य और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करता है ।

कभी कभी आक्रोश में लेखक सुरुचि और संस्कृति की सीमायें लाँघ कर न केवल आवेशवश अपशब्दों के द्वारा खलपात्रों की कटु और तीखी आलोचना करता हुआ दिखाई देता है वरन् साधारण स्थिति में भी वह खलपात्रों की भाषा शैली की कटुता को व्यक्त करता है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार अपने पात्र की रचना से तटस्थ नहीं है और हमारे सामने वह पात्र को ही केवल उसके व्यक्तित्व के रूप में नहीं वरन् अपनी आलोचना के साथ प्रस्तुत करता है और उसके लिए नये उपमान निकाल लाता है जैसे - "पन्नालाल भैंस की तरह गरजे ।"[4]

उद्देश्य :

उपन्यासकार की कथा यात्रा निरुद्देश्य हो प्रायः सम्भाव्य नहीं है । उपन्यासकार आत्मपरक अथवा वस्तु परक दृष्टियों से संचालित होकर किसी न किसी सांस्कृतिक लक्ष्य को सामने अवश्य रखता है । ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों से परिचित कराना हो सकता है और इससे भी अधिक यह हो सकता है कि लेखक अपने देश के गौरव अथवा पतन के प्रसंगों को सामने लाकर वर्तमान जनरुचि को संचालित करना चाहता है । सामाजिक उपन्यास में समस्या चित्रण का अंकन न करके उपन्यासकार सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करने की चेष्टा करता है । "परीक्षागुरु" के लेखक ने रसिकवादों और कुसंग, "लज्जाराम शर्मा" ने पारिवारिक विघटन और "प्रेमचन्द" ने जमींदारी और महाजनी की समस्या को उठाकर इसी प्रकार

१- बेचन शर्मा उग्र - शराबी पृ० ८५
२- किशोरी लाल गोस्वामी - पुनर्जन्म वा सौतिया डाह पृ०
३- प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम पृ० ८७
४- बेचन शर्मा उग्र - शराबी पृ० ५० द्वितीय सं० संवत् १९९५

के लक्ष्य को अपने मन में रखा है । इस प्रसंग में खलपात्र एक विशेष भूमिका म अदा करते हैं । खलता विश्व के इतिहास में कभी भी वांछनीय गुण नहीं रहा और प्रत्येक सभ्यता तथा प्रत्येक देश का साहित्य मीरजाफर खाँ,कमलाचरण मुकबल, हार्लबान,ज्ञानशंकर जैसे पात्रों का प्रमाण हैं । ये पात्र सृष्टि के असत् तत्व के प्रतीक बन कर जीवन के संघर्ष का , पतन की सम्भावनाओं का स्वरूप सामने लाते हैं । कथाकार मनुष्य स्वभाव की दुर्बलता को इनके माध्यम से प्रस्तुत करता है तथा ये कब और क्यों पनपते हैं उन परिस्थितियों का अंकन सूक्ष्मता से करता है ।

उपन्यासकार मनुष्य जीवन के विरसत् का उद्घाटन करना चाहता है । प्रत्येक उपन्यासकार के सम्मुख रचना का एक उद्देश्य होता है । उसी उद्देश्य को सामने रख कर वह खलपात्रों की सृष्टि करता है । खलपात्रों के चरित्र द्वारा ही वह सत् पात्र के आदर्शों को स्थिर करता है और एक निदान तक पहुँचता है । उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट करते हुये प्रेमचन्द कहते हैं -"जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे , उसके सद्भाव जाग पड़े,वही सफल उपन्यास है ।"[१]

जब हम उपन्यास के उद्देश्य की चर्चा करते हैं तो मनोरंजन और सुधार के प्रश्न भी सहज ही हमारे सम्मुख उभरते हैं । इस दृष्टि से उपन्यास की विधा को अ अत्यधिक महत्व दिया गया है ।

उपन्यास में पात्र का महत्व

इस विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपन्यास में पात्रों का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का । पात्र ही वह आधार है जिसके ऊपर उपन्यास रूपी भवन खड़ा होता है । पात्र के बिना उपन्यास के अन्य तत्व बेकार है । उपन्यास चाहे घटना प्रधान हो या चरित्र प्रधान या मनोविश्लेषणात्मक,निश्चय ही एक या एकाधिक पात्र से संबंधित होगा । घटना प्रधान में पात्र का बाहुल्य आधार , चरित्र में उसका व्यक्तित्व और मनोविश्लेषणवाद में उसका

१- प्रेमचन्द - कुछ विचार पृ० ७६

अन्तर्वैश महत्त्व पूर्ण होता है मनोविज्ञान के प्रादुर्भाव से उपन्यास में उत्तरोत्तर पात्र का महत्त्व बढ़ता जाता है । पात्र को गति उपन्यासकार की कल्पना प्रदान करती है । पात्र दृश्य जगत के मानव का प्रतिनिधित्व और उसका कल्पित रूप धारण करता है । पात्र का कोई निजी अस्तित्व या व्यक्तित्व नहीं होता । वह लेखक के दृष्टिकोण के प्रतिरूप होता है । उपन्यास में पात्र की रचना लेखक किसी विशेष उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए करता है । लेखक पात्रों के द्वारा मानव जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है । मानव जीवन असीम एवं अनन्त है । उपन्यास का पात्र मानव जीवन के किसी एक कण को व्यक्त करता है । उपन्यास के पात्र कल्पित होते हैं । इसलिए हम उन्हें मीमांसा की कसौटी पर रखते हैं । वही पात्र और उसका जीवन इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता है जो अनुभव,अध्ययन,मनोविज्ञान के ज्ञान फलक पर अध्यवसाय द्वारा उद्देश्य की भावना के अनुरूप चित्रित किया गया हो ।

नैतिक दृष्टि से मोटे ढंग से पात्र दो प्रकार के होते हैं - सत् या असत्, अच्छे या बुरे,देव या दानव । इन्हीं दो श्रेणियों को दृष्टि में रखकर हम पात्र को सज्जन या दुर्जन कहते हैं, अपने दृष्टिकोण के हिसाब से । पात्र किसान,जमींदार, शासक,व्यापारी,कर्मचारी,शिक्षक,महात्मा आदि से कोई भी हो सकता है । उसके चरित्र द्वारा काल और स्थान विशेष के जीवन पक्ष पर प्रकाश पड़ता है । इसके अतिरिक्त पात्र कथोपकथन द्वारा भी जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं । उनके संवाद द्वारा ज्ञात होता है कि किस युग और वातावरण में वह जी रहे हैं उनकी सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति क्या और कैसी है और उसमें वह किस रूप में क्रियाशील है । उपन्यासकार जिस उद्देश्य या लक्ष्य को सम्मुख रखकर उपन्यास की रचना करता है उसी के अनुसार वह सद् पात्रों या असत्पात्रों की रचना करता है । जीवन के यथार्थ एवं बहुरंगी रूपों का चित्रण करने के लिए आवश्यक है कि मानव के सभी पक्षों का सही रूप प्रस्तुत किया जाये । असत्पात्र के अभाव में सद् पात्र का रूप निखर ही नहीं पाता । असत्पात्र ही सत्पात्र के मार्ग में अवरोध एवं कठिनाइयाँ उत्पन्न करके सत् पात्र के अन्दर निहित संयम,धैर्य,सहिष्णुता,क्षमा आदि की परीक्षा की कसौटी में डाल कर उसके व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को उभारता है और इन्हीं अवसरों में असत्पात्रों की दुष्टता,निष्ठुरता,कृपणता आदि का पता चलता है । "मानव चरित्र न नितान्त उज्ज्वल है न एकान्त श्यामल,इसीलिए जाने माने

से ही जीवन पट का विस्तार हुआ है । विरोधी गुणों का यह समन्वय अन्तर्द्वन्द्व को जन्म देता है । विपरीत प्रवृत्तियाँ अन्त: संघर्ष को जन्म देती हैं जिस चरित्र में विपरीत प्रवृत्तियों से समुत्पन्न अन्त:संघर्ष नहीं है उसको हम पूर्ण और स्वाभाविक नहीं कह सकते ।"[1]

जीवन में,समाज में सद्पात्रों के साथ साथ खलपात्रों का भी विशेष महत्व है । जब लेखक पारिवारिक परिवेश के प्रश्न को उठाता है तो पारिवारिक कटुता और अशांति को उत्पन्न करने वाली सास या बहू या ननद,जब कभी चरित्र हीनता के प्रश्न को उठाता है तो वेश्या और वेश्यागामी , जुआरी , शराबी , जब देश के प्रश्न को उठाता है तो क्रान्तिकारी ,महत्वाकांक्षी ,लोभी ,सेनापति,स्वार्थी , राजा,और जब लेखक पवित्र प्रेम को उठाता है तो कपटपूर्ण प्रेमी ,वासनामय प्रेमी और जब लेखक धर्म के प्रश्न को उठाता है तो ढोंगी महात्मा,मठाधीशों,महन्तों,आदि को खल के रूप में चित्रित करता है । इस प्रकार पूर्व निर्धारित दृष्टि के आधार पर पात्र रचना करने के कारण कभी कभी चरित्र चित्रण दोषपूर्ण एवं एकांगी प्रतीत होता है । जैसे जैसे लेखक घटनाओं के स्थान पर पात्र के व्यक्तिगत जीवन की कुण्ठाओं में प्रवेश करता जाता है वैसे वैसे पात्र का महत्व बढ़ता जाता है । आधुनिक युग में पात्र लेखक की परम्परागत धारणा की कठपुतली मात्र न रहकर अपना निजी व्यक्तित्व भी प्रस्तुत करते हैं और स्वत: संचालित रूप में सामने आते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यासों की कथावस्तु इतनी विस्तृत होती है कि उसमें किसान,जमींदार मजदूर,मिलमालिक,क्लर्क,अफसर,थानेदार,पंडित,वकील डाक्टर,प्रोफेसर से लेकर वेश्या और पतिव्रता ,विधवा और सधवा ,माता और विमाता आदि तत्कालीन समाज में उपलब्ध प्राय: सभी प्रकार के पात्र उनके उपन्यासों में मिल जाते हैं । विविध जीवन स्तरों से उठाए गए पात्रों का यह वैविध्य ठोस सांस्कृतिक क्षेत्रों का वाहक बनता है ।

१- डा० कैलाश प्रकाश - प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास पृ० २८

उपन्यास में मनोरंजन एवं सुधार की भावना

उपन्यास मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम है । मानव मन स्वभावत: सुखापेक्षी है । सुख प्राप्ति का साधन नैतिक भी हो सकता है और अनैतिक भी । पात्र अपनी रुचि के अनुसार ही मनोरंजन के साधन एकत्र करता है । मनोरंजन रहित जीवन शुष्क , नीरस , और अपूर्ण है । भगवान का ध्यान , ज्ञान की प्राप्ति, विज्ञान की खोज , कला की उपासना ऐसे माध्यमों से लेकर नाटक,सिनेमा,ताश, खेलकूद ,शराब,जुआ न जाने कितने साधन हैं । मनुष्य की प्रवृत्ति उससे अपने अनुकूल ढंग का मनोरंजन माँगती है । मनोरंजन मन की एक अनिवार्य तृष्णा है और उसकी तृप्ति अच्छे साधनों द्वारा होनी चाहिये । इन अच्छे साधनों में उपन्यास भी आधुनिक युग की महान देन है जो मनोरंजन के साथ ही ज्ञानवृद्धि में भी सहायक है । संगीत सात स्वरों आरोह-अवरोह,राग-रागिनी,लय और ताल से मनोरंजन करते हैं । उपन्यास विभिन्न संवेगों । रसों,रंगबिरंगे पात्रों के चरित्र चित्रण और घटना चक्रों के विधान द्वारा ।"उपन्यास का पाठ केवल मनोरंजन की दृष्टि से होता है अध्ययन या अनुशीलन की दृष्टि से नहीं ।"[1]

आधुनिक युग में उपन्यास नाटक से अधिक मनोरंजक,प्रभावशाली,सस्ता एवं जन सुलभ है ।उपन्यास केवल शब्दों के बल पर उपन्यासकार अपने उद्देश्य को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है । यह एक मूक मनोरंजन है , आपकी मनोव्यथा और (dimension) आयाम रहित । नाटक में जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश उतनी सुगमता से नहीं डाला जा सकता जितनी सुगमता से उपन्यास में प्रत्येक चरित्र वातावरण घटना या दृश्यों पर प्रकाश पड़ता है । उपन्यासकार पाठक की कल्पना को जगा कर मानस पर ऐसे चित्र अंकित करता है जो वास्तविक हैं । उपन्यास के द्वारा लेखक समाज की नैतिक मान्यताओं की पुष्टि और पाश्चात्य शिक्षा की बुराइयों को सम्मुख रख कर उसके दुष्परिणाम को दिखा कर कात् से मानव को सचेत करता है ।

प्रारम्भिक युग में जितने भी उपन्यास लिखे गये वे नीति,उपदेश एवं सुधार की दृष्टि में रख कर लिखे गये । उस युग का लेखक उस उद्देश्य के प्रति अत्यन्त सचेत था । बालकृष्ण भट्ट ने तो स्पष्ट शब्दों में ही अपने उपन्यास में यह बात कह दी है ।[2]

१- सरस्वती पत्रिका १९३२ पृ० २६ भाग ३३
२- बालकृष्ण भट्ट - सौ अजान एक सुजान पृ० १२३

सुधारवादी उपन्यासों का उद्देश्य अपने पाठकों के सामने धर्मानुकूल आचरणों का स्वरूप तथा उसका सुफल सामने रखना होता था । यह दिखा कर कि खल अपने दुष्ट कार्यों का फल दुःख और पतन में पाता है, वे अपने इस उद्देश्य को पुष्ट करते थे । इसके मुख्य दो कारण थे एक तो तत्कालीन लेखक पाश्चात्य जीवन प्रणाली और उसकी वेश-भूषा की भाँति उपन्यास को भी भारतीय जलवायु के विपरीत समझते थे । दूसरे तिलिस्मी उपन्यासों को देखकर कुछ लोग उसे समय की बरबादी समझते थे । ऐसी विचारधारा से लोगों को मुक्त करने के लिए प्रारम्भिक युग के उपन्यासकारों जैसे 'लज्जाराम शर्मा मेहता,' 'बालकृष्ण भट्ट', बाबू राधाकृष्ण दास', किशोरी लाल गोस्वामी 'आदि ने शिक्षाप्रद, सुधारवादी उपन्यासों की रचना की । इन उपन्यासकारों ने सत् असत् पात्रों के चरित्र द्वारा असत् पात्रों के दुष्कृत्यों उनके पाप के कुपरिणामों को दिखा कर जनता को उनसे बचने का उपदेश देते हैं । धर्म एवं नैतिकता को दृष्टि में रख कर ही वे हमेशा खलपात्र को पराजित कर अपने आदर्शवाद की स्थापना करते हैं । चूँकि खल हमेशा नायक को पथभ्रष्ट, दुर्व्यसनी, व्यभिचारी बनाने में संलग्न रहता है । उसका प्रत्येक कार्य अनैतिकता से पूर्ण रहता है इसलिए लेखक खल के विकृत से विकृत रूप को सम्मुख रखता है उसके प्रति अधिक से अधिक घृणा पाठक के मन में जागृत करता है । श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' उपन्यास का नायक मदनमोहन नवशिक्षित अमीरों की कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है । मुंशी चुन्नी लाल, मास्टर शंभूदयाल, बाबू बैजनाथ, पंडित पुरुषोत्तम दास जैसे खल की रचना कर और उनकी कुसंगति से मदन मोहन को पथभ्रष्ट होते दिखा कर लेखक पाठक को चेतावनी देता है कि इस प्रकार के बुरे लोगों की संगत से बचो । इस प्रकार वह उपदेश और सुधार दोनों उद्देश्य की पूर्ति खलपात्रों के माध्यम से कर लेता है । बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान" "नूतन ब्रह्मचारी" लज्जाराम शर्मा के 'बिगड़े का सुधार' आदि में लेखक खलपात्रों के चरित्र द्वारा सत् पात्रों के चरित्र को उभारता है ।

देवकी नन्दन खत्री के "चन्द्रकान्ता" उपन्यास की रचना मनोरंजन की दृष्टि से की गई है । 'चन्द्रकान्ता' में जो बातें लिखी गई हैं वे इसलिए नहीं कि लोग उसकी सच्चाई-झुठाई की परीक्षा करें, प्रत्युत इसलिए कि उसका पाठ कौतूहल [illegible]

बढ़िए हो ।" किन्तु लोकरंजन को धर्म या लोकरक्षण का विरोधी भाव मान कर नहीं चले हैं इसलिए चन्द्रकान्ता के एकनिष्ठ प्रेम का उत्कर्ष करते हैं । प्रतिनायक क्रूरसिंह यद्यपि नायक वीरेन्द्रसिंह के मार्ग में अनेकों कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है पर अन्त में खलनायक क्रूरसिंह को उसके दुष्कृत्यों का दंड देकर लेखक सत् पात्र की विजय दिखाता है । इस प्रकार उपन्यासकार का सत् पात्र असत्पात्र का विवेक, सत् की विजय असत् का दंडविधान पाठक के मन में समाज के विध्वंसक तत्वों के प्रति धारणा स्थिर करके कर्तव्य निश्चित करने की प्रेरणा देता है । इसी प्रकार जासूसी उपन्यासों में भी लेखक अपराधी को खूनी, हत्यारा आदि रूपों में चित्रित कर खलपात्र के जघन्य से जघन्य रूप को सामने रखता है और अन्त में प्रायः अपराधी को अपनी करनी का फल सजा या फांसी के रूप में प्राप्त करता है । परीक्षा गुरु में लेखक अपने उद्देश्य को स्पष्ट करता हुआ कहता है -"हिन्दुस्तान की भूमि में उन्नति के सब साधन हैं ---फिर भी अकर्मण्यता के कारण देशवासी उन्नति नहीं कर पाते हैं ।" किशोरी लाल गोस्वामी ने "चपला" उपन्यास में तत्कालीन समाज का घृणित रूप सामने रखने के लिए कमल किशोर जैसे खल की कल्पना की । कमलकिशोर के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि जब प्राचीन धर्म या संस्कृति को भूल कर मनुष्य नवीन फैशन या पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करता है तो वह अधर्म का सहारा ले अनेकों पाप करता है । कुकर्म का घृणित चित्र खींचकर अन्त में उसके दारुण फल का भी भयावह वर्णन कर लेखक ने पाठक के मन को पाप से हटाकर धर्म में प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया है । आदर्शवादी उपन्यासकार किशोरी लाल के तो अनेकों उपन्यास ही आदर्शवाद के नाम पर लिखे गये जैसे लीलावती वा आदर्शसती, लवंगलता वा आदर्शबाला, हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी आदि ।

प्रेमचन्द युग में आकर आदर्श का रूप परिष्कृत हो गया । प्रेमचन्द उपन्यास कला को कला की भूमि पर स्थापित करते हैं किन्तु यह कहना कि उपन्यास की रचना उन्होंने कला के लिए केवल कला मात्र से की, असंगत होगा । यह सत्य है कि चन्द्रकान्ता जैसे उपन्यासों की चली आ रही परम्परा को मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से निकाल कर उन्होंने उपन्यास को अद्भुत और अघटित घटनाओं से मुक्त किया, और साथ ही नूतन ब्रह्मचारी या "सौ अजान एक सुजान" के मात्र सुधारवादी मोटे दृष्टिकोण से भी उस कला को मुक्त किया तथापि प्रेमचन्द के उपन्यास जहाँ एक ओर अत्यन्त रोचक हैं वहीं दूसरी

१- देवकी नन्दन खत्री-चन्द्रकान्ता संतति-चौबीसवां हिस्सा, लहरी बुकडिपो [illegible]

और पाठक के मन में अपनी एक गहरी छाप भी छोड़ती है । प्रेमचन्द के पास एक संदेश होता है अपने देश और समाज के प्रति । उन्होंने लेखक के दायित्व को गहराई से अनुभव किया है । प्रेमचन्द ने ही पहले पहल दिखलाया कि मानव चरित्र कोई स्थिर वस्तु नहीं और न वह केवल श्वेत ही ,वरन् उसमें श्वेत और श्याम का मिश्रण है ।"[१] प्रेमचन्द का उद्देश्य मनोरंजन के साथ साथ समाज में वर्तमान कुरीतियों ,विषमताओं एवं अच्छाइयों की यथार्थ स्थिति का चित्रण करना था । अपने आदर्शवादी दृष्टि को जनता के सम्मुख पहुँचाने का उन्होंने सबसे सरल माध्यम उपन्यास को समझा । प्रेमचन्द उपन्यास में चित्रित सत् और असत् पात्रों में असत् का पराजय दिखा कर या खलपात्र को सत् पात्र के मार्ग में बाधक चित्रित कर समाज में वर्तमान खल के खोखले मूल्य को स्थापित करते हैं । सेवासदन की "सुमन" या "कृष्णचन्द्र" परिस्थितिवश अनैतिक कर्म करने के लिए तत्पर होते हैं । डा० त्रिभुवन सिंह का विचार है "यदि समाज बुरे तथा अनैतिक कार्यों को प्रश्रय न दे तो किसी भी व्यक्ति को अपनी वास्तविक हीनता कष्टकर न प्रतीत हो , और न तो लोगों की सत् कार्यों के प्रति अश्रद्धा ही हो ।"[२] दरोगा कृष्णचन्द्र आर्थिक कठिनाइयों से मजबूर होकर घूस लेना स्वीकार करते हैं । सुमन की शादी और सामाजिक मर्यादा को बनाये रखने के लिए ही पाप करते हैं ।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए नए विषय चुने जिनसे किसानों, वेश्याओं , मजदूरों,विधवाओं,देशसुधारकों , जमींदारों,त्यागी-तपस्वियों,प्रेमी-प्रेमिकाओं,छोटे-छोटे बच्चों,स्त्रियों का आभूषण प्रेम,वकीलों की चालाकी,अत्याचार अन्याय,ऊपर से सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित होकर मानव की कुटिल और घातक मनोवृत्तियों,दाम्पत्य जीवन की समस्याओं की वास्तविक झाँकी सामने आई ।[३]

१-डा० श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य का विकास पृ०

२-डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ०७२

३-डा० देवराज - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान पृ० ८८

इस युग के उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य समाज की बुराइयों को दिखा कर जनता और राज्य को उनके प्रति सचेत करना था । प्रेमचन्द ने बाल-विवाह,विधवा समस्या,पर्दा-प्रथा,दहेज-प्रथा,बहुविवाह आदि के दुष्परिणामों को दिखाने के लिए इन कुरीतियों को प्रश्रय देने वाले खलपात्र जैसे कमला प्रसाद,बाबू मालचन्द्र आदि को कथा में स्थान दिया । प्रेमचन्द का दृष्टिकोण मानवतावादी दृष्टिकोण था इसलिए उनके बुरे से बुरे पात्र भी अन्त में सत्संग,ग्लानि,पश्चाताप आदि की अग्नि में तप कर सुधर जाते हैं और साधारण मानव का सा जीवन व्यतीत करने लगते हैं । प्रारम्भिक युग के उपन्यासकार और प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकार अपने खलपात्रों के द्वारा ही जनता को पाप से बचने का संदेश देते हैं । निराला ने आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद को अपने उपन्यास का मुख्य ध्येय बनाया । यथार्थ के चित्रण में उन्होंने ऐसे पात्रों को खल के रूप में रखा जो अपनी सम्पत्ति,मान एवं प्रतिष्ठा की आड़ में समाज में सभ्य बनकर अनेकों पाप करते हैं ।

अत: हम कह सकते हैं कि उपन्यास एक विशिष्ट सुरुचिपूर्ण ढंग से जीवन के विस्तृत तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कराता है । उपन्यास पढ़ने से शिक्षा और मनोरंजन के साथ साथ हमारे दृष्टिकोण विचार एवं विश्वास में सुधार,पढ़ने के प्रति रुचि, मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति समाज की उन्नति की प्रेरणा,कार्यक्षमता में वृद्धि, कल्पना एवं तर्क शक्ति का विकास और अनेक कौतूहलों की शान्ति प्राप्त होती है । उपन्यास की मूलभूत प्रेरणा मनोरंजन होने पर भी इसके अन्य उद्देश्य सिद्ध होते हैं । यह उद्देश्य नैतिक भी हो सकता है और अनैतिक भी । उपन्यास पढ़ने से खलपात्रों को प्रेरणा अपने कुविचारों या बुरे साथियों द्वारा प्राप्त होती है । कुविचारों से प्रेरित होने के कारण वह पतन की ओर बढ़ते हैं । खल के पास अपने कार्य को पूर्ण करने की अपरिमित शक्ति होती है भले ही वह उसका दुरुपयोग करे ।

अध्याय - ३

ऋतु का स्वरूप

प्रकृति और साहित्यकार :

प्रकृति के प्रति साहित्यकार का आकर्षण सदा से रहा है। "मानव चरित्र की व्यापक धारा जो भूत में थी, वर्तमान में है, और भविष्य में रहेगी वह प्रकृति है।"[1] मानव प्रकृति की इस शाश्वत धारा के प्रति यह आकर्षण अटूट है और इसलिए साहित्य और प्रकृति का अभिन्न संबंध है। यह बात दूसरी है कि प्रकृति का क्षेत्र असीम है और अगम्य भी, फिर भी अनिवार्य रूप से यह किसी न किसी अंश में किसी न किसी रूप में उपलब्धि की ओर लेखक को, कवि को, मजबूर करती है। "ईश्वर की संरचना में मानव की सृष्टि सबसे अधिक विशिष्ट है अतः कवि या कलाकार के लिए इससे अधिक समुचित और उपयोगी विषय सदा से कोई दूसरा नहीं रहा।"[2] प्रकृति के स्वरूप की परिकल्पना में कलाकार कल्पना और अनुमान का भी सहारा लेता है।

---

1. "Nature when it was not human hands and feet, was and of course is still that quantum of the mind and heart which all men-Past, present and in theory future - held in common." - Pope and Human Nature, Geoffrey Tillotson, P.16

2. Monsieur Bossu's Treatise of the Epic Poem Trans. W.J. 1695 P.3.

प्रकृति इतनी विविध और बहुरंगी है कि उसको एक बार ही समूचा पकड़ पाना किसी एक लेखक के लिए सम्भव नहीं है। अंग्रेजी कवि पोप ने इसी बात को दृष्टि में रख कर कहा था -

"There's some peculiar in each leaf and grain,
Some unmark'd fibre, or some verying vein;
Shall only man be taken in the gross?
Grant but as many sorts of mind as Moss." - 1

प्रत्येक व्यक्ति का मन अनोखा होता है, उसकी वृत्तियाँ अपना निजीपन लिए हुए होती हैं। यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि साहित्य पूर्ण मनुष्य के चित्रण को महत्त्व नहीं देता। वह मनुष्य, जो वास्तव में मनुष्य है, जिसमें उदात्त और अनुदात्त दोनों पक्ष हैं, जिसमें कुछ कमी है उसके जीवन का यथार्थ चित्रण ही साहित्यकार की विशेषता है। 'पूर्ण मनुष्य चिन्तन का विषय है वर्णन का नहीं।'[2] वह एक आदर्श है जहाँ तक पहुँचना है। जब हम अंग्रेजी कवि शेक्सपियर अथवा हिन्दी के कथाकार प्रेमचन्द की आलोचना करते हैं तो उनकी विशिष्टता इसी में पाते हैं कि उन्होंने सच्चाई से मनुष्य के व्यापारों और जीवन का प्रतिबिम्बन किया है। कवि पोप जब यह स्वीकार करता है कि " To err is human " तो उसका तात्पर्य यही है कि पूर्णता मनुष्य का ध्येय हो सकता है उसके जीवन का वस्तुगत्मक सत्य नहीं। उपन्यासकार जोला के कथनानुसार लेखक का कर्तव्य है कि वह किसी भी वस्तु का जब चित्रण करने बैठे तो उसका विश्वसनीय एवं ठीक ठीक, निष्पक्ष उपस्थित कर दे, भले ही वे कुरूप तथा जीवन के सम्बन्ध प्रिय क्यों न हों। जब वह मनुष्य की दुर्बलताओं तथा

---

1. POPE'S Moral Essays, 1 15, ff.

2. "In other words, Literature abhors the perfect man as anything beyond an object of contemplation ; Pope and Human Nature , Tillotson, P. 23.

रोगों और नैतिक कमजोरियों का चित्र उपस्थित करने लगे तो उसे चाहिए कि वह किसी भी अंश का चित्र खींचना न भूल जाए जिससे कि पाठक को उसकी चित्रोपमता में संदेह होने लगे।"

मानव प्रकृति की विशिष्टता और विचित्रता से प्रभावित होकर ही भरत-मुनि ने प्रकृति के अनुसार उन्हें तीन वर्गों में बाँटा है, १-उत्तम प्रकृति २-मध्यम प्रकृति और ३- अधम प्रकृति। प्रकृति से तात्पर्य है स्वभाव। मनुष्य के स्वभावानुसार ही ये भेद किए गए हैं। प्रकृति के अनुसार ही उसके आचरण होते हैं। उत्तम प्रकृति के मनुष्य जितेन्द्रिय अर्थात् सदाचारी, ज्ञानवान, अनेक शास्त्रों में कुशल, सबको प्रसन्न करने वाले, महालक्ष्मा(ऐश्वर्यशाली) दीनों को ढाढ़स बँधाने वाले, अनेक शास्त्रों का मर्म जानने वाले, गम्भीर, उदार, धीर और त्यागी होते हैं। मध्यम प्रकृति वाले पुरुष लोक व्यवहार में चतुर, शिल्पशास्त्र में प्रवीण, विज्ञान युक्त अर्थात् पहचान कर व्यवहार करने वाले और मधुर व्यवहार करने वाले होते हैं। इनके अतिरिक्त रूखा बोलने वाले, दूसरों से बुरा व्यवहार करने वाले, दुष्ट, मंदबुद्धि, क्रोधी, हिंसक, मित्रद्रोही, अनेक कौशल से प्राण लेने वाले, चबाई(चुगली खाने वाले) घमंडी, उद्दंड, कृतघ्न, आलसी, मान्य का अपमान करने करने में प्रवीण, स्त्रियों के पीछे फिरने वाले, झगड़ालू, दूसरों का दोष ढूँढने वाले, पापी तथा दूसरों का धन हरने वाले पुरुष अधम प्रकृति के होते हैं।[1]

१- अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रकृतीनां तु लक्षणम्
समासतस्तु प्रकृतिस्त्रिविधा परिकीर्तिता ॥१॥
पुरुषाणामथ स्त्रीणामुत्तमाधममध्यमा
जितेन्द्रिया ज्ञानवती नानाशिल्पविचक्षणा ॥२॥
दक्षिणाऽथ महालक्ष्या दीनानां परिसान्त्वनी
नाना शास्त्रार्थ सम्पन्ना गाम्भीर्यौदार्यशालिनी ॥३॥
धैर्य त्यागगुणोपेता ज्ञेया प्रकृतिरुत्तमा
लोकोपचार चतुरा शिल्पशास्त्र विशारदा ॥४॥
विज्ञान-माधुर्य युता मध्यमा प्रकृतिः स्मृता
रूक्षा वचसि दुःशीलाः कुसत्त्वाः स्थूलबुद्धिकाः ॥५॥
क्रोधना घातकाश्चैव मित्रघ्नाश्छिद्रमानिनः
पिशुना उद्धता वाक्यैरकृतज्ञास्तथालसाः ॥६॥
मान्या मानविशेषज्ञाः स्त्री लोलाः कलहप्रियाः ॥
सूचकाः पापकर्माणः परद्रव्यापहारिणः ॥७॥

भरतमुनि - नाट्यशास्त्र

यूरोपीय काव्यशास्त्र के आचार्य अरस्तू ने भी मानव प्रकृति को दो भागों में बाँटा है । एक अच्छे दूसरे बुरे । नैतिक दृष्टि से मनुष्य या तो उच्च श्रेणी के होंगे या नीच श्रेणी के । तुलसीदास ने भी सृष्टि को गुणअवगुणमयी लिखा है-
'सगुन छीर अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपंच बिधाता ।। '

सारी सृष्टि ही गुण और अवगुण के मेल से बनी है । प्रत्येक व्यक्ति अर्थात् इकाई में भी प्रकृति के ये दो रंग मिले रहते हैं । यह बात दूसरी है कि कभी एक रंग तेज हो जाए कभी दूसरा । यदि उज्ज्वल रंग प्रबल होता है तो मनुष्य श्रेष्ठ की कोटि में आ जाता है और उसका दोष भी कभी कभी गुणकारी सिद्ध होता है । संखिया विष है किन्तु परिमित मात्रा में स्वास्थ्य के लिए गुणकारी भी है । सभी उदात्त गुणों से सम्पन्न राम का कालानल के समान क्रोध भी वंद्य हो जाता है क्योंकि उसमें संहार के नहीं वरन् कल्याण के बीज निहित है । इसके अतिरिक्त कभी कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य की प्रकृति में उदात्त और अनुदात्त गुण समानान्तर चलते हैं । उसी मनुष्य का आचरण कभी तो बड़ा श्रेष्ठ,पवित्र,कोमल और सौन्दर्यपूर्ण होता है और वही मनुष्य किसी दूसरे क्षण क्रूर,छली,निष्ठुर और अनेक कुप्रवृत्तियों से युक्त दिखाई पड़ता है । बहुत से मनुष्य संस्कारतः मृदुभाषी और कोमल स्वभाव के होते हैं किन्तु कभी कभी वे अत्यधिक कठोर भी हो जाते हैं । कोई व्यक्ति किसी समय किसी से अच्छा व्यवहार करता है और किसी दूसरे समय कठोर बन जाता है । अतः किसी व्यक्ति का चरित्र उसके आकस्मिक कार्यों से नहीं आँका जा सकता । साधारण मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है,बहुत कम मनुष्य ऐसे होते हैं जो परिस्थितियों पर स्वामित्व कर पाते हैं और अपने गुण,चरित्र तथा मनोबल से परिस्थितियों को बदल सकने में समर्थ होते हैं ।

मानव चरित्र के आचरण में नीति और अनीति का निर्णय देश,काल और परिस्थिति के अनुसार किया जाता रहा है । एक ही कार्य एक समय में नीति समझा जाता है दूसरे समय में अनीति । जैसे यदि हमने किसी को छुरी चुभो दी तो वह कार्य अनैतिक होगा किन्तु यदि कोई डाक्टर दुःख दूर करने के लिए चीरफाड़ करता है तो वह कार्य अनैतिक नहीं होगा । अतः कोई कार्य स्वतः अच्छा बुरा नहीं होता बल्कि कार्य की भावना या उद्देश्य ही उसे अच्छा या बुरा निर्धारित करती है । मनुष्य के

चरित्र की परीक्षा उसके आचरण पर निर्भर करती है ।

प्रकृति और नीतिशास्त्र : सदाचार एवं दुराचार संबंधी अवधारणाएं

इसी स्थान पर आकर मानव प्रकृति का संबंध नीतिशास्त्र से जुड़ जाता है । मानव विवेक की स्वीकृति देकर उसे पशु से भिन्न मान कर सत्-असत्, उदात्त-अनुदात्त के स्वरूप निर्धारण और मापदंड स्थापित करने की चेष्टा प्रत्येक समुन्नत संस्कृति का लक्षण रही है । जब ई० बी० टायलर ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए कहा है 'संस्कृति अथवा सभ्यता वह जटिल इकाई है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, शील, विधि, रूढ़ि और किसी भी उस क्षमता तथा अभ्यास(आदत) का समावेश रहता है जो मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते, ग्रहण करता है'[1] तो मानव का वह अंश जो उसे पशु से अलग करता है, जो उसकी वृत्तियों का परिष्करण करके उसे समुन्नत बनाता है- वही उसकी दृष्टि में था । नीतिशास्त्र (Ethics) इसी चेष्टा की प्रवृत्ति का द्योतक है । यों तो अंग्रेजी के एथिक्स और मॉरल शब्दों के मूल इथोस और मॉरेस (क्रमशः ग्रीक और लैटिन) शब्दों से हुई । इथोस का अभिप्राय चरित्र से है और मॉरेस का संबंध रूढ़ियों से है । किन्तु रूढ़ियाँ ही वे तरीके होती हैं जो समाज और समुदाय द्वारा अनुमोदित हो जाती हैं और अपने समुदाय तथा वर्ग की रूढ़ि के विरुद्ध आचरण करने पर मनुष्य को कठोर भर्त्सना का पात्र बनना पड़ता है ।

संस्कृत नीति शब्द का मूल 'नी' धातु में है जिसकी भावना है मार्गप्रदर्शन। अर्थात् नीतिशास्त्र की धारणा मनुष्य के आचरण को दृष्टि में रखकर चलती है और उसे उचित तथा अनुचित का विवेक देकर श्रेय के पथ पर अग्रसर करने का ध्येय लेकर चलती है ।

६. नीतिशास्त्र मात्र मानव का वर्णनात्मक अध्ययन नहीं होता वरन् उसके आचरण के औचित्य और अनौचित्य के मापदंड को निर्धारित करता है । मनुष्य की विवेक शक्ति को मान्यता देने के कारण साधारण मनुष्य को अपने कर्म के लिए उत्तरदायी होता है-उसी के आचरण पर हम कोई नैतिक निर्णय देते हैं - पागल या बालक के आचरण को देखकर कोई भी निर्णय नहीं लिया जा सकता ।

१- गौरी शंकर भट्ट-भारतीय संस्कृति एक समाज शास्त्रीय समीक्षा पृ० ११

'नीतिशास्त्र मनुष्य की बौद्धिक मांग-शुभ क्या है - का विज्ञान है ।' [1] नीतिशास्त्र मनुष्य को कर्तव्य-अकर्तव्य,शुभ-अशुभ,उचित-अनुचित,सत्-असत् की शिक्षा देकर पाप-पुण्य का रूप प्रस्तुत कर देता है । नीतिशास्त्र मनुष्य को पशुत्व से उबारता है और देवत्व की ओर अग्रसर करता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । पशु और मनुष्य में जो अन्तर है वह सिर्फ विवेक-बुद्धि का है,नहीं तो भोजन,नींद,भय और मैथुन में चारों प्रवृत्तियाँ सब प्राणियों में समान रूप से पाई जाती हैं । [2] 'मनुष्य चिन्तन के परिणाम स्वरूप प्रत्येक कार्य सोच समझ कर करता है जब कि पशुओं के कर्म तर्कशून्य प्रवृत्तियों और तात्कालिक विवेकशून्य आवेगों के परिणाम होते हैं ।' 'हम केवल नैसर्गिक क्षुधा और इच्छा तथा ऐन्द्रियिक सम्वेदन और स्वभाव से युक्त प्राणी ही नहीं हैं , बल्कि हमारे भीतर एक तार्किक मनः शक्ति है जो इच्छा और स्वभाव से ऊँची है ।' [3] मनुष्य समाज ,व्यक्तियों के स्वार्थ की पारस्परिक पूर्ति पर निर्भर है और हर व्यक्ति की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ होती हैं जो दूसरे की आवश्यकताओं का कभी कभी बलिदान भी माँगती हैं तथा जो सेवाओं और वस्तुओं के आदान से प्रदान से ही संतुष्ट हो सकती हैं ।ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व और विचार की स्वतंत्रता, मूल्यता को भी पोषित नहीं करती । जहाँ जहाँ और जब जब में स्वतंत्रता सापेक्षता की उपेक्षा करती हैं वहाँ प्रायः अनौचित्य का उदय होता है , अथवा का विकास होता है । किसी काम की नैतिकता का निर्णय करने के लिए उचित पैमाना यह है कि वह काम दूसरों के सुख में कितना योग देता है अर्थात् अपने बजाय दूसरों को कितना लाभ पहुँचाता है । 'बेन्थम' तथा उसके शिष्य 'मिल' की दृष्टि विशेष रूप से इसी ओर केन्द्रित थी और इसीलिए मिल ने कहा कि " कोई भी संवेदनशील और अन्तर्दृष्टि वाला व्यक्ति स्वार्थी और कमीना नहीं बनना चाहेगा,भले ही उन्हें यह समझाने की चेष्टा की जाए कि मूर्ख,क्षुद्र तथा बदमाश व्यक्ति उनकी अपेक्षा अपने भाग्य से अधिक संतुष्ट रहता है "------ एक संतुष्ट सुअर से एक असंतुष्ट मानव

१- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ० १४

२- आहार निद्राभय मैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिःसमानाः । महाभारत शान्तिपर्व २९४, २९

३- जॉन डुई - अनु० कृष्णा चन्द्र - नैतिक जीवन का सिद्धान्त पृ० ४५

बने रहना कहीं बेहतर है ।"

मनुष्य का आचरण ही नैतिक अनैतिक कर्मों की कसौटी पर कसा जा सकता है । जब संकल्प शक्ति व्यक्ति के चरित्र के अनुरूप उसकी प्रबल इच्छा से समीकरण करके कार्य रूप में परिणत हो जाती है तब उसे आचरण कहते हैं । "वही कर्म नैतिक है जो उचित के बोध से किया गया हो अथवा नैतिक बाध्यतावश या कर्तव्य की चेतना से प्रेरित होकर किया गया हो ।"[1] जब मनुष्य की दुर्बलताएँ उसे अनैतिक मार्ग की ओर खींचती हैं तब नैतिक दृष्टि उसे दोषी ठहराती है । शुभ क्या है इसका उत्तर देते हुए भगवती बाबू ने चित्रलेखा उपन्यास में कहा है - "अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के लिए भी अच्छी हो ।"[2] इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नैतिक और शुभ का एक तट यदि व्यक्ति को छूता है तो दूसरा तट समाज को । किसी वृत्ति का असामाजिक होना ही उसके अनैतिक होने का प्रमाण है ।

"नीतिशास्त्र कर्तव्य का पथ दिखाता है और बताता है कि नैतिक प्रगति में ही जीवन की सार्थकता है । नीति शास्त्र पृथ्वी और स्वर्ग,वास्तविक जीवन और आदर्श जीवन में सामंजस्य स्थापित करके मनुष्य को अशोभन से शोभन की ओर , अशिव से शिव की ओर एवं अमानुषिकता से मानुषिकता अथवा मनुष्यत्व की ओर ले जाता है ।"[3]

"नीतिशास्त्र मानवता के उच्चतम आदर्शों का पोषक है । वह मनुष्य को बताता है कि वह श्रेष्ठ प्राणी है , उसे मानव गौरव के बोध से प्रेरित होकर कर्म करने चाहिये । इसी उद्देश्य से वह परम शुभ की खोज करता है । उसके कर्मों के औचित्य अनौचित्य को समझाने का व्यवस्थित प्रयास करता है ।"[4] अखिल समाज में

१- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ० ८८
२- भगवती चरण वर्मा-चित्रलेखा प्रथम परिच्छेद पृ० १६
३- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ० १६
४- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ०.७

अकेला नहीं है । व्यक्ति,व्यक्ति और व्यक्ति , समूह तथा समूह और समूह के बीच उत्पन्न होने वाले सामाजिक संबंधों के जाल पर ही समाज का निर्माण होता है । सामाजिक संबंधों में जहाँ रीतियाँ (यूसैज)अधिकार(Authority) पारस्परिक सहायता (Mutuality) स्वाधीनता (Liberties) तथा साहचर्य(Association) आदि के तत्व विद्यमान हैं वहाँ उनका दूसरा पहलू आदर्श नियमों (Norms) की परिकल्पना भी है। ये सामाजिक आदर्श ,नियम आदर्शों और मान्यताओं से संबंधित रहते हैं । ये एक ओर सामाजिक संबंधों के आदर्श को प्रतिपादित करते हैं तथा दूसरी ओर मानव व्यवहार को नियमित करते हैं । दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भी ये उनका संयमन और समाजीकरण करते हैं । उदाहरणतः हम देखते हैं विवाह प्रथा तथा परिवार संस्था मनुष्य की यौन प्रवृत्ति का नियमन है । इस प्रकार अपनी अमूर्त विचार क्षमता को लेकर मनुष्य समाजीकरण के स्तर पर अन्य प्राणियों की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित और सभ्य हैं ।

मैकेन्जी के अनुसार 'आचार के सत् और शुभ के अध्ययन के रूप में नीतिशास्त्र की परिभाषा दी जा सकती है । सत् व्यवहार वह होगा जो नियम के अनुसार हो ।'[१]

कांट के अनुसार नैतिक नियम स्वयं साध्य है , वे किसी और आदर्श के साधन नहीं है । ' वही कर्म नैतिक कर्म है जो शुभ प्रेरणा से किया गया हो । परिणाम से नैतिकता का कोई संबंध नहीं है । उसका कहना है कि धोखा देना पाप है । यदि किसी का जीवन उसके होने वाले हत्यारे को भी धोखा देकर बच सकता हो तो भी धोखा नहीं देना चाहिए ।'[२] प्रयोजनवादी नीतिशास्त्र मानव के परम आदर्श की खोज करता है । पाश्चात्य दार्शनिकों में बेंथम,मिल और हेनरीसिजविक इत्यादि प्रयोजनवादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं । उनके अनुसार किसी कार्य का अच्छा या बुरा होना उसके परिणाम पर निर्भर है । कर्म के अनुसार व्यक्ति का आचरण बनता है । हर काम में नैतिक महत्व और अर्थ की सम्भावना सन्निहित है । सामाजिकता और नैतिक आचरण का प्रश्न श्रेयस-सुख से भी संबंधित है ।

१- डा० रामनाथ शर्मा - नीतिशास्त्र की रूपरेखा पृ० ४

२- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ० २६४

स्वसुख और नैतिकता :

हैवलिट का कहना है कि "सुख वह है जो अपने आप में सुख हो । श्रेयस् वह है जो विचार करने पर अपने आप को सुख के रूप में अनुमोदित कर दे या जिसका विचार संतोष प्रदान करने वाला हो । इसलिए नैतिक दृष्टि से देखा जाए तो हरेक सुखोपभोग समान रूप से अच्छा नहीं है क्योंकि हरेक सुख विचार करने पर समान रूप से सुख प्रतीत नहीं होता ।"[1] जो वस्तु नैतिक दृष्टि से सही है और जो प्रकृत्या संतोष और तृप्ति प्रदान करने वाली है उन दोनों में अक्सर विरोध होता है । और नैतिक संघर्ष का मुख्य प्रयोजन यह होता है कि श्रेयस् को भी कर्तव्य के तकाजे के आगे समर्पित कर दिया जाए । तत्पात्र ऐसे ही संघर्षों की स्थिति के सजीव प्रतीक बन जाते हैं । दूसरे का धन अपहरण करके, अथवा किसी को अपमानित करके, अथवा अपनी कामतृप्ति के लिए दूसरे का शोषण करके जहाँ व्यक्ति एकान्त सुख की कल्पना करता है वहीं व्यापक श्रेयस् से संघर्ष उत्पन्न होता है । उत्कट लालसा तात्कालिक क्षण से आगे नहीं देखती, किन्तु विचार का स्वभाव यह है कि वह दूरस्थ उद्देश्य की ओर देखता है । नैतिक जीवन में इच्छा और तर्क के बीच सतत द्वंद्व चलता रहता है ऐसी स्थिति में अरस्तू और प्लेटो का समाधान यह है कि " नैतिक शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसे चरित्र का विकास करना है जो अच्छी बातों में सुख और बुरी बातों में दुःख का अनुभव करे । यों निरे आवेग और इच्छा अपने आप में बुराई नहीं होती किन्तु वे बुरे तब हो जाते हैं जब किसी दूसरी ऐसी इच्छा की तुलना में रखे जाते हैं जिसकी विषय वस्तु में अधिक व्यापक और अधिक स्थायी परिणाम निहित रहते हैं । दूरतर श्रेयस् को छोटे श्रेयस् के मुकाबले में स्थान देना नैतिक [illegible] है । इस की दृष्टि व्यक्तिगत और सीमित सुख के उद्देश्य को लेकर चलती हुई व्यापक और स्थायी श्रेयस् की उपेक्षा करती है । उसकी इच्छा और आवेग चिन्तन की उपेक्षा करते हैं और वह इच्छित वस्तुओं के त्याग नहीं अविनीत

१- जॉन डूई अनु० कृष्णचन्द्र - नैतिक जीवन का सिद्धान्त पृ० ३६-४०

२- जॉन डूई अनु० कृष्णचन्द्र - नैतिक जीवन का सिद्धान्त पृ० ५५

की ओर अग्रसर होता है । अनुभव हमें बताता है कि हर तृष्णा और लालसा की पूर्ति शुभ ही नहीं होती और नैतिकता के सिद्धान्त इसी तथ्य को लेकर चलते हैं कि प्रतीयमान के बजाय सच्चे श्रेयस् का सिद्धान्त निर्धारित करें, ऐसे उद्देश्यों को खोजें जिनसे निष्पक्ष और दूरदर्शिता पूर्ण विचार की माँगें पूरी हो सकें । नीतिशास्त्र की दृष्टि से दूरदर्शिता यह है कि अंतिम उद्देश्य पर विचार किया जाए, उसके मूल्य को आँका जाए तब इच्छा के द्वारा सुझाए गये मार्ग को अपनाया जाए । इस प्रकार किसी सुखोपभोग के नैतिक मूल्य का निर्णय करते हुए हम वास्तव में व्यक्ति के चरित्र और प्रवृत्ति पर ही निर्णय करते हैं । जार्ज इलियट ने अपने उपन्यास "रोमोला" में कहा है "वह सुख या आनन्द निकृष्ट किस्म का सुख है जो हमें अपने संकीर्ण सुखों की बहुत अधिक फिक्र करने से प्राप्त होता है । उच्चतम कोटि का वह सुख, जिससे आदमी महापुरुष बन सकता है, हम अपने और साथ ही शेष संसार के साथ सहानुभूति रखकर व्यापक और उदार विचार अपना कर ही प्राप्त कर सकते हैं । और इस प्रकार के कल्याणमय सुख के साथ इतना दुःख मिला होता है कि उस दुःख से ही, जिसे हम सबसे अधिक वरणीय समझते हैं, हमें उस सुख का पता चलता है, क्योंकि हमारी आत्माएं देख लेती हैं कि वह दुःख ही श्रेयस्कर है ।"[1] इस प्रकार नैतिक दृष्टि से कल्याणमय आनन्द या सुख सामान्य सुख और आनन्द से भिन्न वस्तु है । वह आत्मा की एक स्थिति है, चरित्र और आत्मा की एक तृप्ति है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बनी रहती है । मनुष्य के भीतर ऐसी शक्तियाँ वर्तमान हैं जिनका उपयोग स्थायी सम्बन्धों को उत्पन्न करता है तथा सुदृढ़ बनाता है । जो व्यक्ति इन शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाता वही प्रायः बौद्धिक और सौन्दर्यबोधात्मक स्रोतों के अभाव में ऐन्द्रिक वृत्तियों और तृष्णाओं के नियंत्रण में असमर्थ रह कर, उनका दास होकर, हमारी दृष्टि में लघुता की श्रेणी में पहुँच जाता है । वह कुछ ऐसे मूल्यों की जो अधिक माननीय और अधिक महत्त्वपूर्ण है उपेक्षा कर कुछ ऐसे मूल्यों में आस्था रखता है जो स्थूल और भौतिक रह जाते हैं । स्थूल और भौतिक सुखों के आकर्षण मनुष्य के विवेक

---

१ जान ड्यूई - नैतिक जीवन का सिद्धान्त पृ० ३४

और कार्य को गलत रास्ते पर डाल देते हैं । मन: शक्ति और विवेक के उद्बोधन के लिए नीतिशास्त्र में अभ्यास को महत्व दिया गया है जिससे आदत का निर्माण होता है । इस प्रकार नैतिक जीवन में कर्तव्य के बोध एवं नैतिक बाध्यता के बोध का प्रमुख स्थान है । निश्चित बाध्यताएं कर्तव्य की कोटि में आती हैं और अनिश्चित बाध्यताएं सहज सद्गुण की कोटि में । नीति के आचार्यों ने इसका बोध कराने के लिए प्राय: ही निषेधात्मक पद्धति को अपनाया है (झूठ मत बोलो, चोरी मत करो) जिससे सहज ही अकरणीय तथा अनुचित का भी बोध हो जाता है । वही बोध सत्ता का बोध हो जाता है । सद्गुण, चरित्र की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता के सूचक हैं तथा दुर्गुण, दुर्बलता और दोष के । चरित्र की भावात्मक नैतिक श्रेष्ठता पुण्य है और अभावात्मक नैतिक योग्यता पाप है ।

अनुभव से यह ज्ञात होता है कि यदि मानव समाज के अनुभव, कानूनों और प्रथाओं के रूप में मूर्त न हो तो व्यक्ति यह निर्णय नहीं कर सकते कि क्या अच्छा और श्रेयस्कर है । सांस्कृतिक परम्पराएं उसी का स्वरूप निर्धारित करती है । किन्तु नैतिक मापदंडों को स्थापित करने में देश काल सापेक्ष नियम, रीति-रिवाज और अभ्यास के साथ साथ सार्वभौम वस्तुगत सत्य की पूर्ति भी मान्य रही है । इसीलिए बुद्धि और अनुशीलन के साथ साथ आचरण की शुद्धता निश्चित करने के लिए अन्तर्बोध को भी विशेष स्थान दिया गया है, बल्कि यहाँ तक कहा गया है कि " नैतिक दृष्टि से बाह्य नियम और सूत्र नहीं हैं बल्कि आन्तरिक नियमों के ही प्रतिबिम्ब हैं । " [१] इसलिए देशकाल के अनुसार इसकी मान्यताएं बदल जाती हैं फिर भी किसी सीमा तक इनका एक युग और काल से अप्रतिबद्ध स्वरूप भी है । झूठ बोलना किसी को धोखा देना या हत्या करना जितना बुरा भारतीय दृष्टि से माना जाएगा उतना ही बुरा पाश्चात्य दृष्टि से भी । ईसाईमत में भी जो ७ महापातकों की परिकल्पना मिलती है उनमें अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध, पेटूपन, लालच, कामुकता आदि हैं ।

१- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ० १२६

भारतीय नैतिक अवधारणायें : पाप और पुण्य की परिकल्पना

भारत में पाप और पुण्य के प्रश्न को लेकर लेखक और चिन्तक सदैव जागरूक रहे हैं। अध्यात्म प्रधान भारतीय व्यक्ति के चरित्र को समुन्नत बनाने की चेष्टा आदि काल से होती रही है। स्वर्ग और नरक की परिकल्पना कर्मफल की भावना का आधार रही है। भारतीय संस्कृति सबसे पुरानी है, इसलिए नैतिक सिद्धान्तों की रूपरेखा विश्व संस्कृति की सापेक्षता में हमारे यहाँ बड़ी पुरानी है। भारतीय विचारधारा में सनातन मत को ही नीति का आधार माना गया है जैसे सत्य, अहिंसा, सदाचार, मर्यादा, धर्मपालन आदि नैतिक जीवन के आधार स्तम्भ हैं। हिन्दू धर्म में वर्णव्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण समाज में पूज्य समझा जाता था जब कि शूद्र यदि शिक्षित भी हो तो हेय दृष्टि से देखा जाता था। शूद्र के लिए वेद अध्ययन, मंदिर प्रवेश, उच्च कर्म वर्जित थे यदि वह ऐसा कार्य करता था तो उसे खल की कोटि रखा जाता था, उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था+ तथा वह राज्य की ओर से दंडित होता था। धर्म, समाज, न्याय और नैतिकता के विरुद्ध किया गया कर्म पाप है। भारतीय पंचमहापातक, उपपातक, कर्मफल, कानून, बदलते रहते हैं, अतएव आज जो अपराध है वही कल वैध मान्य हो सकती है। देश काल परिस्थिति के अनुसार धर्म अथवा पाप की मान्यता में परिवर्तन होते रहते हैं।

" पाप समाज के आचारों, धर्म संहिताओं, ईश्वरीय नियमों और देवताओं तथा धर्म के प्रति स्वीकृत कर्तव्यों का अतिक्रमण अथवा असदाचरण है जिसे अपराध पद विशेष द्वारा समझा जा सकता है क्योंकि पाप की अवस्थिति मूलतः अपराध भावना में ही है। यह क्रिया और आशय दोनों रूपों में व्यक्त हो सकती है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी अपराध पाप हों। जो आचरण जो कानून की दृष्टि से अपराध की कोटि में नहीं आते, और ऐसे कर्म जो सामाजिक नैतिकता और आचार की दृष्टि से असदाचरण नहीं है, वे धार्मिक दृष्टि से अवश्य पाप हो सकते हैं। वस्तुतः पाप शब्द विधिशास्त्र और आचारशास्त्र की अपेक्षा धर्म शास्त्र से अधिक संबंधित हैं। इस प्रकार यह विधिक "अपराध" और आचारगत "दुराचार" से भिन्न वह प्रवृत्ति और क्रिया है जिसके चलते ईश्वर का अस्तित्व या अनुशासन तिरस्कृत होता

है । वस्तु पाप केवल धर्म के वृत्त में ही अर्थ पूर्ण हैं । धर्म के इतिहास से स्पष्ट विदित होता है कि दैवी महत्ता के प्रति अपराध ही प्रायः पाप होते हैं ।" [1]

वेदों में ऋत और सत्य की परिकल्पना सत्यता,नैतिकता और नियम-बद्धता आदि पर आधारित है । नियमों के परिपालन द्वारा स्वर्ग प्राप्ति का उल्लेख मिलता है । (ऋतेनैव स्वर्गं लोकं गमयति १८।२।१९) ऋग्वेद के ऋषि पातक या अपराध के विषय में अत्यधिक सचेत पाये गये हैं और वे देवों से विशेषतः वरुण एवं आदित्यों से क्षमा याचना करते हैं और पातक के फल से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करते हैं । इस विषय में उनके ये शब्द-आगस्,एनस्,अघ,दुरित,दुष्कृत,द्रुग्ध और अंहस् आदि प्रयुक्त हैं । ऋग्वेद में वृजिन शब्द असाधु के लिए आया है । अनृत शब्द भी ऋग्वेद में आया है और वह घृणा के भाव से प्रयुक्त हुआ है । दुष्कृत्यों की गणना एवं उनकी कोटियों का निर्धारण भी प्राचीन काल से ही होता आया है । ऋग्वेद में सात मर्यादाओं का उल्लेख है जिसकी व्याख्या करते हुये निरुक्त ने ६।२७ स्तेय,(चोरी) तल्पारोहण,(गुरु की शय्या को अपवित्र करना) ब्रह्महत्या,भ्रूणहत्या,सुरापान, एक ही दुष्कृत को बारम्बार करना और अनृतोद्य का उल्लेख किया है । इसी के साथ साथ ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्योदय तक सोना,काले नाखून रखना, बड़ी बहन के अविवाहित रहते छोटी बहन का विवाह भी पाप कोटि में रखा गया है । धर्मसूत्रों में पापों की कोटियां निर्धारित करते हुये बड़े विस्तार से विचार किया गया । पतनीय और अशुचिकर पाप तो है ही और उनके अनुसार वशिष्ठ धर्मसूत्र में पांच महापातकों का वर्णन है जिनमें आते हैं - गुरु की शय्या को अपवित्र करना,सुरापान,भ्रूणहत्या,ब्राह्मण के सोने की चोरी और पतित से संसर्ग । उपपातकी वह है जो वैदिक अग्निहोत्र को छोड़ देते हैं, गुरु को कुपित करते हैं,नास्तिक के यहां जीविकोपार्जन करते हैं और सोमलता को बेचते हैं । बौधायनधर्मसूत्र ने उपपातकों की चर्चा करते हुये अगम्यागमन(वर्जित स्त्रियों के साथ सम्भोग) पण्यकरण ग्राम्याख्यान,रंगोपजीवन(अभिनय आदि से जीविकोपार्जन) नाट्याचार्यता,कन्यादूषण आदि की चर्चा की। कात्यायन ने दुष्कृत्यों को पांच कोटियों में बाँटा है - महापाप(प्राणहारी पाप) अतिपाप,पातक,प्रासंगिक पाप और उपपातक । [2]

१- हिन्दी विश्वकोश खंड ७

२- पी० वी० काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० १०२२

परम्परा से ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मण के सोने की चोरी, गुरुपत्नीगमन और पापी का संसर्ग महापातकों में परिगणित हुए हैं। उपपातकों की संख्या भिन्न भिन्न युगों में और स्मृतियों में भिन्न भिन्न रही है। इसमें प्रायः अग्नि-होम का त्याग, गुरु को कुपित करना, नास्तिक होना, ब्रह्मचर्य व्रत का खंडन, गोवध, चोरी, शुल्क के लिए वेदाध्ययन, नारीहत्या, निंदित धन पर जीविकोपार्जन आदि परिगणित हुए हैं इनकी सूची लम्बी है।

गौतम के अनुसार विहित कर्म न करना तथा निषिद्ध कर्म में प्रवृत्त होना पाप है (अकुर्वन् विहितं कर्म प्रतिषिद्धानि चाचरन्) श्रुति, स्मृति आदि ने जिन कार्यों का निषेध किया है उन्हें करना पापाचरण है (वेदादिशास्त्र निषिद्धं कर्मत्वम् पापत्वम्) इसी को याज्ञवल्क्य ने पातनीय कर्म कहा है। मनुस्मृति(११।४४) तथा महाभारत शान्तिपर्व(३४।२) में ऐसे कर्म को नरक में ले जाने वाले पातनीय कर्म तथा अधर्म की संज्ञा दी गई है। वेद, स्मृति द्वारा निषिद्ध कर्म को करने से अपूर्व या अदृष्ट उत्पन्न होता है, जो दुःख का जनक है और नरक अथवा अधोगति की ओर ले जाता है। जैसे ब्रह्महत्या करना पाप है इस शास्त्र निषिद्ध कार्य से उत्पन्न अदृष्ट संस्कार अथवा वासना रूप से आत्मा में स्थिर हो जाता है जो कालान्तर में अनेक जन्मों तक दुःख का कारण बनता है। इसलिए शास्त्र निषिद्धकर्मजन्यत्वं पापत्वम् पाप की यह भी परिभाषा की जाती है। वेदान्त, न्याय और मीमांसा से इसकी पुष्टि होती है। इस प्रकार धर्म के विपरीत (न कि धर्म भिन्न) शास्त्रनिषिद्ध कर्मजन्य अधर्म आत्मा के साथ स्थित रहकर जन्मान्तरों में दुःखदायी पाप रूप में प्रकट होता है (शास्त्र निषिद्धकर्मजन्यत्वे सत्यात्मवृत्त्यदृष्टत्वम् पापत्वम्)। अतीत काल से लेकर स्मृति पुराण काल तक पाप के रूपों और परिभाषाओं में क्रमशः परिवर्तन होता रहा है।[1]

हमारे यहाँ धर्म और अधर्म की रूपरेखा का आधार मुख्य रूप से पापकृत्य और ~~पुण्यकृत्य और~~ पुण्यकृत्य है। वाल्मीकीय रामायण में सत्य एवं पुण्य की व्याख्या की गई है -

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदा श्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।

1- हिन्दी विश्वकोश खंड ७

वेदा: सत्य प्रतिष्ठा नास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ।।[१]

जगत में सत्य ही ईश्वर है सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है । सत्य ही सब की जड़ है । सत्य से बढ़ कर दूसरी कोई उत्तम गति नहीं है ।

दान,यज्ञ,होम,तपस्या और वेद इन सब का आश्रय सत्य है , इसलिए सबको सत्यपरायण होना चाहिये ।[२]

महाभारत में कहा गया है कि कर्म नहीं वरन् कर्म की भावना ही भले बुरे कार्यों में प्रवृत्त करती है ।

गीता के अनुसार मनुष्य जो दु:ख भोगते हैं उसका एक मात्र कारण अज्ञान है । अपने ध्येय और कर्मपथ को समझने में असमर्थ होने के कारण वे भटकते रहते हैं । गीता का नैतिक सिद्धान्त निष्काम कर्म एवं कर्म फल त्याग है । इच्छा कर्म का अनिवार्य अंग है और वह स्वार्थी भावनाओं को जन्म देती है । स्वार्थ व्यक्ति के ज्ञान को भ्रम में डाल देता है उसे औचित्य के मार्ग से हटा देता है । वही कर्म शुभ होता है जो कर्तव्य की प्रेरणा से संचालित होकर, और परिणाम की ओर से तटस्थ हो । ईश्वर सभी प्राणियों में निवास करता है । सर्वभूतों के हित के लिए कर्म करना चाहिए । लोकमंगल का भाव ही गीता का मूल आधार है । "शम,दम, तप,सत्य,अहिंसा,दान,दृढ़संकल्प,करुणा,संतोष,मित्रता,विश्वप्रेम आत्मोन्नति में सहायक है और हिंसा अहंकार,राग,द्वेष,घृणा,लोभ,मोह,आत्मश्लाघा आदि आत्मविनाशक हैं ।"[३]

गीता में भगवान कृष्ण ने धर्म के २६ लक्षण बतलाये हैं :-

अभयं सत्वसं शुद्धि ज्ञानि योग व्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।
अहिंसा सत्यम क्रोधस्त्याग:शांतिर पैशुनम् ।
दया भूतेष्वलो लुप्त्वं मार्दवं ही रचापलम् ।।

१- वाल्मीकि रामायण - अयोध्याकांड १०९।१३।१४

२- कल्याण - हिन्दु संस्कृति अंक पृ० २१

३- शान्ति जोशी - नीतिशास्त्र पृ ५५६

तेज: क्षमा धृति: शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवंति संपदं दैवी मभि जातस्य भारत ॥ १

गीता कर्मवाद को मानती है उसके अनुसार पूर्व जन्म के संस्कार वर्तमान जीवन को निर्धारित करते हैं । पूर्व जन्म के कर्मानुसार ही मनुष्य विशिष्ट जाति और कुल के वातावरण में जन्म लेता है तथा दु:ख सुख पाता है । अविकसित बुद्धि आवेगजन्य प्रवृत्ति तथा स्वार्थान्ध होने के कारण मनुष्य की नैतिक बुद्धि मंद पड़ जाती है । वे कर्म के औचित्य अनौचित्य पर विचार नहीं करते । जैन और बौद्ध धर्मों ने भी सदाचरण को सबसे अधिक महत्व दिया । "खंति" (अर्थात क्षमा) "सील" (शील) "पञ्ञा" (प्रज्ञा) "मेत्ता" (मैत्री) "सच्च" (सत्य) "विरिय" (वीर्य) बोधिसत्व के आदर्श गुण माने जाते थे । इस प्रकार आचार: परमोधर्म: की अवधारणा भारतीय आचारशास्त्र की आत्मा रही ।

भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म की अखण्ड परम्परा को स्वीकार करते हुए गाँधी ने माना सदाचार ही सत्य की नैतिक तथा व्यावहारिक सत्ता है । इसके द्वारा ही व्यक्ति अन्याय और अधर्म से दूर हो सकते हैं । पाप से घृणा करना उचित है पापी से नहीं । राग-द्वेष,क्रोध,मोह,लोभ और घृणा आदि मन के विकार अधर्म हैं इसलिए इनसे दूर रहना चाहिए । दूसरे का अहित करना,सोचना या देखना पाप है ।

इस प्रकार शुभ कर्म के महत्व और लक्ष्य से ही मनुष्य के आचार का स्वरूप निर्धारित होता है । उसका आचरण प्रमाणित करता है कि वह दुष्ट है । आचरण में कौन से कार्य पाप है कौन से पुण्य यह सिद्ध होने पर ही चरित्र का स्वरूप निर्धारित होता है ।

हिन्दू धर्म में पाप और पुण्य के कुछ नैतिक आधार है जिनके बल पर हम पाप तथा पुण्य को निश्चय करते हैं जैसे - १ तनमन तथा इंद्रियों को प्राकृत ढंग से भीतर बाहर से पवित्र रखते हुए अपने वश में करके शुभ पूर्वक सत्कार्यों में लगाना; २-निरन्तर परोपकार करना ३- जीवों पर दया करना और यथाशक्ति सत्पात्र को दान देना आदि पुण्य हैं । दुष्ट मन तथा इन्द्रियों को मलिन करना और अपने वश

१- गीता १६।१-३

से बाहर होने देना तथा असंतोष को बढ़ाना, झूठ, चोरी और लूट आदि करना हिंसा करना पाप है ।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि जिस कार्य या परिणाम से अपने को या दूसरे को सुख मिले वह पुण्य है और जिस कार्य या विचार से दूसरे को तथा अपने को कष्ट हो संघर्ष बढ़े वह पाप है । [१]

सत्-असत्, पाप-पुण्य के बारे में भारत में उपनिषद, गीता और संसार के आचार्यों तथा संतों ने लगभग एक ही प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं । गीता में दैवी सम्पत्ति एवं आसुरी सम्पत्ति को ही क्रमशः पुण्य और पाप की संज्ञा प्रदान की गई है ।" तुलसीदास, एकनाथ, रामदास सभी संत महात्माओं ने संत असंत की या सज्जन-दुर्जन की विशद व्याख्याएं की है । सज्जन का प्रधान लक्षण है दूसरों के सुख-दुःख का पहले ख्याल करना, दुर्जन का प्रधान लक्षण है अपनी स्वार्थ सिद्धि सबसे पहले एकमात्र करना - दूसरों को दुःखी अपमानित शोषित करके भी खदेड़ के भी ।" [२]

कर्तव्य कर्म ही धर्म है । जो धर्म संगत है वही सत् है । सत् का फल शुभ है । शुभहित है अकर्तव्य अधर्म है, अधर्म असत् है । असत् का ~~फल~~ फल अशुभ है । अशुभ अहित है ।

गोखले के अनुसार हिन्दू जीवन धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की धारणाओं से ओत-प्रोत है यहां तक कि हिन्दू मान्यताओं में यह माना जाता है कि इतिहास भी उस भूतकाल का वर्णन है जिसमें जीवन के चार आदर्शों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पूर्ति तथा प्राप्ति का प्रयास निहित रहता है । लेकिन इन चारों धारणाओं में केवल धर्म की ही धारणा ऐसी है जो भारतीय विचार धारा में युग युग से चली आ रही है और जिसके द्वारा एक बड़े जन समूह में एक निश्चित विचार तथा व्यवहार कलाप का निर्माण हुआ ।" [३] धर्म एक ओर मानव की सम्पूर्ण नैतिक क्रियाओं की

१- कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक पृ० १०८

२- कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक पृ० १०६

३- गोखले - बी० जी० इण्डियन थाट थ्रू दि एजेज पृ० २४

विधि है और दूसरी ओर एक प्रकार का वह शीशा है जिसमें मानव की सभी नैतिक क्रियायें प्रतिबिम्बित होती हैं । धर्म में मनुष्य जीवन के इहलौकिक और पारलौकिक जीवन को निरूपित करने का प्रयास किया जाता है । धर्म का संबंध मानव की आवश्यकताओं तथा समस्याओं से है । मानव जीवन की आवश्यकताओं का स्रोत एक ही है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति बहुमुखी होती है । धर्म की धारणा वस्तुत: एक बहुदलीय पुष्प के समान है । जिस प्रकार बहुदलीय पुष्प अनेक पंखुड़ियों में बटें होने पर भी अपनी सुगठित एकता कायम रखता है उसी प्रकार धर्म भी मानव जीवन की शारीरिक , मानसिक,सामाजिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं को एक सिद्धान्त में समेटे हुये है । [१]

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार क्षमा,सत्य,दान,अहिंसा,दया आदि धर्म के लक्षण हैं । मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं ।

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह:
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।। [२]

इसी तरह महापुराण में भी धर्म के आधार को उपस्थित किया गया है :-

धर्मस्य तस्य लिङ्गानि दम: क्षान्तिर विक्रया ।
तपोदान च शीलं च योगो वैराग्यमेव च ।।
अहिंसा सत्यवादित्वम चौर्यं त्यक्त कामता ।
निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्म सनातन ।। [३]

धर्म की स्पष्ट की व्याख्या करते हुये प्रभु ने लिखा है" धर्म निश्चय ही वह सिद्धान्त है जिसमें सारे ब्रह्माण्ड को सुरक्षित रखने की क्षमता है ।" [४] पं० श्री गोविन्द नारायण जी आसोपा ने कल्याण के हिन्दू संस्कृति अंक में धर्म की व्युत्पत्ति

१- गौरी शंकर भट्ट - भारतीय संस्कृति एक समाज शास्त्रीय समीक्षा पृ० ६१
२- मनुस्मृति - ६।९२
३- महापुराण - ६।२०-२३
४- प्रभु पी० एच० - हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन पृ० ७६

को बताते हुए कहते हैं - " धर्म आचार या सदाचार से उत्पन्न होता है । "[१] वैशेषिक दर्शन के रचयिता पूज्यपाद महर्षि कणाद धर्म के लक्षण बताते हुये कहते है जिससे इस लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो, वह धर्म है । "यतोऽभ्युदयनि: श्रेयससिद्धि: स धर्मः " [२] धर्म मानव जीवन की रक्षा का कवच है ।" [३]

इस प्रकार मनुष्य में क्षमा, सत्य, दान, अहिंसा, दया आदि गुणों का समन्वय सत् है इसके विपरीत गुणों का समन्वय अधर्म है, असत् है । स्वधर्म ही सबसे श्रेष्ठ है । स्वधर्म का आधार व्यक्ति और समाज है । भागवत पुराण के आधार पर प्रभु ने अधर्म के पाँच भेद बताये हैं जो इस प्रकार हैं - विधर्म, परधर्म, धर्माभास, उपधर्म और छलधर्म ।"[४] जो स्वधर्म के प्रतिकूल है वही विधर्म है , जो धर्म अपने लिए न होकर दूसरे के लिए हो वह परधर्म है । जो व्यक्ति, देश, काल तथा वर्णाश्रम व्यवस्था की मर्यादाओं का ध्यान न रखते हुये अपनी व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति करें वह धर्माभास है । जो निरूपित आधार के विरोधी, पाखण्ड और दम्भ से युक्त हो वह उपधर्म है जो सत्य पर आधारित न होकर असत्य पर आधारित हो वह छल धर्म कहा जाता है । कल्याण के " हिन्दू संस्कृति अंक " में धर्म के लक्षण और रहस्य की व्याख्या करते हुये श्री गोविन्द नारायण आसोपा ने अधर्म के पांच प्रकारों में कुधर्म की धारणा भी जोड़ दी है । उसका अर्थ - कुत्सित: धर्म कुधर्म: अर्थात जो धर्म निंदा के योग्य हो वह कुधर्म है । कुधर्म पापाचरण या बुरे आचरण को कहते हैं । कुधर्म का एक अन्य अर्थ होता है जैसे - जो अन्य धर्म में बाधा दे वह कुधर्म कहलाता है ।[५] इस प्रकार अधर्म के छ: ६ प्रकार हुये ।

१- कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक पृ० ३०२ (आचार प्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युत:)
२- कल्याण - ,, ,, ,, पृ० ३००
३- गौरी शंकर भट्ट - भारतीय संस्कृति एक समाज शास्त्रीय समीक्षा पृ० ६८
४- प्रभु पी० एच०-हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन पृ० २८
५- कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक पृ० ३००-०१
(धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्म: कुधर्म तत्)

धर्म व अधर्म की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि जो शास्त्र विहित, देश काल तथा समाज की मर्यादाओं के अनुकूल हो वह धर्म है । प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने, जो शाश्वत् धर्म के स्वरूप की स्थापना की है । वे ही शाश्वत् धर्म है क्योंकि यह सनातन नित्य और स्थायी है । शाश्वत् वही है जिसकी उपादेयता, महत्व एवं आवश्यकता कभी नष्ट नहीं होती । देशकाल एवं परिस्थिति से शाश्वत् धर्म कभी भी प्रभावित और परिवर्तित नहीं होता । परिस्थिति क्षमा, अहिंसा आदि धर्म के विपरीत आचरण के लिए बाध्य कर सकती है परन्तु इससे शाश्वत् धर्म की आत्मा का हनन नहीं होता । क्योंकि वहाँ कर्तव्य वश ही किसी धर्म का त्याग होता है । अब कर्तव्य के पालन में ही धर्म है । धर्म के जो शाश्वत् लक्षण है उनकी भावना में हित निहित है । अत: जब शाश्वत् धर्म के प्रतिकूल आचरण में भी समष्टि लाभ की भावना ही रहती है तो उसका आदर ही होता है न कि निरादर ।

शाश्वत् धर्म में यदि कोई विश्वास नहीं करता तो इससे न तो उसके रूप का ही नाश होता है और न उसका महत्व ही कम होता है । धर्म का लक्ष्य लोक जीवन में सुख की पुष्टि है मंगल कल्याण दया अहिंसा आदि । धर्म का त्याग कर सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती । शाश्वत् धर्म को अस्वीकार करने वाले का लक्ष्य भी सुख ही होता है किन्तु वह व्यक्ति निष्ठ रहकर अपने व्यापक और समष्टिगत अर्थ को खो बैठता है । किसी अवसर पर शाश्वत् धर्म के त्याग से कोई स्वार्थ भले ही सिद्ध हो जाये परन्तु स्थायी सुख जो मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है उसकी प्राप्ति नहीं होती ।

परिवर्तन शाश्वत् धर्म में नहीं होता और न उसकी मान्यता में कोई अन्तर । परिवर्तन होता है परिस्थितिवश राज्य अथवा समाज द्वारा प्रतिपादित धर्म श्रेणी में । वे नियम रीति-प्रथा और विश्वास के रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित रहते हैं । इन पर देश काल, परिस्थिति का प्रभाव पड़ सकता है और इनकी मान्यता में परिवर्तन, किंतु सत्य शाश्वत् धर्म से किसी काल अथवा युग में इस सत्य के स्थान पर असत् का प्रतिपादन कदापि नहीं कर सकते हैं ।

इस प्रकार धर्म और अधर्म का विभाजन करके भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय किया गया है । हमारे यहाँ धर्म का अर्थ ही कर्तव्य है । इस विभाजन के फलस्वरूप सत्कर्म-असत्कर्म पाप और पुण्य की

रेखाएं बनाई गई । इन रेखाओं को बनाते हुए मानव का व्यक्तित्व उसका अन्तर्भाव चिन्तकों की दृष्टि से ओझल नहीं था । मानव का मन ही वास्तव में उसके सत् और असत् उद्देश्यों का केन्द्र है ।

हमारे यहाँ एक ओर जिस प्रकार सत्य,अहिंसा,अस्तेय,अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को सदाचार के प्रमुख पाँच मापदंडों के रूप में स्वीकार किया गया,उसी प्रकार दूसरी ओर काम,क्रोध,मोह,लोभ,मद एवं मत्सर में मनुष्य के निम्न और क्षुद्र विकारों को समीकृत किया गया है । ये पंच विकार ही उसके पापाचार या कदाचार के मूल स्रोत माने गए हैं । तुलसी ने बड़े विस्तार से इन्हें अविद्या माया के परिवार में रखते हुए यही स्पष्ट किया है कि ये मनुष्य की चरित्रगत हीनताएँ हैं । [1]

१- चौ० - मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।।

दोहा- ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ।।

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ।।

चौ०- गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ।
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा।ममता केहि कर जस न नसावा।।

मच्छर काहि कलंक न लावा ।काहि न सोक समीर डोलावा ।
चिंता साँपिनि को नहिं खाया।को जग जाहि न ब्यापी माया।।

कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।
सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।

यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमिति को बरनै पारा ।
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे माहीं ।।

टीकाकार-हनुमान प्रसाद पोद्दार- रामचरित मानस उत्तरकाण्ड

षट मनोविकार ही मनुष्य को पतन की ओर अग्रसर करते हैं । काम, क्रोध,मद,लोभ,मोह एवं मत्सर मनुष्य प्रकृति के गुण माने गये हैं और ये स्वाभाविक हैं । ये मन के विकार हैं । नियंत्रित अवस्था में इनका रूप सृजनात्मक,मंगलकारी एवं शुभ होता है । अनियंत्रित मन में इनका रूप ध्वंसात्मक,अहितकर एवं पतनशील होता है । ये मनोविकार मानव को देव भी बनाते हैं और दानव भी -सत् भी असत् भी । अपने सत् रूप में राम का क्रोध काम,सृष्टि और कला का मूल है ।

क्रोध पर-अहित एवं हत्या का कारण होता है । हत्या मनुष्य को खल भी ठहराती है और सज्जन भी । कर्म में निहित भावना,कर्म का उद्देश्य एवं कर्म का औचित्य ही निश्चित करता है कि वह सत् है अथवा असत् । पादरी बेलबी पोरटियस का भी मत है- " एक हत्या मनुष्य को खल बनाती है,करोड़ों उसे वीर । संख्या अपराध को पवित्र कर देती है ।"[1] स्पष्ट है करोड़ों हत्यायें न तो राष्ट्र हित में है,व्यक्ति न तो समाज के हित में । कोई भी मनोविकार खलता की भूमि उसी अवस्था में बनता है जब उसमें स्वार्थपरता , आसक्ति एवं अपकार की गंध हो ।

काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद एवं मत्सर अनेक दोष उत्पन्न कर अपराध की सम्भावनाओं को उपस्थित कर देते हैं । ये मनोविकार अनेक रूप धारण कर मानव चरित्र में निहित देवत्व का स्खलन करते हैं ।

प्रत्येक विकार मन में समान भावनाओं को उत्पन्न करता है - ईर्ष्या, घृणा,स्पर्धा,वैमनस्य,द्रोह,प्रभुत्व आदि । फिर भी यह समझना आवश्यक है कि ये विकार पृथक पृथक किस प्रकार मनुष्य को खल बनाने के उत्तरदायी हैं ।

---

1. "One murder makes the villain. Millions a hero; number sanctifies the crime." (Beilby Porteus)

(A Cyclopedia of Quotation)

काम :

भारतीय विचार परम्परा में काम की गणना एक ओर तो पुरुषार्थ चतुष्टय में है - धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष, दूसरी ओर पंच विकारों में उसका स्थान है। अर्थ और काम को इहलौकिक जीवन का आधारभूत साधन माना गया है किन्तु साथ ही काम को निम्नतम पुरुषार्थ मान कर त्यागने की प्रेरणा दी गई है। काम, आध्यात्मिक मुक्ति की प्रक्रिया में योग तभी दे सकता है जब वह धर्म प्राण हो, धर्मोन्मुख हो।

आप्टे ने काम शब्द के अर्थ दिए हैं अभिलाषा,इच्छा (एषणा), अभिलाषा - पात्र , अनुराग तथा प्रेम, इन्द्रिय,-उपभोग के प्रति अभिलाषा या लगाव , जिसे चार पुरुषार्थों में से एक माना गया है , सम्भोग-सन्तुष्टि की अभिलाषा, दैहिक ऐन्द्रियता, कामदेव , रेतस, एक प्रकार का आम का पेड़। इन सभी अर्थों के सारांश के रूप में काम से तात्पर्य निकलता है इन्द्रिय - सन्तुष्टि की अभिलाषा से। इन्द्रियाँ हैं दस - कान,त्वचा,चक्षु(आँख),जिह्वा,नासिका,पायु (गुदा), उपस्थ(जननेन्द्रिय) हस्त(हाथ),पाद(पैर) तथा वाक् वाणी। इनमें पहली पांच ज्ञानेन्द्रिय(बुद्धीन्द्रिय) कही गयी हैं और शेष कर्मेन्द्रिय,क्योंकि पहली पाँच इन्द्रियों द्वारा जीव को प्रतिबोध होता है अर्थात् उसे अपने पर्यावरण का ज्ञान होता है और शेष इन्द्रियों द्वारा जीव कर्मरत रहता है। किसी किसी ने "मन "को भी एक इन्द्रिय माना है और मन को इन्द्रिय मान लेने से इन्द्रियों की संख्या ग्यारह हो जाती है। लेकिन अधिकतर मान्यता इसी पक्ष में है कि मन इन्द्रियों का राजा है। इन्द्रियों से जीव की दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। दैहिक आवश्यकता के उत्पन्न होने पर,जीव में जो शक्ति प्रवाहित होती है और उससे जो तनाव उत्पन्न होता है उसका निरसन इन्द्रियों द्वारा ही होता है तनाव के निरसन से जो तुष्टि की अवस्था आती है उससे सुख का अनुभव होता है। एक ओर इन्द्रियों का संबंध शरीर से है और दूसरी ओर मन अथवा मानसिक प्रक्रिया से है। इसी कारण,इन्द्रियों तथा उनकी स्वाभाविक क्रिया को शारीरिक तथा मानसिक सुख का आधार माना गया है। इसी दृष्टिकोण से , साधारणतः, काम का तात्पर्य सुख से लिया जाता

है। एक अन्य अर्थ में काम से सम्भोग-एषणा या सम्भोग का अर्थ लिया जाता है किन्तु यह दृष्टिकोण एकांगी है।"[1] सुख का एक रूप शरीरी है दूसरा मानसिक। काम जब पुरुषार्थ की श्रेणी से निकलित होकर दैहिक आवश्यकता की पूर्ति मात्र रह जाता है तब वह सुख शरीर की सीमाओं में सीमित रह कर श्रेय का साधन नहीं रह पाता। हिन्दू विचार में शरीरी सुख का महत्व वहीं तक है जहां तक वह आध्यात्मिक मार्ग की सीढ़ी होता है इसलिए धर्म को काम की कसौटी माना गया है। कौटिल्य ने इसी दृष्टि से काम को वांछनीय माना है न कि काम लोलुपता को। कौटिल्य के अनुसार कामलोलुपता अपयश और धनहीनता की ओर ले जाती है- काम लोलुपता के ही कारण व्यक्ति चोरों, नर्तकों और अवांछनीय पुरुषों की बीच संगति में पड़ता है।[2] हिन्दू विचार में काम वांछनीय तथा आवश्यक भी है जहाँ तक वह परिवार तथा समाज का धर्म सम्मत संचालन भी करता है। किन्तु काम मनुष्य का शत्रु भी है उसकी गणना मनुष्य के ६ शत्रुओं में है। मनु द्वारा प्रस्तुत धर्म की व्याख्या से स्पष्ट है कि इनका परित्याग धर्म साधना का लक्ष्य है।

काम के केन्द्र में नारी है और स्त्री पुरुष संबंध की सुदीर्घ व्याख्या हिन्दू विचार धारा में हुई है। नारी एक ओर पत्नी है गृहस्था जीवन का केन्द्र, सन्तान की जननी, अर्द्धांगिनी, सुन्दरी और वह प्रेमिका है। इहलौकिक प्रेमिका अथवा गणिका है। हिन्दू विचार धारा में पत्नी और प्रेमिका अलग अलग रही हैं। इसीलिए उसे जहाँ एक ओर माता और जननी कह कर मान दिया गया वहीं उसे सुन्दरी और नरक का द्वार भी कहा गया है। धर्मशास्त्रों के अनुसार गणिका की हत्या करने वाला पाप का भागी नहीं होता, और उसकी गवाही भी अन्याय मानी गई है।

१- गौरी शंकर भट्ट - भारतीय संस्कृति एक समाज शास्त्रीय समीक्षा पृ०१२७-२८

२- डी० डी० कौशाम्बी - इण्डियन पाथ थ्रू दि एजेज पृ० ७६

इस प्रकार हिन्दू विचार में काम का समाधीकरण और संयमन करने की विशेष प्रवृत्ति पाई जाती है । "विषयासक्ति से उत्पन्न सुख की अनुभूति वैसी ही है जैसी हड्डी चबाने वाले कुत्ते के मुँह से निकलने वाले खून के स्वाद से कुत्ते को होती है ।

भारतीय चिन्तकों ने काम के सृजनात्मक पक्ष की ओर ही अधिक ध्यान दिया है पर इसका विध्वंसात्मक रूप भी है । अनियंत्रित अवस्था में काम मनुष्य के पतन का कारण बनता है । काम इन्द्रियासक्ति उत्पन्न करता है । यह मनुष्य को इन्द्रिय लोलुप बना देता है । ऐन्द्रिय सुखों को भोगने के लिए उत्तेजित करता है । विषय भोग की लालसा नैतिकता का अपहरण कर मनुष्य को व्यभिचारी बना देती है । काम सतीत्व हरण का अपराधी होता है । किसी निर्दोष के माथे पर कलंक एवं कलुष का टीका लगाकर वह न केवल उसकी पवित्रता को नष्ट करता है वरन् उसकी प्रतिष्ठा की भी हानि करता है । उसका कलंक समाज की दृष्टि में उसे हेय बना देता है ।

महाभारत तथा गीता में भी काम के विनाशात्मक रूप का वर्णन मिलता है । गीता में लिखा है -

ध्यायतो विषयान् पुंस: सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात् संजायते काम: कामात् क्रोधोऽभिजायते ।। [१]

प्रथमत: विषय चिन्ता करते करते उसमें आसक्ति उत्पन्न होती है फिर उसी विषय में काम अर्थात् तृष्णा का बल बढ़ता है। उसके पीछे वही काम किसी कारण प्रतिहत् होने पर क्रोध बन जाता है ।

इसी काम के संबंध पर भगवद् गीता के शंकर भाष्य में भी कहा है -" जो शुद्ध होकर भी समस्त प्राणि वर्ग को स्ववश में रख सकता, उसी का नाम काम पड़ता है । काम ही सब अनर्थों का मूल है । वही किसी कारण से प्रतिहत होने पर क्रोध रूप में परिवर्तित हो प्राणियों को कर्तव्याकर्तव्य विषय में

१- गीता । २ । ६२

विचार हीन बनाता है । उस समय वह पापाचारी हो जाते हैं इसलिए प्राणीमात्र को उस विषय में यत्न करना चाहिये जिसमें दुरात्मा काम चित्त से दूर रहे ।"[१]

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध को महाभक्षी एवं महापापी निर्दिष्ट करके इन वैरियों का विनाश करने के लिए कहा है । काम की अग्नि अत्यन्त कठिनाई से शान्त हो सकती है । इस अग्नि से विद्वान पुरुष का ज्ञान उसी प्रकार ढका रह सकता है जिस प्रकार से गर्भ आवृत रहता है । आत्मा का विनाश करने वाला काम, क्रोध और लोभ तीनों नरक के द्वार हैं । इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए ।[२]

मनु ने भी यही कहा है -

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।"[३]

जो अर्थ और काम धर्म के विरुद्ध हो उनका त्याग कर देना चाहिए ।

कामुकता की अति एवं असामाजिकता मानवीय नहीं पाशविक गुण है । काम पिपासा की शांति के लिए पशु काल में स्थान और काल के विचार से बाधित नहीं है । बलात्कार उनके लिए दंडनीय नहीं है । विवेक से परिपूर्ण होने के कारण मनुष्य इस विषय में पूर्ण स्वतंत्र नहीं है । मनुष्य इस वृत्ति को नियंत्रित संतुलित

१- हिन्दी विश्व कोष - भाग ४

२- काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
   महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।
   धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च
   यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।
   आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
   कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।
   त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
   कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।   गीता ३।३७-३९ तथा १६।२१

३- मनुस्मृति - ४।१७६

कर उसका उदात्तीकरण करता है जहाँ वह उससे नीचे गिरा वह पशु की कोटि में आ जाता है । स्त्री-पुरुष के संबंधों में कुछ विशिष्ट बंधनों (विवाह) का विधान किया गया है । उनका उल्लंघन करने वाला खल की श्रेणी में आ जाता है । आत्मिक धार्मिक और सामाजिक बंधन मानवता की मर्यादा तथा उसके बोध को स्थिर रखते हैं ।

रोमन दार्शनिक सेनेका का मत है "यदि कामुकता आनन्द होता तो पशु भी मनुष्य से अधिक सुखी होते परन्तु मानव सुख आत्मा में निवास करता है न कि शरीर में ।"[1]

क्रोध :

बाल्टे की डिक्शनरी में क्रोध के दो अर्थ हैं कोप और गुस्सा - कामात्क्रोधोऽभिजायते । दूसरे क्रोध एक प्रकार की भावना है जिससे रौद्ररस का उदय होता है । हिन्दी विश्व कोश में क्रोध के शाब्दिक अर्थ हैं रोष,कोप,गुस्सा,दाह । कोई प्रतिकूल घटना उपस्थित होने पर तीक्ष्णता के प्रादुर्भाव-जैसी किसी चित्तवृत्ति का नाम क्रोध है। गीता में भी कहा गया है - किसी कारण से पूर्ण न होने वाली अभिलाषा ही क्रोध रूप में परिणत होती है । क्रोध रजोगुण है । प्रथम बहुव्यय वासना से अभिलाषा उठती है । किसी काम से अभिलाषा पूर्ण न होने पर क्रोध रूप में परिणत होता है। क्रोधान्ध व्यक्ति कुछ यथोचित दूसरा कोई कार्य कर नहीं सकता । क्रोधी व्यक्ति अंधे और बहरे की भाँति देखते सुनते भी अचेतन की तरह कोई भी कर्तव्य स्थिर करने में असमर्थ होता है । हितोपदेश उसके कान में पहुँच नहीं सकता । क्रोध से सम्मोह होता है । मोह होने से स्मृति बिगड़ जाती है । स्मृति नाश से बुद्धि नष्ट होती है ।

---

1. "If sensuality were happiness, beasts were happier than men; but human falicity is lodged in the soul, not in the flesh." (Seneca) A Cyclopedia of Quotation .

बुद्धि नाश होने से विनाश होता है ।"[1] सभी के लिए क्रोध का त्याग करना उचित है । क्रोध परित्याग करने का प्रधान उपाय क्षमा ही है ।

क्रोध का संस्कृत पर्याय - कोप, अमर्ष, रोष, प्रतिघ: रुट क्रुधु आमर्ष भीम और रुष्णा है ।[2]

पुराणों के मत में सर्वप्रथम ब्रह्मा के भ्रू से क्रोध निकला है । शरीर मध्यस्थित दुष्ट रिपुओं के अन्तर्गत यह भी एक रिपु है । "रुद्र के अंश में तमोगुण से प्रजा संहार व सृष्टि विनाश के लिए ही क्रोध का जन्म हुआ ।"[3]

मानवीय व्यवहार में जब हम क्रोध का विश्लेषण करते हैं तो हम पाते हैं कि बहुधा क्रोध प्रतिकार के रूप में प्रगट होता है । कार्य कारण के सम्बन्ध ज्ञान में त्रुटियां भूल होने पर क्रोध उत्पन्न होता है । क्रोधी मनुष्य दुःख पहुँचाने वाले व्यक्ति के अमंगल की कामना करता है ।

" क्रोध की उग्र चेष्टाओं का लक्ष्य हानि या पीड़ा पहुँचाने के पहले आलम्बन में भय का संचार करना रहता है ।"[4] क्रोध में मनुष्य अंधा हो जाता है उसे उचित अनुचित का ज्ञान नहीं रहता । क्रोध के वशीभूत वह दूसरों का गर्व चूर्ण करना चाहता है । क्रोध से मन की शांति भंग हो जाती है ।

"बैर क्रोध का आचार या मुरब्बा है ।"[5] क्रोध करने से चिड़चिड़ाहट उत्पन्न होती है । क्रोधी मनुष्य अपने साथ किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए अपने प्रतिद्वंद्वी से कहता है - तुमने मेरे साथ यह किया, वह किया । अब तक तो मैं सहता आया, अब नहीं सह सकता । इसके अतिरिक्त दांत पीसना, गरजना, मैं तुम्हें धूल में मिला दूँगा, तुम्हारा घर खोद कर फेंक दूँगा आदि भी क्रोध की चरम सीमा है ।[6]

१- क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात् प्रणश्यति ।। १ गीता २।२

२- हिन्दी विश्वकोष भाग ५

३- हिन्दी विश्वकोष भाग १२

४- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १ पृ० १३३

५- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १ पृ० १३८

६- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १ पृ० १४०

धूर्त, स्वार्थी, ठग, दुष्ट मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये बड़े से बड़ा अपराध करने पर भी क्रोध नहीं करते, बिना किसी प्रतिवाद के वह अपने विरोधी की बात सुन लेते हैं। ऐसे लोगों का क्रोध अधिक घातक होता है वह धीरे धीरे योजना बना कर गुप्त आघात करते हैं जो अधिक घातक होता है।

क्रोध के विषय में किरातकाव्य में भारवि का कथन है कि - अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः - जिस मनुष्य को अपमानित होने पर भी क्रोध नहीं आता उसकी मित्रता और द्वेष दोनों बराबर है।[1]

क्रोध तो अस्थायी है। बहुत दिन तक क्रोध कभी नहीं रह सकता। कभी न कभी शान्त होता ही है। किन्तु क्रोध उदासीनता पैदा करता है क्योंकि क्रोध का अन्तिम रूप उदासीनता है। जब क्रोध अंतिम सीमा को पहुँच जाता है तो वह उदासीनता का रूप धारण करता है। उदासीनता स्नेह और प्रेम का शत्रु है। जहाँ उदासीनता ने अपना आधिपत्य जमाना आरम्भ किया, वहीं प्रेम और स्नेह का ह्रास होने लगा। क्रोध तभी शान्त होता है जब वह विरोध भाव दूर हो जाता है। यदि वह विरोध भाव सदैव रहे तो क्रोध कभी शान्त न होगा। जिस प्रकार सांस लेने की नली में कोई अणुमात्र भी खाद्य पदार्थ धोखे से चला जाता है तो आदमी को खांसी आती है। खांसी तब तक रहती है जब तक वह निकल नहीं जाता। उसी प्रकार क्रोध तब तक रहता है, जब तक वह विरोधभाव दूर नहीं हो जाता।[2]

क्रोध अनेक प्रकार से हानि पहुँचाता है यह केवल प्राणघातक ही नहीं अपितु सम्पत्ति, प्रतिष्ठा आदि पर भी आघात करता है। यह मनुष्य को हत्यारा भी बनाता है एवं ध्वंसक और संहारक भी। क्रोध खल का एक विशेष लक्षण है। परुष वचन एवं व्यंग्य द्वारा भी वह मानव हृदय को विदीर्ण करता है।

क्रोध से दूसरे की जितनी हानि होती है उतनी ही स्वयं क्रोध करने वाले की भी। क्रोध दूसरे का केवल भौतिक अहित करता है परन्तु खुद अपना आत्मबल पुरातिक्षीण हो लेता है। एक चीनी कहावत है जो आग तुम अपने शत्रु के लिये

१- बाल गंगाधर तिलक - गीता रहस्य पृ० ५६

२- प्रताप नारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० १०२

प्रेम चन्द के अनुसार क्रोध को दुर्वचन से विशेष रुचि होती है - प्रेमाश्रम पृ० २२

प्रज्वलित करते हो बहुधा दूसरे की अपेक्षा वह तुम्हें ही अधिक जलाती है ।"[1]

क्रोध प्रायः राक्षस, दानव और उद्दत मनुष्यों में देखा जाता है और वह युद्ध का कारण होता है । स्त्रियों का अपमान, देश जाति संबंध नाश, विद्या और कर्म की निंदा, अपमान, असत्यभाषण, उपघात, अपशब्द, द्रोह, मात्सर्य आदि कारणों से मनुष्य में तीव्र क्रोध उत्पन्न होता है ।[2] बहुत दिनों से संचित क्षोभ या कुंठाग्रस्त का प्रचण्ड रूप क्रोध के रूप में प्रगट होता है । क्रोध का विषयान्तर कभी कभी क्रूरता और पशुता का भी रूप धारण कर लेता है । क्रोध की यह अत्यन्त ही अवांछनीय स्थिति होती है । इस क्रूरता और बर्बरता का शिकार कमजोर और असहाय व्यक्ति बनते हैं । जो दीन हीन हैं, उन्हें और यातना मिलती है । यह प्रवृत्ति प्रायः उन व्यक्तियों में पाई जाती है जो जीवन की कठिनाइयों का मुकाबला बहादुरी से नहीं कर सकते । वे अपने क्रोध का शिकार अपने से कमजोरों को ही बनाते हैं । ऐसे व्यक्तियों की अत्यंत ही रुग्ण मानसिक दशा होती है । वे शक्तिशाली व्यक्ति के द्वारा अपने प्रति किये गए दुर्व्यवहार का बदला लेना चाहते हैं, किन्तु स्वयं शक्ति हीन होने के कारण उसके विरुद्ध तो सर उठा नहीं पाते और अपने से कमजोर और निरीह व्यक्तियों पर अपनी क्रूरता दिखाकर अपने मन के बदले की भावना की तुष्टि करते हैं ।[3]

लोभ :

बाल्टे की डिक्शनरी में लोभ के दो अर्थ दिये हैं १- लोलुपता, लालसा, लालच, अतितृष्णा २- इच्छा, उत्कण्ठा आदि । हिन्दी विश्वकोष (खंड २०) में लोभ का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है :- १ आकांक्षा दूसरे के पदार्थ को लेने की कामना, लालच । इसके पर्यायवाची शब्द हैं तृष्णा, लिप्सा, वश, स्पृहा, कांक्षा, ईहा, गार्ध्य, वांछा, इच्छा, तृष्ण कौरुष्य, काम, अभिलाषा ।

१- The fire you kindle for your enemy often burns yourself more than him.

२- डा० बालकृष्ण अमर जी पाठक - मानव रोग विज्ञान पृ० २४०

३- डा० एस० एस० माथुर, - शिक्षा मनोविज्ञान पृ० १०१

दूसरे की सम्पत्ति आदि देखकर उसे लेने के लिये जो अभिलाषा होती है उसे लोभ कहते हैं ।

भारतीय पौराणिक विचारधारा के अनुसार यह लोभ ब्रह्मा के अधर से उत्पन्न हुआ था । गीता में लिखा है कि नरक के तीन द्वार हैं - काम, क्रोध और लोभ । इसलिए सब तरह से लोभ छोड़ देना चाहिये ।[१] जगत में एक मात्र लोभ से ही सभी अनिष्ट होता है,लोभ ही पाप की प्रवृत्ति है , लोभ से ही क्रोध काम,मोह और नाश हुआ करता है । अतएव लोभ ही पाप का एक मात्र कारण है । संसार में मनुष्य लोभ में पड़ कर स्वामी, स्त्री,पुत्र और अपने सहोदर आदि का विनाश कर डालते हैं । जैन दर्शन के अनुसार लोभ वह मोहनीय कर्म है जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थ का त्याग नहीं सकता । अर्थात त्याग का बाधक होता है । इसके फलस्वरूप मनुष्य के स्वभाव में कृपणता कंजूसी एकाधिकार का भाव उत्पन्न होता है ।[२]

" किसी प्रकार का सुख या आनन्द देने वाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति सान्निध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जाग पड़े लोभ कहते हैं ।[३]

लोभ का आकार प्रकार और स्वाभावादि अतीव भीषण है । समस्त संसार मिल जाने पर भी उसकी परितृप्ति नहीं होती । लोभ से बुद्धि विचलित और विषयलिप्सा प्रादुर्भूत होती है,विषयलोलुप व्यक्ति को किसी लोक में सुख नहीं । लोभी का सुख आकाश कुसुमवत् और स्वप्न कल्पनावत होता हैं ।[४]

लोभ केवल धन पिपासा ही नहीं यह किसी भी वस्तु की लालसा है । सम्पत्ति,पद,यश किसी की भी तृष्णा लोभ ही है । यह मनुष्य को अकल्प से अकल्प कृत्य करने के लिए प्रेरित करता है ।[५]

१- गीता १६ । २१

२- हिन्दी विश्वकोष खंड २० के आधार पर

३- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि पृ० ६५

४- हिन्दी विश्वकोष भाग १२ के आधार पर

५- लोभ ! लो भी मन का ! लोभ ! कितना सुन्दर एवं भीषण फुफकार रहा है ! प्रसाद - कंकाल पृ० १६१ तृतीय खंड ग्यारहवां अंक

लोभश्चैव गुणीन किम् "

भर्तृहरि [1]

लोभ के चंगुल में पड़कर इस संसार में मनुष्य ने क्या क्या अत्याचार नहीं किये ? इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि धन, राज्य, स्त्री के लालच में पड़ कर लोगों ने अत्यंत घोर कर्म किये हैं । राज्य लोभ के कारण ही कैकेयी के समान कोमल माता का हृदय पत्थर के समान कठोर और अत्यन्त निर्दय बन गया । भरत को राज्य प्राप्ति कराने के लिए ही उसने श्री राम चन्द्र के समान सुशील पुत्र को भयंकर वनवास दिलाया । प्रसिद्ध आंग्ल कवि शेक्सपियर के हैमलेट नाटक के राजा ने राज्य लोभ के कारण अपने ही भाई का किस प्रकार खून किया इसका बहुत उत्तम चित्र कवि ने खींचा है । इंगलैंड के राजा जॉन ने राज्य लोभ के कारण अपने ही भतीजे आर्थर को किले में बन्द करके अन्त में दुष्ट और निर्दयी वधिकों के द्वारा उसको मरवा डाला । अस्तु सम्पूर्ण पवित्र नीति नियमों को एक ओर रखकर केवल भौतिक सम्पत्ति की ओर ही जब मनुष्य बिल्कुल झुक जाता है तब उसके हाथ से इसी प्रकार के अमानुषिक अत्याचार होने लगते हैं । [2]

अंग्रेजी लेखिका आना जेम्सन का मत है -" लोभ विवेक और हृदय के साथ वही कार्य करता है जो इन्द्रियासक्ति नैतिकता के साथ करती है ।" [3] विषयासक्ति जिस तरह नैतिकता का हनन करती है उसी प्रकार लोभ विवेक और हृदय का ।

सदाचार का मन सूक्ष्म होता है । एक बार दुराचार में पड़कर मनुष्य के लिए सदाचारी बनना कठिन हो जाता है । विषय भोग में मनुष्य की तृप्ति नहीं होती । तृष्णा का स्वाभाविक स्वर है -" और । और " । तृष्णा से सुख नहीं होता केवल सुख की एक आशा रहती है । आशा का मन वास्तविकता से अधिक

१- भर्तृहरि - नीतिशतक पृ० ३१।३४

२- लक्ष्मी धर वाजपेयी - सदाचार और नीति पृ० ३६

3. "Avarice is to the intellect and heart, what sensuality is to the morals" - Mrs Jameson .

भयानक तथा प्राणघातक होता है ।" १'द्रव्य लुब्धस्य नो सत्यं । जो द्रव्य के लोभी हैं वे समयानुसार अल्प लाभ के लिए असत्य को अंगीकार करके अनर्थ करने को उद्यत हो जाते हैं ।" २

चोरी,डकैती,अपहरण,धोखा देना,बन्धु-बांधव के रक्त - संबंधों की प्रतिष्ठा का ध्यान तक न रखना, (पितृ-हत्या) झूठा मुकदमा,जाली कागज आदि के मूल में लोभ ही वर्तमान रहता है ।

संसार में लोभी दो तरह के होते हैं । एक तो वे जो कहते हैं कि वह बड़ा लोभी है ऐसा नहीं है । दूसरे वे हैं जो कहते हैं कि वह बड़ा लोभी है बराबर मांगता रहता है ; लोभी दोनों ही है । कविवर रहीम ऐसे लोभियों का चित्रण करते हुये कहते हैं -

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं ।।

लोभी मनुष्य ही लोभ की निंदा अच्छी तरह से कर सकते हैं । लोभ से सर्व असंतोष उत्पन्न होता है । लोभ दूसरे की सुख शांति और स्वतंत्रता को नष्ट कर देता है । लोभ देखने में आनन्ददायक अवश्य प्रतीत होता है पर वह मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाता है ।

शुक्ल जी ने लोभ का विश्लेषण करते हुये लिखा है कि लोभी मनुष्य किस प्रकार अपने लक्ष्य की उपलब्धि के लिए अपनी वृत्तियों पर थोड़ी देर के लिए काबू कर लेते हैं । यह कार्य संयम नहीं वरन् चालाकी की श्रेणी में आता है क्योंकि उसका उद्देश्य श्रेष्ठ नहीं होता ।"लोभी मनुष्य भी योगी की भाँति अपनी इन्द्रियों पर संयम रखते हैं । लोभ के वश से वे काम और क्रोध को जीतते हैं , सुख की वासना का त्याग करते हैं , मान अपमान में समान भाव रखते हैं यह यदि उन्हें दस गालियाँ भी देता है तो उनकी आकृति पर न रोष का कोई चिन्ह प्रकट होता है और न मन में ग्लानि होती है । न उन्हें मक्खी चूसने में घृणा होती है और न रक्त चूसने में दया । सुन्दर

१- भगवती प्रसाद वाजपेयी - पतन पृ० १६६

२- श्री कृष्ण दत्त जी - सत्य निरूपण पृ०

से सुन्दर रूप देखकर वे अपनी एक कौड़ी भी नहीं भूलते । करुणा से करुण स्वर सुन कर वे अपना एक पैसा भी किसी के यहाँ नहीं छोड़ते । तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति के सामने हाथ फैलाने में वे लज्जित नहीं होते । क्रोध , दया , घृणा , लज्जा आदि करने से क्या मिलता है कि वे करने जाँय । जिस बात से उन्हें कुछ मिलता नहीं , जब कि उसके लिए उनके मन के किसी कोने में जगह नहीं होती तब जिस बात से पास का कुछ जाता है वह बात उन्हें कैसी लगती हो ——— जिस बात में कुछ लगे , वह उनके किसी काम की नहीं चाहे वह कष्ट निवारण हो या सुख प्राप्ति, धर्म हो या न्याय । वे शरीर सुखाते हैं , अच्छे भोजन,अच्छे वस्त्र आदि की आकांक्षा नहीं करते , लोभ के अंकुश से ही अपनी संपूर्ण इन्द्रियों को वश में रखते हैं ।"[१]

इस प्रकार लोभ चारित्रिक दृढ़ता का भी कारण होता है । जब लोभी अपने लोभ के विषय को केन्द्र में रखकर अपने विषय से विचलित नहीं होता । पहुँचे लोभी अनेक बाधाओं के आने पर भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते । उसको हर समय यही इच्छा रहती है कि वह वस्तु कहीं मिल जाती तो अच्छा था । उसकी इस प्रकार की विचारधारा ही उसके लोभी स्वभाव का परिचय दे देती है भले ही वह उस वस्तु विशेष को प्राप्त करने के लिए कोई खास प्रयत्न न करे, उत्कंठा न प्रगट करे ।

मोह :

सत्य को सही ढंग से न समझ पाने की कुबुद्धि मोह है । शब्द के अनुसार मोह के अनेक अर्थ हैं । १ चेतना की हानि ,मूर्च्छित होना , निश्चेष्टा, "[illegible] ।" २ घबराहट, व्यामोह, उद्विग्नता,अव्यवस्था । ३ मूर्खता,अज्ञान,दीवानापन, ४ त्रुटि,भूल,अशुद्धि ५ आश्चर्य, अचम्भा ६ कष्ट या पीड़ा ७ जादू की कला जो शत्रु को पराजय करने में प्रयुक्त की

---

१० रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १ पृ० ८५

जाय व व्यामोह जो सत्य को पहचानने में अवरोधक हो । इसके अनुसार मनुष्य को पहचानने-में- सांसारिक पदार्थों की वास्तविकता पर विश्वास होता है और वह विषय सुखों से तृप्ति करने का अभ्यस्त हो जाता है ।

मत्स्य पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा की बुद्धि से मोह की उत्पत्ति हुई है :-

बुद्धेर्मोहः समभवदहङ्कारादभून्मदः ।
प्रमोदश्चाभवत् कण्ठान्मृत्युर्लोचनतोनृप ।। [1]

जगत में ममत्व बुद्धि ही मोह का स्वरूप है "मेरा घर मेरा लड़का, यह सब मेरा है इस प्रकार ममत्व बुद्धि को ही मोह कहते हैं । [2]

धर्म विमूढ़ता को मोह कहते हैं । जान बूझ कर पाप करना यही मोह का कार्य है । यह मोह जन्य पाप प्रायश्चित्त से विनष्ट होता है ।

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन नश्यति
कामतस्तु कृतं मोहात् प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ।।
अत्र मोहादिति को मोह :-
मोह शब्देन वेदेन्द्र । बुद्धि पूर्वो व्यतिक्रमः ।
उच्यते पण्डितैर्नित्यं पुराणे कौशपायनः ।।

(प्रायश्चित्तविवेक)

पद्मपुराण के भूमिखण्ड में मोह की वृक्ष रूप कल्पना की गई है । उस वृक्ष का बीज लोभ, मूल मोह, स्कन्ध, असत्य, शाखा माया , पत्ते दम्भ और कौटिल्य, पुष्प सभी कुकार्य, सुगन्ध पिशुनता और अज्ञानफल उसके पोषक है । जो यह वृक्ष लगाता है उसका पतन निश्चय है ।

(पद्म भूमि ख० ११ अ०)

भ्रम, भ्रान्ति भी मोह है शरीर और सांसारिक पदार्थों को अपना या सत्य समझने की बुद्धि को दुःखदायिनी मानी जाती है । [3]

१- मत्स्य पुराण ३ अध्याय

२- मम माता मम पिता ममेयं गृहिणी गृहम् ।
एतदन्यं ममत्वं यत् स मोह इति कीर्तितः ।। पद्मपुराण, क्रिया योग सार ।

३- हिन्दी विश्वकोष खंड एम के आधार पर

इस प्रकार मोह अर्थात् अविवेक मनुष्य के व्यवहार में भ्रान्ति एवं ममता उत्पन्न करता है । भ्रांति के नाना रूप पाये जाते हैं । संसार में किसी भी वस्तु अथवा प्राणी को अपना समझना भ्रान्ति है[1] जो मोह से उत्पन्न होती है । मोह ममता उत्पन्न करती है और ममता आसक्ति और अधिकार की भावना । यह ममता, अधिकार की भावना असत् होने के कारण मनुष्य के आत्मबल को क्षीण कर देती है । मोह में पड़ कर मनुष्य उचित अनुचित का ज्ञान खो बैठता है । मोहवश किसी प्राणी अथवा वस्तु की रक्षा के लिए असत् मार्ग का अवलम्बन लेने में नहीं हिचकता । मोह से मनुष्य का चारित्रिक पतन हो जाता है । प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कानफ्यूशियस का मोह के प्रति विचार कितना सुन्दर है "मोह मनोराशि है परन्तु ऐसी निशा जिसमें न शशि है न नक्षत्र ।" मोह रूपी अंधकार से ग्रसित मनुष्य के पास प्रकाश अथवा विवेक नहीं होता । सद्विवेक से कुंठित मनुष्य सद् पथ पर चले यह सम्भव नहीं है ।

मद ?

मद अर्थात् अहंकार या गर्व । आप्टे ने मद के कई अर्थ दिये हैं - १ मादकता, मस्ती, मदोन्मत्तता; २ पागलपन, विक्षिप्तता, ३ उग्र प्रणयोन्माद, लालसापूर्ण उत्कंठा, गाढ़ाभिलाषा, कामुकता; ४ प्रेम इच्छा उत्कंठा; ५ अहंकार, घमंड, अभिमान, ६ उल्लास आदि । मद की दो श्रेणी होती है । समाज और व्यक्ति के तुलनात्मक रूप में तो यह स्वाभिमान है पर व्यंग्यात्मक रूप में वह मद हो जाता है । रूप, धन, विद्या, पद, शरीर किसी भी प्रकार का गर्व मद से उत्पन्न होता है । मद के उन्माद में मनुष्य अनेक अनुचित कार्य कर डालता है । दूसरे के

१- गीता में युद्ध के समय जब अर्जुन को मोह उत्पन्न हो जाता है तो भगवान उपदेश देते हुये उसकी नश्वरता का वर्णन करते हैं -
'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥' २ । २३ ।

अपमान प्रतिष्ठा से अहंकार टक्कर लेता है ।"[1] मन सदैव भ्रम से पूर्ण होता है। वह मनुष्य के व्यक्तित्व को विषाक्त सर्प की तरह जकड़े रखता है । आत्म निरीक्षण के अभाव में ही मद का अस्तित्व है । मद वश मनुष्य दूसरे को तुच्छ समझता है और ऐसा विचार अत्यंत निंदनीय एवं घृणित अवगुण है ।

भारतीय विचार धारा अहंकार को हेय दृष्टि से देखती है । कवि ने अहंकार का विश्लेषण इस प्रकार किया है । 'अहंकार मनुष्य का परम शत्रु है । अहंकार मिथ्या है,अकल्याण का मूल है । मनुष्य जो कुछ दु:ख प्राप्त करता है उसकी खान अहंकार है । जब तक मनुष्य के मन में अहंकार रहता है उसके दु:खों का अन्त नहीं होता । अहंकार द्वारा प्राप्त पुण्य,भजन आदि व्यर्थ है जैसे राख में आहुति धरी व्यर्थ है । मनुष्य के दु:ख का बीज अहंकार है जब अहंकार उत्पन्न होता है तो समता उठ जाती है जब अहंकार रूपी मेघ गर्ज कर बरसता है तब तृष्णा रूपी कंटक मंजरी बढ़ जाती है जो कदाचित घटती नहीं । जब तक तेल और बाती है तब तक दीपक का प्रकाश है । जब तेल और बाती का नाश होता है तब दीपक का प्रकाश भी नाश पाता है तैसे जब अहंकार का नाश होवे तब तृष्णा का भी नाश होता है। जैसे पारधी (बहेलिया) जाल से पंछी को बाँधता है और पंछी दीन हो जाता है उसी प्रकार अहंकार रूपी पारधी तृष्णा रूपी जाल से जीव को बाँधता है । मनुष्य विषय भोग की इच्छा से तृष्णा रूपी जाल में बँध जाता है । अहंकार द्वारा वैराग्य का नाश होता है । मनुष्य मन में मोह सर्प के समान है और अहंकार बिल है। अहंकार कामी मनुष्य के समान है जैसे कामी मनुष्य काम को भुगतता है और फूल की माला गले में डाल कर प्रसन्न होता है उसी प्रकार तृष्णा रूपी धागे में दुख रूपी फूल को गूथ कर मनुष्य प्रसन्न होता है । जैसे समुद्र में सब नदियाँ जाकर मिलती है वैसे अहंकार में सब आपदा आ जाती है ।"[2]

१- अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।। गीता १६ । १८ ।

२- वही - योगवाशिष्ठ भाषा - पृ०३६,३७, ३८

दुर्व्यसन किसी भी प्रकार का हो मद से उत्पन्न होता है ।अभिमानी मनुष्य स्वयं अंधा होकर दूसरों की आँखें भी फोड़ता है न उसे दूसरे का गुण देखने का साहस होता है न उत्कंठा ।

मद के कारण अपमान,हिंसा,क्रोध,ईर्ष्या,मिथ्याप्रेम आदि अनेक अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं । अमेरिकन पादरी एडविन हब्बेल चैपिन का मत है " मद खल का सबसे महान दोष है ।" [1]

मत्सर ?

मत्सर उस विकार का नाम है जो मनुष्य में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न करता है । दूसरे के सुख को देख कर जो दुःख होता है उसे ईर्ष्या कहते हैं ।"ईर्ष्या एक संकर भाव है जिसकी संप्राप्ति आलस्य अभिमान और नैराश्य के योग से होती है ।' [2] आप्टे की डिक्शनरी में मत्सर के चार अर्थ दिये हैं । १ ईर्ष्यालु,डाह करने वाला २ कृपण लालची,लोभी, ३ दरिद्र , ४ दुष्ट । ईर्ष्या व्यक्तिगत होती है । ईर्ष्या का भाव दूसरों की उन्नति को देख कर उदय होता है । जब मनुष्य में स्वयं कोई गुण नहीं होता , वह आलसी और अयोग्य होता है तब वह दूसरों की उपलब्धियों से ईर्ष्या करने लगता है । ईर्ष्या अपने संबंधियों , सखाओं,सहपाठियों और पड़ोसियों के साथ ही अधिक होती है जैसे दो सहपाठी एक साथ पढ़ते हैं उनमें से एक ऊँचे पद पर पहुँच जाता है तो वह चाहता है कि दूसरा ऊँचे पद पर न पहुँचने पाये ।

ईर्ष्या सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है । इसके प्रभाव से हम दूसरे की बढ़ती से अपनी कोई वास्तविक हानि न देखकर भी व्यर्थ दुःखी होते हैं । [3] ईर्ष्या सिर्फ अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने के लिए ही नहीं

१- "Pride is the master sin of the devil."

(Edwin Hubbel Chapin)

२- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १ पृ० १०७

३- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग २ पृ० ११०

जाग्रत होती वरन् किसी नीच जाति के आदमी को अपने समान ही धनी देख कर भी ईर्ष्या उत्पन्न होती है । ईर्ष्या में अपनी कमजोरी से ऊपर उठने का प्रयत्न नहीं होता । अपनी उन्नति न कर सकने के कारण ही व्यक्ति दूसरे की स्थिति को देख देख कर ईर्ष्या करता है ।

ईर्ष्या अप्रिय मनोविकार है। ईर्ष्यालु मनुष्य अपने मन के पाप को भूलकर भी प्रगट नहीं होने देता । यदि किसी की प्रशंसा हमें अच्छी नहीं लगती तो भी हम सज्जनता पूर्वक उसके दोषों का निदर्शन करते हैं,अपने कुत्सित विचार को प्रगट नहीं करते । ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी कभी अपनी भावना को गुप्त रखता हुआ दिखाता यह करता है कि वह उसका भला चाहता है पर वास्तव में वह ईर्ष्या वश ही उसकी बुराई करता है ।

मत्सर - लालसा,तृष्णा,विकलता और पतन के लक्षणों से युक्त है ।"ईर्ष्या एक मानसिक विकार है इसकी ज्वाला से व्यक्ति का विवेक जलने लगता है उसे हिताहित का ज्ञान नहीं रहता । दूसरों को महान एवं सुखी देखकर वह अकारण ही उनसे ईर्ष्या करने लगता है ।"

संत तिरुवल्लुवर ने ईर्ष्या के संबंध में कहा है -"ईर्ष्या करने वाले के लिए ईर्ष्या ही क्या ही काफी है क्योंकि उसके दुश्मन उसे छोड़ भी दें तो भी उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी ।[१] दुष्टा ईर्ष्या दानवी दरिद्रता को बुलाती है और आदमी को नरक के द्वार तक ले जाती है । बाबू श्री राम वेदय के "मौत की टट्टी" उपन्यास का अमानाथ नरेन्द्रनाथ ईर्ष्या और घृणा के कारण ही कैलाश का अहित करना चाहता है पर अन्त में उसकी ईर्ष्या स्वयं उसे ही बरबाद कर देती है ।

"मत्सर होने से मनुष्य प्रतिस्पर्धी या शत्रु की न्यूनता ढूंढता ही रहता है और उसके नाश होने का प्रयत्न करता रहता है । ऐसा करने का कुछ तो कृत्रिम भाव रहता है वह सिद्धान्त को न पहुँच कर असूया को अंगीकार करता है जैसे कोई चतुर पंडित है तो उसकी पंडिताई को नष्ट करके लोगों में उसे मूर्ख कहना और किसी

१- चरित्र निर्माण पत्रिका जनवरी से दिसम्बर १९६१ वर्ष १० अंक १-२ पृ० १२

के छिद्र का अन्वेषण करके उसे अपराधी ठहराना और तुच्छ बात पर बड़े विवाद से उसको समाचार पत्र में छपवा करके प्रसिद्ध करना ये सब स्वरूप मत्सरता के हैं। यद्यपि असत्य बोलने से कुछ लाभ नहीं होता परन्तु मत्सरता से यही होता है कि दूसरे की प्रतिष्ठा कलंकित हो जाती है। भला जो दूसरे का इतना बिगाड़ चाहता है उसका कल्याण कैसे होगा , उल्टा अपना ही बिगाड़ करेगा और लोगों की दृष्टि में सदा बुरा बनेगा।"[1]

ईर्ष्या एक ऐसा घाव है जो कभी भरने नहीं पाता। केवल ईर्ष्यालु व्यक्ति ही अपने किंचित मकसूस के साथ सादृश्य रखता है।"[2] जिस प्रकार काम समस्त विषय भोग,लोभ,समस्त धन,ऐश्वर्य,वैभव,यश आदि चाहता है उसी प्रकार मत्सर समस्त ज्ञान,सौन्दर्य,प्रतिष्ठा,सम्पत्ति आदि पर अपना ही एकाधिकार एवं प्रभुत्व रखना चाहता है।

रोमन इतिहासकार लिवी के अनुसार "मत्सर में धर्म से पथभ्रष्ट करने के अतिरिक्त और कोई दूसरा गुण नहीं है।"[3]

काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद,मत्सर में प्रायः सामूहिक रूप से स्थित रहते हैं। ये परिवार सदृश है। इन्हें तुलसीदास ने माया के परिवार के अन्तर्गत गिना है। ये एक साथ उत्पन्न होते हैं और साथ ही साथ निवास करते हैं। सब एक दूसरे में गुंफित है एवं एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित है। इनमें कार्य कारण संबंध भी रहता है।

मन में एक विकार ही उसके अन्दर प्रबल रूप से परिलक्षित होता है जिसके आधार पर हम उसकी प्रबलता के कारण काम,क्रोध या लोभ आदि कहते हैं परन्तु उस प्रधान अवगुण में अन्य विकार भी अवश्य सम्मिलित रहते हैं। ये सब एक साथ मिलकर मन के स्वरूप एवं स्वभाव का सृजन करते हैं।

१- दीवान चन्द - नीतिविवेचन पृ० ७४

२- प्रो० निर्मल चन्द्र - जीवन सौन्दर्यमय पृ० ३६

३- "Envy has no other quality but that of detracting from virtue." (Livy)

भारतीय दार्शनिक दृष्टि में प्रकृति को त्रिगुणात्मक कहा गया है । प्रत्येक प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष, चल-अचल, जड़-चेतन वस्तु एवं भाव त्रिगुणात्मक है । मानव मन बुद्धि जिनसे उसकी प्रकृति बनती है इन गुणों से युक्त है । संस्कार जिनसे प्रकृति बनती है अपने वातावरण के सत्व, रज एवं तम किसी गुण की प्रधानता से प्रभावित होता है । सांख्य दर्शन के अनुसार सत्व, रज एवं तम गुणों के कारण ही मनुष्य में क्रोध एवं लोभ आदि विकार उत्पन्न होते हैं । रजोगुण के कारण ही मनुष्य दुष्कृत्य करता पाया जाता है । गीता में लिखा है - रजोगुण के बढ़ने पर लोभ में प्रवृत्ति बढ़ती है अर्थात् सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थबुद्धि से आरम्भ एवं अशांति अर्थात् मन की चंचलता और विषयभोगों की लालसा, यह सब उत्पन्न होते हैं । तमोगुण के बढ़ने पर अन्तः करण और इन्द्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्य कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियाँ यह सब ही उत्पन्न होते हैं जिनके वशीभूत मनुष्य दुष्टतापूर्ण कार्य करता है । सत्-असत् कर्म मनुष्य प्रकृति के गुण हैं । सांसारिक माया जाल में फँसे होने के कारण मनुष्य में सत् भाव स्थिर नहीं रह पाते । असत् अधिक लुभावना मनोरंजक एवं आकर्षक प्रतीत होता है इसलिए अज्ञानी मनुष्य निम्नगामी जलधारा की भाँति असत् को सहज ही आत्मसात् कर लेते हैं । साधु-असाधु, देव-दानव, सज्जन-दुर्जन, प्रकृति के अवयव हैं । तमोगुण की अधिकता तथा प्रधानता मनुष्य में सब दोष्य चिन्ह उत्पन्न कर देती है । तमोगुण का कोई प्रकाश नहीं अंधकार है । अंधकार में डूबा विवेक सत् पथ का निर्देशन नहीं कर सकता ।

अंग्रेजी कवि कालरिज का मत है " जिस प्रकार एक मनुष्य में पर्याप्त पाशविकता और थोड़ा राक्षसत्व होता है उसी प्रकार उसमें थोड़ा देवत्व और थोड़ी ईश्वरता भी होती है । पाशविकता और राक्षसत्व पर विजय प्राप्त की जा सकती है परन्तु इस जीवन में इन्हें सर्वथा नष्ट नहीं किया जा सकता ।

सत् असत् का निवास मानव मन एवं बुद्धि में है जिनसे उसका व्यवहार आचरण एवं वाणी संचालित है । सत् असत् की अभिव्यक्ति एवं दर्शन मानव के देह, वाणी एवं कर्म में होता है । मानव की सम्पूर्ण क्रिया उसकी प्रकृति के अनुरूप

१- मनुस्मृति में कहा है व्यक्ति तीन प्रकार से पाप कर सकता है, शरीर से वाणी से

होती है । सत् असत् किसी भी कार्य का कारण प्रकृति है ।

'कंकाल' में भी प्रसाद जी ने व्यक्ति और समाज की मूल समस्या पाप और पुण्य की परिभाषा देकर उस पर सैद्धान्तिक रूप से प्रकाश डाला है । विजय के शब्दों में प्रसाद कहते है -"पाप और कुछ नहीं है जिन्हें हम छिपा कर किया चाहते हैं, उन्हीं कर्मों को पाप कह सकते हैं, परन्तु समाज का एक बड़ा भाग यदि उसे व्यवहार्य बना दे, तो वही कर्म हो जाता है ; धर्म हो जाता है । इसीलिए विरुद्ध मत रखने वाले संसार के मनुष्य अपने अपने विचारों में धार्मिक बने हैं जो एक के यहाँ पाप है, वही तो दूसरे के लिए पुण्य है ।"[1]

पाप-पुण्य सत् असत् पर प्रेमचन्द की मान्यता है - "मनुष्य की भलाई या बुराई की परख उसकी सामाजिक या असामाजिक वृत्तियों में ही जिस काम से मनुष्य समाज को हानि पहुँचती है वह पाप है जिससे उसका उपकार होता है वह पुण्य है । सामाजिक उपकार या अपकार से परे हमारे किसी कार्य का कोई महत्व नहीं है और मानव जीवन का इतिहास आदि से इसी सामाजिक उपकार की मर्यादा बाँधता चला आया है । भिन्न भिन्न समाजों और श्रेणियों में यह मर्यादा भी भिन्न है ।"[2]

सत्-असत् या साधुता-असता नैसर्गिक सत् होने के कारण मानव स्वभाव में सदैव विद्यमान रही है ।[3] सत् की दृष्टि परमार्थ पर रहती है असत् की स्वार्थ पर । सत् को त्याग, तप और बलिदान की आवश्यकता है । असत् में इसके लिए क्षमता नहीं है । असत् का लक्ष्य भौतिक सुखों की प्राप्ति करना होता है जब कि सत् का लक्ष्य आध्यात्मिक सुख । असत् पात्र को न तो इस दुःख संसार से परे सुख दिखलाई पड़ता है और न उसका उसमें विश्वास होता है । उसे यह भी ज्ञात नहीं होता कि अनावश्यक भौतिक सुखों के त्याग से उसे किसी महान सुख की प्राप्ति होती है । भौतिक सुखों की खोज के लिए जो संघर्ष करना पड़ता है उसके लिए उसके अन्दर न तो विवेक होता है और न मनोबल । परिणाम पर बिना विचार किये वह सुख प्राप्ति के लिए सरल मार्ग चुन लेता है और इस तरह अज्ञानवश अपनाया

१- जयशंकर प्रसाद - कंकाल पृ० ६४-६५ ग्यारहवाँ सं०

२- प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य पृ० ८२

३- द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।। (गीता १६।६)

पात्र को सत् मानने के लिये एक आधार की आवश्यकता है उसके चरित्र की परीक्षा के लिये एक कसौटी होना आवश्यक है। चरित्र को परखने के लिये मानवता सबसे महत्वपूर्ण कसौटी है। मानवता में शुद्धता का तनिक अभाव भी पात्र को मानवीय पद से नीचे गिरा देता है। दया की कमी, उदारता का अभाव, स्वार्थपरता आदि इसी तथ्य के द्योतक है।

पात्र को उसके गुण, आचरण एवं रूप के आधार पर विभाजित करने के लिये केवल सत् असत् इन्हीं दो वर्गों की स्थापना की गई है। पात्र सत् होगा अथवा असत्, इसके अतिरिक्त उसके लिये कोई अन्य वर्ग नहीं है। अरस्तु का विभाजन भी इसीप्रकार का है।

व्यक्तित्व में त्याग, क्षमा, सहिष्णुता, सत्य, श्रद्धा, विनय, शिष्टता, उदारता, एवं सौम्यता आदि का अभाव पात्रों को चरित्र की परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर देता है। इन गुणों का विद्यमान रूप परीक्षाकाल में जब आडम्बर सिद्ध होता है तब भी पात्र सत् के स्थान से च्युत हो जाता है। इन सद्गुणों का प्रदर्शन जब आवरण के निमित्त होता है तो उसका कोई सामाजिक महत्व अथवा मूल्य नहीं होता। ऐसी स्थिति में उनका रूप विकृत हो जाता है और वे गुण के स्थान पर अवगुण ही माने जाते है क्योंकि उनका उद्देश्य निकृष्ट होता है। इन गुणों का यथार्थ रूप जब अवगुण होता है तो वे पात्र की महत्ता को क्षीण कर उसे असत् सिद्ध कर देते है।

परीक्षण में मानवता जब पाशविकता प्रतीत होती है तब पात्र का रूप असत्मय हो जाता है।

मानवता तभी मानवता है जब उसमें देवत्व हो। देवत्व ही मानवता का आदर्श है। मानवता में इस आदर्श का अभाव उसे मानव पद से पतित कर देता है। अंग्रेजी पत्रकार एवं दार्शनिक प्रसिद्ध बेकन का विचार है "हमारी मानवता अत्यन्त क्षुद्र होती यदि हमारे अन्दर देवत्व न प्रवाहित होता।"[1] मानवता में जब देवत्व के स्थान पर असुरत्व प्रवाहित रहता है तो मानव सत् नहीं असत् हो जाता है। यही वह कसौटी है जिसके आधार पर इन व्यक्तियों का विभाजन कर सकते हैं।

---

1. "Our humanity were a poor thing but for the divinity that stirs within us." - (Bacon) A Cyclopedia of Quotation..

~~करते रहते हैं।~~

पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ' भारतीय संस्कृति की देन ' लेख में इसे ही मनुष्य की ऊर्ध्वयात्रा कहा है । वे कहते हैं - यह जो स्थूल से सूक्ष्म की ओर ऊपर होता है, जो कुछ वैसा होने वाला है, उसको वैसा ही न मानकर, जैसा होना चाहिए, उसकी ओर जाने का प्रयत्न है, यही मनुष्य की मनुष्यता है । अनेक बातों में मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है । मनुष्य पशु की अवस्था से ही ऊपर होकर इस अवस्था में आया है । इसलिए वह स्थूल को छोड़ कर रह नहीं सकता । ——— आहार-निद्रा आदि के बन्धन भी मनुष्य को जुटाने पड़ते हैं । यद्यपि मनुष्य बुद्धि ने इनमें भी कमाल का उत्कर्ष दिखाया है, पर प्रयोजन प्रयोजन ही है । प्रयोजन के जो अतीत है वहाँ मनुष्य की आनंदिनीवृत्ति ही चरितार्थ होती है, वहाँ मनुष्य की ऊर्ध्वगामिनी वृत्ति को संतोष होता है ।'[1] आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी इसको ही मानकर कहते हैं कि 'संस्कृति में जो कुछ सबसे अधिक सूक्ष्म और सुन्दर है वह आत्म संयम तथा मानवता से बंधा है तथा उसमें अधिक बौद्धिक अन्तर्दृष्टि सम्मिलित है जिसके कारण परिमार्जित सामाजिक प्रतिक्रिया को स्वीकार करते हुए उग्रता असम्भव हो जाती है ।[2]

सत्य की परिभाषा और रूपरेखा

पीछे हमने पाप और पुण्य, सत्कर्म और सद्विचार तथा असत्कर्म और असद् विचार का जो विश्लेषण किया उसके उपरान्त अब यह कठिन नहीं रहता कि हम सद् पुरुष और असद् पुरुष में विवेक कर सकें । देश काल परिस्थिति पर विचार किये बिना यदि कर्म मात्र से निर्णय देना हो तो वस्तुतः यह कठिन कार्य नहीं है । किन्तु वस्तुतः ऐसा होना सम्भव नहीं है । न केवल ऐतिहासिक परम्परा वरन् दैनन्दिन जीवन भी इस बात का साक्षी है । बहुत मधुर बोलने और स्वागत सत्कार करने पर

१- हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल पृ० ८०

२. "All that is finest in civilisation is bound up with a self restraint and humanity, as well as a more intelligent insight which while admitting a more Chastened social reaction, makes ferocity impossible." P. 301 . The Criminal . Havelock Ellis.

भी यदि कोई मित्र भोजन में विष दे देता है अथवा अन्य कोई कपट करता है तो वह सत् पुरुष की श्रेणी में नहीं रखा जा सकेगा । हमें उसके उद्देश्य,उसके व्यवहार की अन्तर्धारा का भी मूल्यांकन करना ही होगा । इसी प्रकार किसी दरिद्र दुखी की सुरक्षा के लिए कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर क्रुद्ध होकर मार भी बैठता है तो उसके क्रोध का दोष उसके उद्देश्य से प्रक्षालित हो जाता है ।

अत: कौन खल है इस संबंध में निर्णय लेने से पहले हमें उसके सारे व्यक्तित्व का विश्लेषण करना होगा । खलता कोई क्षणिक उबाल भी प्राय: नहीं होती, वह स्वभाव का अनुस्यूत अंग होती है जो एकाधिक व्यापारों और कर्मों में प्रकाशित एवं प्रमाणित होती है ।

खल के कर्म को दृष्टि में रखकर हम कह सकते हैं - " मन,कर्म,वचन से - स्वार्थ हेतु,जाने अनजाने अथवा द्वेष वश किसी प्रकार की बाह्य अथवा आन्तरिक पीड़ा एवं क्षति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पहुँचाने वाला व्यक्ति खल है । मनुष्य में देव और राक्षस दो प्रवृत्ति होती है पर जिसमें असत् अंश की प्रधानता हो वही खल है । कर्म से ही नहीं वरन् उद्देश्य जब खलतापूर्ण होता है तब हम उसे खल कहते हैं।'

खल के रूप को दृष्टि में रखकर हम कह सकते हैं कि -' जिसके विचार एवं कर्म का सत् रूप प्राय: दुराव के आवरण से आच्छादित हो और जिसे उसके अनावृत होने का भय हो वह खल है ।'

इसी विचार के अन्तर्गत खल की परिभाषा के लिए व एक और विचार उपस्थित कर सकते हैं -"जिसके अन्दर अपने द्वारा किये जाने वाले अपकार के षड्यंत्र अथवा दुराव के प्रगट हो जाने का भय होता है वह खल है ।" जो समाज में विध्वंसकारी तत्वों का सृजन करे वह खल है ।

संत तुलसीदास जी खलता के विषय में अपना विचार इस प्रकार उपस्थित करते हैं -

" पर पीड़ा सम नहीं अधमाई । "

तुलसी दास जी एक और ढंग से खल की परिभाषा करते हैं -

पर द्रोही परदार-रत,पर धन पर अपवाद ।
ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद ।।

सर० पी० सिडनी का मत है "अधमता और कुछ नहीं केवल पीड़ा की धात्रिका है।"[१]

उपरोक्त दोनों विचारों से भी यही संकेत मिलता है कि पर पीड़ा दूसरे को दुख देना ही खलता है और खलता पीड़ा को उत्पन्न करती है। अर्थात् असामाजिकता खल का प्रमुख वैशिष्ट्य है।

जब अपराध वैज्ञानिकों ने इस बात की खोज की कि सामान्यतः विधिपालक नागरिक अनजाने ही और अनायास ही ऐसे अनेक अपराध एक ही दिन में कर लेता है जो आसानी से उसे पाँच साल की कैद या तीन हजार शिलिंग के दंड का भागी बना दे"[२] तो उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि न्यायालय में ही सदा मनुष्य के अपराध भाव का मूल्यांकन नहीं होता उसकी अपराधी वैयक्तिक मनोवृत्ति दैनंदिन जीवन के जाने कितने अप्रासंगिक व्यापारों में फैली रहती हैं। सभ्य जीवन के नागरिक पक्षों में जहाँ धन है, यश है, नृत्य है, नाचघर है, तरह तरह के विलास के आकर्षण हैं वे प्रवृत्तियाँ सहज विस्तार पाती हैं।[३]

ख - खलता का कारण

आधुनिक काल में मानवतत्त्व विज्ञान, मनोविश्लेषण विज्ञान तथा समाजशास्त्र आदि की दृष्टि से असामाजिक कार्यों एवं व्यक्तियों के मूलभूत कारणों की खोज हुई। शरीर रचना (glands) वंशानुक्रम, आर्थिक स्थिति, पारिवारिक परिवेश, मन की रचना आदि अनेक स्रोतों में कारणों का विश्लेषण हुआ है।

---

1. Sir P. Sidney - 'Vice is but a nurse of agonies.' A Cyclopedia of Quotations.
2. Barnes Teeters - New Horizons in criminology P.13.Foreword.

अत: खलता का कारण निर्दिष्ट करने के लिए उसका अन्वेषण विभिन्न दृष्टियों से आवश्यक हो जाता है ।

दार्शनिक दृष्टि :

प्राचीन भारतीय शास्त्रीय दृष्टि से खलता का मूल कारण केवल एक है और वह है अज्ञान अथवा अविद्या । प्लेटो ने भी अज्ञान को ही सब बुराइयों के मूल में बताया ।[1] अज्ञान ही वह मूल स्रोत है जिससे अन्य विकार उत्पन्न होते हैं । इन विकारों के प्रभाव से मनुष्य मानवता के अयोग्य कर्म करने लगता है, मानव मर्यादा का ध्यान उसे नहीं रहता । प्रतिकूल, विषम, विपरीत, अप्रिय स्थिति उसे कर्तव्यच्युत कर अकरणीय कृत्यों को करने के लिए प्रेरित करती है । ऋग्वेद(७।८६।६) में एक ऋषि वरुण का कथन है कि पाप किसी व्यक्ति की शक्ति के कारण नहीं होता, प्रत्युत वह भाग्य, सुरा, क्रोध, द्यूत (जुआ) असावधानी के कारण होता है, यहाँ तक कि स्वप्न भी दुष्कृत्य करा डालता है ।"[2]

रजोगुण एवं तमोगुण की वृद्धि अहंकार उत्पन्न करती है । अहंकार का उदय बुद्धि को बहिर्मुखी बना देता है । बहिर्मुखी बुद्धि मन के षड्विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर पर नियंत्रण खो देती है ।

अहंकार का बहिर्मुख रूप उसके अन्तर्मुख रूप से भिन्न है । उसका अन्तर्मुख रूप अहं-तत्व है और बहिर्मुख रूप देहाभिमान । अहंकार देही में उपयुक्त है देह में नहीं । देहाभिमान व्यक्ति को पार्थिव शरीर की नश्वर परिधि में सीमित कर देता है । मनुष्य के सम्पूर्ण अवगुण एवं दोष देहाभिमान का परिणाम है,

---

१- जार्ज थुली अनु० कृष्णचन्द्र - नैतिक जीवन का सिद्धान्त पृ० ११३

२- [illegible] - धर्म शास्त्र का इतिहास पृ० १०८८

जिसके मूल में है अज्ञान ।

अज्ञान तिमिर में तिरोहित बहिर्मुख बुद्धि मनोविकारों पर नियंत्रण के अयोग्य होती है । अनियंत्रित मन स्वतंत्र हो ऐन्द्रिय सुख खोजने लगता है और यह विषयासक्ति उसे चारित्रिक पतन एवं अधोगति की ओर ले जाती है । फ्रेंच लेखक `हुक' का मत है कि अच्छे विचार और अच्छी भावना के अभाव में ही दुष्टता होती है। जब तक मन पर बुद्धि का अंकुश रहता है तब तक मनुष्य से पाप नहीं होता परन्तु जब मन बुद्धि से प्रबल हो जाता है और बुद्धि तथा मन का संतुलन बिगड़ जाता है ऐसी अवस्था में मनुष्य विवेकहीन हो जाता है तब उससे ऐसे कार्य हो जाते हैं जो नैतिकता के सामान्य स्तर से गिरे हुये होते हैं जिन्हें हम पाप कह सकते हैं ।" आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि अपराध तभी होता है जब सामाजिक उपादानों का मेल ठीक ठीक व्यक्तिगत तत्वों से हो जाता है ।

मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि :

मलता के मूल्यांकन के लिए आधुनिक युग की वैज्ञानिक दृष्टि ने मनोवैज्ञानिक कारणों की व्याख्या की है । विभिन्न वैज्ञानिक दृष्टियों के परिणाम स्वरूप अपराध के कारण भूत तत्वों में धार्मिक और आध्यात्मिक व्याख्याओं को प्रायः एक किनारे रख दिया गया है । ये कारण दार्शनिक स्वाभाविक अथवा व्यवहारिक नहीं है , ये कारण केवल व्यक्ति मन में निहित मनोवैज्ञानिक समूह है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रायः यह मान कर चलती है कि दैहिक अस्तित्व और आवश्यकताओं की सीमाओं में मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है । पहले पहल डार्विन ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि मनुष्य भी मूलतः पशु ही है । मनोविश्लेषणवादी विधियों में उस पशुप्रेरणा का ही स्वरूप देखते हैं ।

आधुनिक युग में मनोविज्ञान ने मानव मन की तहों की खोजबीन की, यद्यपि उस खोज बीन के अनेक सत्य उन्हीं तत्वों को प्रमाणित करते हैं जिनका उल्लेख भारत की शास्त्रीय परम्पराओं में हुआ है तथापि भौतिक दृष्टि से या

वैज्ञानिक दृष्टि से इस नई चिन्तन धारा ने अनेक नए दिशाओं का भी उद्घाटन किया है जो विचारणीय है । खलता के इन कारणों का संबंध प्रत्यक्ष रूप से मन के नित्य मनोविकारों से नहीं है । इनका संबंध मन की उस अस्थायी एवं अनिश्चित स्थिति से है जो प्रतिकूल एवं अप्रिय शारीरिक,सामाजिक एवं व्यापारिक दशा के कारण उत्पन्न होती है । अत: इन कारणों की खोज मनोविश्लेषण द्वारा मनोवैज्ञानिक आधार पर ही सम्भव है । कारण की खोज व्यक्ति के प्रति हमारी दृष्टि में परिवर्तन करती है - खलता एक सामयिक सत्य बन कर रह जाती है व्यक्ति का स्वभावगत दोष नहीं अर्थात खल की बुराई को परिवेश में खोजना होता है, व्यक्ति को लांछित करके छोड़ नहीं देता ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि रूढ़ विकारों की अवस्थिति मानने की अपेक्षा अचेतन मन,पर्यावरण और परिस्थिति को विशेष महत्व देती है । इसके फलस्वरूप खलता के प्रति सामाजिक दृष्टि में भी परिवर्तन होता है । दुष्ट स्वभाव से दुष्ट न कहा जाकर कारण विशेष या परिस्थिति विशेष वश दुष्ट हो गया ऐसा कहा जाने लगा । इस मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के साथ जुड़ जाती है मानवतावादी दृष्टि । मनुष्य दुर्बल है उसकी दुर्बलता को एक मानवीय स्वीकृति देकर दोष का बहुत बड़ा अंश परिस्थिति , पर्यावरण आदि पर डाल कर खल को खल कहने का तीखापन बहुत कुछ कम हो जाता है और क्षमा तथा सहानुभूति का भाव भी जागृत होता है । इस दृष्टि से जब हम औपन्यासिक पात्रों का मूल्यांकन करने लगते हैं तो खलता किसी को दुष्ट या खल कहना भी कभी कभी कठिन हो जाता है तब कहना ही है कि मनुष्य होने के नाते दुर्बलता होना स्वाभाविक है ऐसा कह कर उसकी दुर्बलताओं का मूल्यांकन कर सकें ।

यह सत्य है कि प्रत्येक में आत्मबल समान नहीं होता । प्रकृति द्वारा दैवद्वारा , भाग्य द्वारा, परिस्थिति द्वारा, समाज द्वारा उत्पादित निष्ठुरता, अन्याय,अत्याचार,दमन अथवा आघात को सहन करने अथवा उसकी उपेक्षा करने की शक्ति सभी में ही नहीं होती । मनुष्य की शारीरिक अथवा मानसिक विकृति,कुरूपता, असमर्थता,आवश्यकता एवं दूसरों द्वारा किया गया अपमान,तिरस्कार एवं कार्य में [illegible] उन्हें निष्क्रियता को छोड़ कर पथ पर चलने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करते हैं

यही दुर्बल मन को अवांछनीय एवं अनुचित ढंग से स्थिति का मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करते हैं । जिस मनुष्य में संतोष, तितिक्षा, क्षमा, संयम आदि यथेष्ट मात्रा में नहीं होते उसके लिए हीनत्व[1], नैराश्य[2], नैरपुण्य, असफलता[3], तिरस्कार[4] दमन[5] आदि अभिशाप हो जाता है और उसे विकृति की दशा में प्रेरित करता है । वस्तु का अभाव, परिस्थिति की विषमता मनुष्य को खल नहीं बनाती वरन् विचार शक्ति का अभाव तथा अवस्थता उसे खल बना देती है । आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी मानसिक दुर्बलता को असामाजिक कृत्यों के मूलभूत कारण के रूप में स्वीकार करते हैं ।[6]

खलता का मनोवैज्ञानिक कारण क्या है कौन सी ऐसी घटनायें और प्रभाव हैं और व्यक्ति का कौन सा ऐसा आचरण है जिसमें व्यक्ति दुष्टतापूर्ण कार्य करता है मनोविश्लेषणवादियों ने इसकी व्याख्या अचेतन प्रेरणाओं और दमित मानसिक संघर्षों के आधार पर की है । आधुनिक युग में फ्रायड, युंग, एडलर आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने ढंग से मानव मनोवृत्तियों के रहस्य का उद्घाटन किया है ।

मानव व्यक्तित्व में चेतन मस्तिष्क के अतिरिक्त एक और स्तर रहता है जिसे अचेतन मस्तिष्क कहते हैं । फ्रायड की मनोवैज्ञानिक प्रणाली को इस आधार पर बांटा जा सकता है :- (१) अचेतन मस्तिष्क (२) लिबिडो (३) दमन (४) इडिपस ग्रन्थि । फ्रायड के अनुसार मानव मस्तिष्क के तीन स्तर होते हैं अचेतन, अर्धचेतन और चेतन । मनुष्य का विचार, व्यवहार और रहन सहन भी उचित अनुचित

१- चतुरसेन शास्त्री के 'हृदय की प्यास' उपन्यास का प्रवीण
२- प्रेमचन्द के 'निर्मला' का मुंशी तोताराम
३- वृन्दावन लाल वर्मा के 'कचनार' का मानसिंह
४- सियारामशरण गुप्त के 'गोद' का रामचन्द्र
५- जैनेन्द्र के 'सुनीता' का हरिप्रसन्न

6. "It is becoming generally agreed by those who are entitled to speak with authority that the criminal tends to be marked by a certain mental weakness that usually affects less markedly the intelligence than what we often improperly term the 'Moral' character, that is to say the instincts, feelings, will and conduct. p. IX.
Preface to the fourth Edition. Havelock Ellis. The Criminal.

होता है उसका मूल प्रेरक उसका अचेतन मस्तिष्क ही है, अचेतन मस्तिष्क द्वारा ही मनुष्य सत्-असत् ,उचित-अनुचित का निर्णय करता है । जाग्रत अवस्था के सभी विचार और प्रवृत्तियाँ अचेतन से अर्द्धचेतन तक होते हुये चेतन तक पहुँच जाती हैं । अन्यथा वे विचार जो निन्दनीय हों,निराशात्मक,हों, लज्जोत्पादक हों,उन्हें रोक दिया जाता है । चेतन और अचेतन के बीच जो एक विवेकात्मक शक्ति होती है वह अवांछनीय विचारों को मन में स्थान नहीं देने देती इसको फ्रायड ने दमन(subression) कहा है जो अज्ञात रूप में अपना काम करती रहती है । [१]

मनुष्य के जीवन में संघर्ष चलता रहता है यह संघर्ष चाहे चेतन स्तर का हो या सुप्त,पर ये मानव जीवन की शक्ति को क्षीण करते हैं ।

फ्रायड के अनुसार "लिबिडो " ही वह ग्रन्थि है जो मनुष्य के मस्तिष्क तथा उसके सारे व्यक्तित्व को परिचालित करती है वह कामवृत्ति है ।"यह बड़ी शक्ति-शालिनी होती है और कामवृत्ति तथा स्वार्थमूलक होने के कारण समाज की नैतिक धारणाओं से मेल नहीं खाती । फ्रायड के अनुसार लिबिडो का अर्थ बहुत व्यापक है और वह स्थूल काम भावना तक ही सीमित नहीं है । इसकी सीमा के अन्दर मनुष्य के सारे आनन्द,उत्साह पूर्ण कार्य कलाप,मित्रता व्यापार,प्रेम,घृणा जैसी मानसिक दशा वाली सब बातें आ जाती हैं ।" [२] इस प्रकार फ्रायड ने काम को मनुष्य के समस्त आचरण,व्यवहार और व्यक्तित्व संरचना के बीच मूल प्रमुख शक्ति के रूप में माना है । अतः फ्रायड के अनुसार बालक में जन्म से ही कामप्रवृत्ति के लक्षण दिखाई देते हैं ।

फ्रायड के अनुसार प्रत्येक मानसिक विकृति के मूल में दमित काम प्रवृत्तियाँ ही हैं । मनुष्य का मानसिक संतुलन इसलिए नष्ट हो जाता है कि उसकी दमित वासनायें अचेतन से छिप निकल कर चेतन के क्षेत्र में प्रवेश कर वहाँ अराजकता का दृश्य उपस्थित कर देती हैं ।" [३] प्रमुख यौन संतुष्टि की कुंठा से स्नायु रोग पैदा

१- डा० देवराज - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान पृ० ६०
२- डा० देवराज- आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान पृ ६१
३- डा० देवराज - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान पृ० ६२

का रूप भी लेती है । मनुष्य में दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने, विजय प्राप्त करने और आक्रमण करने की कामना इसी मृत्यु कामना के विभिन्न स्वरूप है ।

फ्रायड ने मन के तीन भागों का विश्लेषण किया + इड, इगो, और सुपर इगो । मनुष्य की प्रारम्भिक उमंगे, प्रेरणायें और प्रबल इच्छायें जिस प्रदेश में निवास करती है उसे इड या प्राकृतिक स्वत्व कहा गया । उसके बाद दूसरा प्रदेश है इगो का । इगो व्यक्तित्व का चेतन अंश है । यह हमारा बौद्धिक अंश है। इसकी सारी क्रियायें ज्ञात रूप में होती रहती है और यह इड के बीच से उठते हुए उच्छृंखल विपाक्तियों के समान मूल प्रवृत्तियों को सभ्य बना कर आगे बढ़ने के लिए आदेश देता है । सुपर इगो मन का वह प्रदेश है जहाँ वह कारणों की या विश्लेषण की चिंता न करके क्रिया का आदेश देता है इसे नैतिक अहं कहा गया है । इस प्रकार सुपर इगो का शासन इड और इगो पर रहता है वह एक नियंत्रक (censor) का कार्य करता है ।

इस प्रकार फ्रायड ने मनुष्य के व्यक्तित्व के अचेतन अंश को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हुए यह स्पष्ट किया कि यहाँ रहने वाली प्रेरणायें दुर्दमनीय, असभ्य, अनगढ़, क्रूर, स्वार्थ परायण और स्वच्छन्दकामी होती है । इस प्रकार वे असामाजिक और अनैतिक हो सकती है । यही मूल मनुष्य का वास्तव स्वरूप है वह उसके अचेतन पर इगो और सुपरइगो का आवरण लेकर प्रकट होती है । फ्रायड इसे कृत्रिम मान कर चलता है ।

फ्रायड के उपर्युक्त सिद्धान्तों का विस्तार मनुष्य के व्यवहारों के उन्नत आरोपण, तादात्मीकरण, उदात्तीकरण आदि में व्यक्त हुआ है । दूसरे शब्दों में मानव प्रकृति की जन्मजात प्रेरणाओं और समाज के रीति-रिवाजों द्वारा आरोपित बंधन में एक निरन्तर संघर्ष चलता ही रहता है । ज्यों-ज्यों शिशु बड़ा होता है उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रियायें, आदतों और रिवाजों के अनुसार ढल जाती है और उनका द्वारा व्यवहार प्रतिबद्ध प्रतिक्रिया (condioned response) की जाती है । उदात्तीकरण की प्रक्रिया उसकी पशुप्रेरणाओं और सामाजिक नियंत्रण को व्यक्त करती है इससे मानसिक संघर्ष की भी उत्पत्ति होती है जब जब यह मानसिक संघर्ष व्यक्ति के मन के लिए असह्य हो जाता है तब तब वह ऐसी

स्थितियाँ उत्पन्न करता है कि यथार्थ से भाग सके । यथार्थ से पलायन की स्थिति में कभी तो वह काल्पनिक संसार का निर्माण करता है ,कभी एक अत्यंत साधारण व्यक्ति अपने साथ अतिरंजित महत्व को जोड़ लेता है । मनुष्य का जो अचेतन मूलत: अशिष्ट,क्रूर और इन्द्रियलोलुप है उसका अनावृत विकास तो स्वप्न में ही होता है । फ्रायड का स्वप्न सिद्धान्त अपने में बड़ा विशिष्ट है ।

फ्रायड के अतिरिक्त उसके शिष्य तथा सहयोगी एडलर तथा युंग ने मनोविश्लेषण के क्षेत्र में कुछ अन्य दृष्टियों का विकास किया । एडलर , लिबिडो अर्थात कामभूलक शक्ति की मान्यता नहीं देता वरन् मनुष्य की विजय लालसा को सर्वाधिक महत्व देता है । व्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण अंश है उसकी महत्वाकांक्षा । अपराधत्व,वेश्यावृत्ति,मादक द्रव्यों का सेवन आदि सामाजिक बुराइयों तथा कुकर्मों को एडलर ने मनुष्य की शक्ति की इच्छा बताया है । अपराधी सोचते हैं कि हम जो भी अपराध कर रहे हैं उनसे दूसरे अनभिज्ञ हैं । यह विजय लालसा और महत्वाकांक्षा सदा ही सामाजिक जीवन से मेल नहीं खाती । हीनता ग्रन्थि (inferiority complex) का विश्लेषण एडलर ने किया । उनकी धारणा है कि विकृत अंग के कारण मनुष्य का बहुत सा अनुपयुक्त, अनुचित और अनैतिक व्यवहार आगे वाला आधार परिचालित होता है । हर मनुष्य दूसरे से महान बनने की बात सोचता है यदि उसमें एक तरह की कमी हुई तो यत्नपूर्वक वह अपनी प्रतिभा की पूर्ति और जोड़ देता है । इस प्रकार एडलर ने मानसिक विकृतियों का कारण (inferiority complex) हीनग्रन्थि को माना है । मनुष्य से जो भी समाज विरोधी कार्य होते हैं वह हीन ग्रन्थि के कारण ही होते हैं ।

युंग ने मुख्य सिद्धान्तों में फ्रायड के अधिकांश सिद्धान्तों को मानते हुए मनुष्य को दो प्रकारों में विभाजित किया गया है । बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्ति प्रसन्नचित्त,सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी लेने वाला होता है इसके अतिरिक्त वह कभी कभी विह्वलचित्त या कल्पना विहीन होता है । अन्तर्मुखी व्यक्ति विचार में तल्लीन,कल्पनायुक्त होने पर भी उसमें सामाजिकता भावात्मकता एवं सरलता की कमी होती है । बहिर्मुखी व्यक्ति अपने विचारों को

दूसरों पर लादना चाहता है उसकी सम्वेदनायें,इन्द्रियपरायण होती है,उसकी इच्छायें छिछली और नवाँक होती है । वह स्थूल बुद्धि और स्वार्थ परायण हो सकता है । वह इन्हीं अर्थों में एक संसारी जीव होता है और इसलिए दुर्व और व्यसनी होता है । अन्तर्मुखी व्यक्ति की मुख्य विशेषता उसकी अतिशय कल्पना प्रवणता और आत्मलीनता होती है इसलिए उसमें सहिष्णुता का अभाव होता है । प्रेम और घृणा के भाव बड़े सबल रूप में वर्तमान होते हैं । उसकी संवेदनायें कभी तो कला के क्षेत्र में व्यक्त होती हैं अथवा मदिरा प्रेम,यौवन सुख,ऐन्द्रियसुखोपभोग की इच्छा आदि में व्यक्त होती है । उसकी रहस्यवादी प्रवृत्ति अविश्वसनीयता और धोखेबाजी में भी फैल जाती है ।

इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान ने ने यथार्थवाद की भूमिका पर मनुष्य के व्यक्तित्व और आचरण का विश्लेषण करते हुये उसके भौतिक अस्तित्व और आचरण का संबंध घनिष्ट रूप से स्थापित किया तथा उसके अचेतन में निहित उन पशुवृत्तियों का भी उद्घाटन किया जो सामान्यतः अनैतिक और असामाजिक कही जाती थी । मनुष्य में जो अपराध प्रवृत्ति देखने को मिलती है उसका बहुत कुछ कारण दमित ग्रन्थि,हीन ग्रन्थि या मनुष्य की बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी वृत्तियाँ हैं । आधुनिक मनोविज्ञान ने मानव मन का विश्लेषण करते हुए आनुवंशिकता के साथ साथ पर्यावरण को भी अत्याधिक महत्व दिया । विशिष्ट पर्यावरण के बीच बालक के विकास में कब और कैसे अपराधी भाव घर बना लेते हैं इसका विश्लेषण आधुनिक मनोविज्ञान की विशेष देन है । अपराधी मनोविज्ञान और असामान्य मनोविज्ञान, विज्ञान की इस विचारधारा की ऐसी अद्भुत देन है कि जिसने सत और दुष्ट के प्रति समाज की नहीं वरन् न्याय की दृष्टि को भी परिवर्तित करने की प्रेरणा दी है । मैकनिकल फैंटर ने बताया है कि व्यक्ति में गतिशील प्रेरणायें होती हैं जो किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति पाना ही चाहती है किन्तु वह समाज में उन अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है जो समान रूप से अभिव्यक्ति चाहते हैं । इस तरह अनिवार्यतः संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है और पुनर्संयोजन,निरोध,संतुलन,दमन, उदात्तीकरण ,तादात्म्य , विस्थापन और प्रक्षेपण की आवश्यकता होती है ।[1]

१- बार्नस एण्ड टीटर्स - न्यू होराइजन्स इन क्रिमिनोलाजी पृ० २३६

व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की विरलता के लिए संघर्ष करता है और इस संघर्ष में बाधित व्यक्तित्व विचित्र और असाधारण आचरण का स्वरूप धारण करता है इसलिए अपराधशास्त्री यह भी मानते हैं कि सभ्यता अपराध का एक कारण है । क्योंकि वह व्यक्ति की प्रकृत आवश्यकताओं को कुंठित करके अनुचित रास्ते अपनाने की प्रेरणा देता है । ग़बन का 'रमानाथ' नागरिक सभ्यता के स्वार्थ के भाव का ही शिकार है । वह अपने अभाव को स्वीकार करना नहीं चाहता, इसलिए अनैतिक काम करता है ।

अतः यदि अपराधी के मानसिक इतिहास को देखा जाये तो पता चलेगा कि उसमें मानसिक अस्थिरता , संघर्ष, अतृप्त इच्छाएँ, विरोध, कुण्ठा और आत्मसम्मान के अभाव परिलक्षित होते हैं । सम्भव है उसकी कामवासना की तृप्ति न हुई हो और उसके दमन किये जाने पर चोरी जैसी किसी निषिद्ध पर उत्तेजनापूर्ण क्रिया द्वारा तुष्टि और अभिव्यक्ति की जाती हो या व्यक्ति का अन्तःकरण बड़ा सबल हो और उसने बड़े ऊँचे आदर्शों को अपना रखा हो जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप वह आक्रमक रूप में अपराधी क्रियाओं की ओर प्रवृत्त हो जायें ।[1]

मनोविज्ञान स्वस्थ, सामान्य और साधारण व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ ही साथ विकृत, असामान्य एवं विचित्र व्यक्तियों के मन का भी विश्लेषण करता है । कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही शंकालु प्रवृत्ति के होते हैं किसी पर विश्वास नहीं करते , भ्रमों के शिकार होते हैं । कुछ लोग चोरी व्यभिचार आदि से बाज नहीं आते मंद बुद्धि होते , हीन भावना ग्रस्त होने के कारण वह अपने को तुच्छ समझते हैं और दुष्टतापूर्ण कार्य करने लगते हैं । कुछ झगड़ालू प्रवृत्ति के होते हैं । कुछ में संवेगों का संतुलन ~~नहीं होता~~ (emotional balance) नहीं होता । दुःख सुख में वह समान भाव नहीं रख पाते । कुछ व्यक्ति डर [illegible] भ्रम और तनाव का शिकार बनते हैं , ऐसी असाधारण मनोवृत्ति के लोगों का जीवन समाज के लिए बोझ और परेशानी बन जाता है ।

मानसिक संघर्ष और विक्षोभ से व्यक्ति के चरित्र में कई प्रकार के विकार और दोष पैदा हो जाते हैं । भीरुता, चिन्ता, मदिरापान और मनोविकार जन्म से नहीं आते उनका मूलाधार [illegible] का प्रभाव होता है ।[2]

१- [illegible] राम भाटिया - असामान्य मनोविज्ञान पृष्ठ [illegible]

२- [illegible] राम भाटिया - असामान्य मनोविज्ञान पृष्ठ [illegible]

तिरस्कार भी मनोवैज्ञानिक खलता का सबसे प्रबल माध्यम है । जब कोई मनुष्य दूसरे का अपमान या तिरस्कार करता है तब तिरस्कृत के मन में विद्रोह का प्रबल रूप जाग्रत तो होता है किन्तु कमजोर होने के कारण वह उससे बदला नहीं ले पाता अतः प्रतिकार की भावना उसके अचेतन मस्तिष्क में घर कर लेती है और वहाँ से मौके की तलाश करती है जैसे ही अवसर उपस्थित होता है उसकी दमित भावना अचेतन से निकल कर चेतन पर प्रहार करती है और व्यक्ति दुष्टता पूर्ण तथा असामाजिक कार्य करने लगता है जैसे दूसरों को अकारण दुखी करना, सताना, बरबाद कर देना आदि ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने पर्यावरण के महत्व को विशेष रूप से स्वीकार किया है । [1] खलता के बहुरंगी कारण उन विशिष्ट परिस्थितियों में पाते हैं जिसमें व्यक्ति विशेष का विकास, पालनपोषण और संवर्धन होता है । समाज में बालक जैसे वातावरण में जन्म लेता है उसी के अनुसार उसका संस्कार बनता है । [2] संस्कार और वातावरण भी मनुष्य के चरित्र गठन पर

---

1. "Life is a neverending struggle between personality and environment . If no adjustment is achieved, the personality is altered by the resultant conflicts. If emotional adjustments can be made to meet existing and new situations smoothly, we are said to mature normally. Failing this we maybe antisocial or even undergo personality disintegration." Crime and Mental Hygiene" by Frederick Maccurdy, M.D. Federal probation P.19 March 1960.

2. "...recent studies have indicated that mental illness is based upon personality disturbances and emotional attitudes developed in early childhood." P.20. Federal Probation March 1960.

गहरा प्रभाव डालते हैं। समाज में एक ही वातावरण में पलने पर भी कभी कभी दो बालक दो भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व लेकर उत्पन्न होते हैं। दोषपूर्ण सामाजिक स्थिति में अपराध पनपने की अनुकूल भूमि होती है। घर का वातावरण दूषित होने या घर में विमाता के होने, प्यार न मिलने के कारण भी बालक दुष्ट बन जाते हैं। कुछ लोगों को बाल्यावस्था में अत्यधिक दुलार[1] किया जाता है और मनमानी स्वतंत्रता दे दी जाती है और बाद में उनके साथ कड़ाई बरती जाती है जिससे उनके मन में विरोध की भावना उत्पन्न होती है और थोड़ी सी स्वतंत्रता मिलने पर वह अपने कर्तव्य को भूल कर उच्छृंखल हो जाते हैं और अपराध करने लगते हैं। यदि उनका अपराध पकड़ा गया तो वह जानबूझ कर क्रूरतापूर्ण कार्य करने लगते हैं। मातापिता के आपसी झगड़े और चरित्र हीनता के कारण भी बालक में अपराध भावना का जन्म होता है। मनुष्य जब वातावरण को अपने अनुकूल नहीं बना पाते तो वह दुष्टतापूर्ण कार्य करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त बालक के प्यार की उपेक्षा, धनाभाववश बालक की आवश्यकताओं की उपेक्षा, कुटुम्ब के अन्य सदस्यों की तुलना में बालक को हीन बताना, घर का शिथिल अनुशासन माता पिता का व्यसनी होना[2], अश्लील का प्रेमी होना, दुष्ट मित्रों का साथ,[3] छोटे बच्चों का फैक्टरी या अन्य उद्योगधन्धों में लग जाना (जिससे उनमें [illegible] प्रेम, शराब, जुआ, सिगरेट आदि की लत) आदि अनेकों कारण उनमें अनैतिक व्यवहार की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है। उचित मनोरंजन के अभाव, पाठशाला में पाठकों का अनुचित व्यवहार, मां बाप की मृत्यु, परिवार के सदस्यों का कटुतापूर्ण व्यवहार आदि व अन्य भी अनेक कारण हैं जिसके फलस्वरूप मनुष्य में अनैतिक और असामाजिक स्वभाव का विकास हो जाता है। उसकी मनोवृत्ति सत् कार्य के बजाय असत् कार्य में प्रवृत्त हो जाती है इस प्रकार परिवेश और परिस्थिति मनुष्य को दुष्ट बनाने के लिए उत्तरदायी होती है। सिरिल बर्ट के अनुसार अपराधी जन्मजात

१- प्रेमचन्द के वरदान का कमलाचरण, कौशिक के मां का श्यामबाबू

२- उग्र के शराबी का पारसनाथ, पिता के शराबी होने के कारण शराब पीने लगा था।

३- श्रीनिवासदास के परीक्षागुरु का मदनमोहन, लज्जाराम शर्मा के धूर्त रसिकलाल का सोहनलाल आदि।

नहीं होते वरन् बनाये जाते हैं । वंशानुगत वृत्तियों की अपेक्षा वातावरण ही अपराधत्व के सृजन में मुख्य है ।"[1] मोरेल ने बताया कि मानव के सामान्य स्वरूप से जब विकृत अपसरण की स्थिति उत्पन्न होती है तभी व्यक्ति अथवा परिवार में ह्रास दिखाई पड़ता है । इस ह्रास के कारण नशा, अकाल, सामाजिक परिवेश, उद्योग, अस्वस्थ व्यवसाय दारिद्र्य वंशानुक्रम आदि हो सकते हैं ।[2]

यहाँ पर यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान बाल्यकालीन दमित इच्छाओं (inferiority complex) आदि के मूल में जहाँ मनुष्य के अनाचार को पाता है वहां उसके शारीरिक विकार को भी एक महत्वपूर्ण कारण मानता है । शारीरिक दोष उसकी क्रियाओं में एक ऐसा मोड़ देने की प्रेरणा देता है जिससे मनुष्य उसे ढक सके । यह प्रेरणा से कभी तो वह महत्वाकांक्षा की सीढ़ियां चढ़ता हुआ उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है और कभी अपराधों के गर्त में गिर जाता है । शारीरिक कुरूपता उनको जिस उपहास का कारण बना देती है उस तिरस्कार की कुण्ठा उन्हें अपराध की, अथवा हिंसा की, दमन की, अपने महत्व को स्थापित करने की प्रेरणा देती है । यों तो ४५० ई० पूर्व हिप्पोक्रेटस ने विभिन्न प्रकार की शरीर रचना का संबंध विभिन्न व्यक्तियों के स्वभाव और अभिव्यक्ति से जोड़ा था किन्तु आधुनिक युग में जर्मन मनोविश्लेषण विशेषज्ञ क्रेश्मर ने अपनी पुस्तक "फिजिक एण्ड कैरेक्टर" में शारीरिक गठन का

१- कौशल कुमार राय - अपराध और दंड शास्त्र पृ० ६६

2. Morel regarded crime as one of the forms taken on by degeneration in the individual or the family and degeneration he defined as "a morbid deviation from the normal type of humanity."The x causes of degeneration which he recognised were intoxications,famines,social environment,industries,unhealthy occupations,moral poverty heredity,pathological,tratis-formations,moral causes. P.35. The criminal.Havelock Ellis.

संबंध चारित्रिक विशेषताओं से स्थापित किया है । अमरीकी मानवतत्व विशेषज्ञ तथा श्री मनोवैज्ञानिक डब्लू एच० शेल्डन ने शरीर रचना का व्यापक और विशिष्ट संबंध सामान्य व्यक्तित्व से जोड़ते हुये तीन प्रकार के स्वभाव बताये । गाल का भी निश्चित मत यही था कि मनोगत जीवन के तथ्य शारीरिक रचना में निहित होते हैं ।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में अर्थ का विशेष महत्व है । अतः अनेक दुष्कृत्यों के मूल में अर्थ की समस्या को देखा जा सकता है । आधुनिक समाज शास्त्रियों की दृष्टि में तो यह नाना चारित्रिक विकृतियों का एक अत्यंत महत्व पूर्ण कारण है । कोर, तुराती, बेलाण्टिया, लेवी लिकों, बॉन्गर आदि अपराध शास्त्री यह मानते हैं कि अपराधों के मूल में मुख्य कारण आर्थिक व्यवस्था की जटिलता, नगरों में कुछ का अत्याधिक गरीब और कुछ का अत्याधिक सम्पन्न होना, व्यापार में असफलता, और मूल्यों का बढ़ना तथा पूँजीवादी व्यवस्था आदि हैं । हैकरवाल ने भी अपनी पुस्तक " एकनामिक एण्ड सोशल आस्पेक्ट्स आव क्राइम इन इंडिया " में बड़े विस्तार से विविध नगरों में होने वाली उपज से ठगी, चोरी, अपहरण, हत्या आदि की घटनाओं को संग्रह करके यह सिद्ध किया है कि इन दुष्कृत्यों की जड़ में मूल कारण आर्थिक है ।[1] बान्गर ने तो यह भी कहा कि पूँजीवादी व्यवस्था चलने पर ही प्रतिस्पर्धा जनित घृणा और ईर्ष्या के भावों से उत्पन्न अपराधों का शमन सम्भव है । इसी से सम्बद्ध बेकारी की भी समस्या है । अपराधशास्त्री यह मानते हैं कि कार्यरत आदमी बेकारों की अपेक्षा कम अपराध करता है । बेकारी एक ओर फालतू समय देती है और दूसरी ओर आर्थिक संकट । इन दोनों के संयोग से कुविचारों की प्रवृत्ति होना सम्भव है । "बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ।" यह दरिद्रता सारे गुणों का नाश कर देती है । धनहीनता के कारण ही मनुष्य में हिंसा, चोरी, डकैती, स्वार्थ नाना प्रकार के व्यभिचार और अनाचार पनपते हैं[2]

१- विजयशंकर हैकरवाल - एकनामिक एण्ड सोशल आस्पेक्ट्स आव क्राइम इन इंडिया अध्याय ३

२- लक्ष्मीधर वाजपेयी - सदाचार और नीति पृ० १५६

साधन हीनता से व्याकुल लोग उदरपूर्ति के लिए चोरी करते पाये जाते हैं । फ्रेडिनारिच तथा स्वॉर्ट का मत है निर्धनता स्वयं अपराध - प्रवर्तन के लिए पर्याप्त कारण है ।[1]

यहाँ यह भी कहना असंगत न होगा कि कभी कभी दारिद्र्य और मजबूरीवश भी मिल के मजदूर या गरीब लोग अपनी माँग पूरी करने के लिए हड़ताल या आन्दोलन[2] कर बैठते हैं जो नैतिक दृष्टि से असंगत न होने पर भी असामाजिक कृत्य कहा जा सकता है और उन्हें छल की संज्ञा दी जा सकती है पर ऐसे पात्रों के प्रति लेखक की सहानुभूति होती है वह प्रायः उसे छल नहीं मानता । लेखक की दृष्टि राष्ट्रीयता और मानवता के भावों से प्रेरित होती है ।

जहाँ दारिद्र्य, चोरी, हिंसा आदि का प्रेरक हो सकता है, वहां धन की प्रचुरता भी मनुष्य को कुपथ पर ले जाने में सहायक होती है । धन वरदान भी है और अभिशाप भी । धन दान एवं धर्मानुष्ठान की सम्भावनाओं में वृद्धि अवश्य कर देता है परन्तु प्रायः दान और धर्मानुष्ठान फलाशा से रहित नहीं होता। स्वार्थवश किया हुआ कोई भी दान अथवा धर्मानुष्ठान पुण्य अर्जन नहीं करता । फलासक्ति विहीन दान एवं धर्मानुष्ठान ही पुण्य संचय करते हैं । धन विषय भोग के साधन एवं सामग्री को एकत्र करने में सहायक होता है । धन विषय पिपासा को तीव्र कर देता है । इन्द्रियासक्ति धनी-मानी उचित-अनुचित पाप - पुण्य के विवेक को नष्ट कर देती है । बुद्धि को भ्रष्ट कर धन[3] खलता का कारण बन जाता है। इतिहास साक्षी है कि धन ने प्रतिष्ठा स्थिर रखने में भले ही सहायता की हो किन्तु

१- द [illegible] पृ० ३५-३६

२- प्रेमचन्द के कर्मभूमि का अमरकान्त अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह करता है तो लेखक उसे छल नहीं मानता ।

३- अमृत लाल नागर के निर्मोहिया का 'श्यामाचरण'
पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के अधखिला फूल का 'कामिनी मोहन'
जयशंकर प्रसाद के तितली उपन्यास का 'श्यामलाल'।

चरित्र के उत्कर्ष में धन ने कभी सहायता नहीं की है । रूसी कवि इवान इवानोविच कोज[ोफ] का मत है "धन एक अथाह सागर है जिसमें मर्यादा अन्त:करण और सत्य डूब जाते हैं । [1] विश्व प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर का मत है कि "मानवता के लिए सोना अधिक हानिकारक विष है क्योंकि यह किसी भी प्राणघातक औषधि की अपेक्षा इस घृणित संसार में अधिक हत्यायें करता है ।" [2] विष केवल प्राण का अन्त करता है धन आत्मा अर्थात् विवेक का हनन करता है । सम्पत्ति में कितनी कामुकता कितनी भोगप्रियता, कितनी व्यवहार कुशलता तथा हृदय की कितनी अस्पष्टता होती है इसका हम एक मात्र अवलोकन गोदान में "मिस्टर खन्ना" परीक्षा गुरु में "मदनमोहन" है, अधखिला फूल में "कामिनी मोहन" के जीवन के अध्ययन से ही कर सकते हैं । वैभवशाली व्यक्तियों की मित्रता किस परिधि तक सीमित रहती है इसका एक मात्र निरूपण हमें प्रेमचन्द के उन पात्रों से मिल जाता है जिसका कपट मिस्टर खन्ना और राय साहब के वार्तालाप होता है । [3]

धनाभाव अर्थात दरिद्रता भी उन्हीं चारित्रिक दुर्गुणों को उत्पन्न कर सकती है जितनी सम्पन्नता । पर इनमें थोड़ा अन्तर अवश्य है । चारित्रिक दृष्टि से पतन की सम्भावनायें जितनी सम्पन्नता उपस्थित करती है उतनी दरिद्रता नहीं । दरिद्रता उतनी अभिशाप नहीं जितनी वह वरदान है । दरिद्रता जहाँ मनुष्य को सांसारिक सुखोपभोग से वंचित कर देती है वहीं वह उसे साहस धैर्य, त्याग, क्षमा, सहिष्णुता, परदुःखकातरता आदि गुणों से युक्त भी कर देती है । उपन्यासों में हमें धनाढ्यता की स्थिति में ही अपराध के विकास के उदाहरण अधिक मिलते हैं अपेक्षाकृत दारिद्र्य की दशा में । दरिद्रता का समागम जब अविवेक से होता है तभी अपराध जन्म लेता है ।

---

1. "Money is a bottomless sea in which Honour, conscience and truth may be drowned." (KOZOF).

2. "Gold is worse to men's souls doing more murder in this loathsome world than any mortal drug." (Shakspeare).

3- डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० ८२

फ्रेंच निबंधकार एवं नीतिज्ञ जीन० डी० ला० ब्रूयेरी का मत है "यदि दरिद्रता अपराधों की जननी है तो विवेक की आवश्यकता उसका पिता ।"[1] अविवेकी मनुष्य ही अनायास ही पथभ्रष्ट होता है । दरिद्रता जब असंतोष से युक्त होती है तो वह अत्यन्त विकृत हो उठती है । ऐसी स्थिति में वह मानव को किसी भी कुपथ पर ले जा सकती है । ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं जहाँ दरिद्रता ने मनुष्य को चोर बना दिया है । दरिद्रता बहुधा मनुष्य को गुण और आत्मा से वंचित कर देती है और आवश्यकतावश यह मनुष्य को बुराई करने की शिक्षा देती है ।

सामाजिक कारणों की ही व्याख्या करते हुये हमारा ध्यान अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, धर्मान्धता, कुसंग और अशिक्षा पर भी जाता है, जिनकी वजह से व्यक्ति खल बन जाते हैं ।

अशिक्षा खलता का प्रमुख कारण है । निर्धन और बुरे परिवार में पले व्यक्ति बहुधा अशिक्षित रह जाते हैं और विवेक की अविकसित स्थिति में अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं । अशिक्षित[3] व्यक्तियों में प्राय: अपराध की सम्भावनायें अधिक होती हैं । नैतिक व और अनैतिक कर्म के निर्णय की शक्ति के कारण शिक्षित और सभ्य पुरुष में अपराध की सम्भावनायें कम हो जाती हैं जब कि अशिक्षित व्यक्ति भावों और विचारों की कमी के कारण उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाते जिससे चारित्रिक पतन मौलिक नहीं होता । व्यक्ति पर शिक्षा का प्रभाव परोक्ष तथा अपरोक्ष दोनों रूप में पड़ता है । जब मनुष्य अशिक्षा के कारण जीविकोपार्जन के लिए अनैतिक कार्य का सहारा ले लेता है । शिक्षित मनुष्य आत्म-निर्भर होता है जब कि अशिक्षित मनुष्य बुद्धि के अभाव में दूसरे का अवलम्ब खोजता है। अशिक्षा की स्थिति में चारित्र्य संस्कार नहीं हो पाता , यही कारण है कि मदनमोहन, श्यामाचरण, कामिनी मोहन जैसे लोग अपने धन का प्रयोग व्यापार में करते हैं।

१- द साइक्लोपीडिया ऑफ कोटेशन्स

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के अलका उपन्यास का 'महादेव' प्रेमचन्द के सेवासदन उपन्यास के 'दरोगा कृष्णचन्द्र' ।

३- बालकृष्ण भट्ट के सौ अजान एक सुजान का 'बसंता' क्रूर और अशिक्षित है ।

शिक्षा जहाँ मनुष्य को अपराध की ओर अग्रसर करने से रोकती है वहीं कभी कभी वह अपराध करने का चातुर्य भी प्रदान करती है । गैरोफैलो के अनुसार कुछ ऐसे अपराध हैं जिन्हें अशिक्षित व्यक्ति कर ही नहीं सकता जैसे रुपये पैसे का गबन [1], कागजों की जालसाजी[2] । इस प्रकार का अपराध तीक्ष्ण बुद्धि का व्यक्ति ही कर सकता है मूर्ख उसकी उपयोगिता को समझ नहीं सकता फिर भी शिक्षित मनुष्य में खलता की सम्भावनायें कम होती हैं ।

कभी कभी कुसंग भी व्यक्ति की खलता के कारण होते हैं । चोरों, लुटेरों,[4] गिरहकटों, ठगों [5] तथा वेश्याओं [6] के मध्य रहने वाला व्यक्ति उन सभी बुराइयों का शिकार हो जाता है जिनको वह प्रतिदिन अपने चारों ओर घटित होते देखता है । आत्मसंयम की कमी के कारण बुराइयों के मध्य रहकर भी बुराई न करने की विवेक बुद्धि का अभाव हो जाता है । मानसिक रूप से दुर्बल होने के कारण वह उनकी बुराइयों से उबर नहीं पाता, समझ कर भी उनसे विलग होने में अपने को असमर्थ पाता है । होटल, सिनेमा, क्लबघर, जुआ घर, मदिरालय आदि स्थानों का भी व्यक्ति के चरित्र पर बुरा असर पड़ता है । यह सम्भव है कि इन स्थानों के कारण खलता की सम्भावनायें उतनी नहीं होती पर ये स्थान व्यक्ति पर अपना असर न डालें यह असम्भव है । चलचित्र में चित्रित हत्या, चोरी, ठगी, व्यभिचार के नये नये तरीकों को देखकर व्यक्ति अपने जीवन में भी इन हथकंडों का प्रयोग करने की सोचने लगता है, जब वह देखता है कि चोर कितनी सफलता से चोरी करके भी पकड़ा नहीं जा सका है तो यह भावना उसे अपराध की ओर ले जाती है वासनात्मक और गंदे चित्र भी उसकी कुप्रवृत्तियों को भड़का देते हैं जिन्हें वह सांसारिक जीवन में अपनाता है । चित्र देखने की लत बालक को चोरी की ओर प्रवृत्त करती है ।

१- प्रेमचन्द के गबन उपन्यास का रमानाथ

२- गोपालराम गहमरी के जासूस की डाली का रामनाथ

३- गैरोफैलो - क्रिमिनोलॉजी पृ० १३८-१३९

४- पं० गोविन्द वल्लभ पंत के "प्रतिमा" उपन्यास का भैरवन

५- पं० चन्द्रशेखर पाठक के 'अमीर अली ठग' उपन्यास का अमीर अली

६- प्रेमचन्द के सेवासदन उपन्यास की सुमन, भोली वेश्या से प्रभावित

धार्मिक अंधविश्वास भी कभी कभी छलना के कारण होते हैं। भारत में सामाजिक रीति-रिवाज में धर्म एवं आदर्श में इतनी रूढ़िवादिता या अंधविश्वास घर कर गया है कि उनके कारण ही अनेक अपराध होते हैं। धार्मिक अंधविश्वास के कारण मनुष्य जब अपने विचारों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहता, परम्परा की लीक पीटता है[1] तब वह अनायास ही छल की श्रेणी में आ जाता है जैसे शुद्धीकरण द्वारा हिन्दू जाति में पुनः प्रवेश करने की परम्परागत भावना में परिवर्तन न लाना भी रूढ़िवादिता का प्रतीक है। इसी प्रकार नर-बलि पशुबलि, आत्मबलि, बालविवाह, बालहत्या, देवदासी-प्रथा, सती-प्रथा[2], जाति-प्रथा आदि किसी समय धर्म के अंग थे किन्तु वर्तमान बौद्धिक चेतना के साथ इस रूढ़ि किन्तु नृशंस विचार धारा में परिवर्तन आ चुका है। आज के युग में इन्हें अनैतिक और दंडनीय कर्म कहा जाता है। जो व्यक्ति अपने विचारों में परिवर्तन नहीं करता वह समाज के लिए बोझ बन जाता है और हम उसे दुष्ट तक करार कर देते हैं। विधवा विवाह न होने के कारण भी समाज में अपराध जन्म लेता है। अनैतिकता, गर्भपात, अनाचार की सम्भावना बढ़ जाती है। वेश्याएं और अपराधी यदि अपने जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से समाज में सम्मिलित भी होना चाहें तो वह समाज को मान्य नहीं, इसलिए भी वेश्यायें और अपराधी विवशता वश अवैध पूर्ण काम करते रहते हैं। संतान इच्छा[4] वश भी व्यक्ति पाप की ओर अग्रसर होता है।

अन्त में पुनः विवेक की बात कह कर ही हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। बौद्धिक हीनता अथवा क्षीण बुद्धि की परिस्थितियों के दुष्प्रभाव को ग्रहण करती है। नृशंस दारिद्र्य अथवा अन्य दुष्प्रभाव से युक्त परिस्थितियों में भी अपराध

१- वृंदावनलाल वर्मा के 'प्रत्यागत' उपन्यास का 'मंगल भिखारी'
२- किशोरी लाल गोस्वामी, कन्हाराम शर्मा, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के पात्र इस परम्परागत रूढ़िवादी विचारधारा का शिकार दिखाई देते हैं।
३- वृंदावनलाल वर्मा के 'प्रेम की भेंट' की 'उजियारी'
४- किशोरी लाल गोस्वामी के 'माधवी माधव वा मदनमोहिनी' की 'चतुरा'
५- प्रेमचन्द के 'सेवासदन' की 'सुमन', जो भोली वेश्या को अपना आदर्श बनाती है।
६- जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' की किशोरी पुत्र इच्छा के कारण देवनिरंजन से अवैध संबंध स्थापित करती है।

मनोबल से सम्पन्न व्यक्ति प्रभावित नहीं होता । यह भी कह सकते हैं बुद्धि से सबल व्यक्ति ही प्रतिकूल परिस्थितियों में ऊपर उठ पाता है किन्तु अपराधी में जो प्राय: क्षीण बुद्धि होते हैं इतनी शक्ति नहीं होती कि वे अवरुद्ध इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए नैतिक माध्यमों का ही चुनाव करें । जर्मनी के मन: चिकित्सक ग्रुहमन ने इच्छा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए इच्छा की प्रवृत्ति की अव्यवस्था को तीन रूपों में देखा - (१) जन्मजात नैतिक मंदबुद्धि (२) जन्मजात संकल्प-दुर्बलता (३) नैतिक मूर्खता । [१] रसबर्ट मार्टेल ने भी माना कि अपराध की उत्पत्ति मानसिक अध:पतन से होती है ।

खल का व्यक्तित्व और स्वभाव

व्यक्तित्व से अभिप्राय Individuality एवं Personality है । मनुष्य के व्यक्तित्व में उसके स्वभाव, व्यवहार क्रम, वेशभूषा केशविन्यास, आचारविचार, बोलचाल तथा हाव भाव आदि सभी सम्मिलित हैं । सामान्यत: खल का व्यक्तित्व अपनी कुछ ऐसी विशेषताएं रखता है जिनके कारण वह समाज के अधिकांश और सामान्य प्राणियों से कुछ भिन्न हो जाता है । उसके व्यक्तित्व के प्राय: सभी अंगों में उसके स्वभाव का वैशिष्ट्य प्रकाशित होता है क्योंकि न केवल उसके मनोभाव और चेष्टा वरन् उसकी मुखाकृति वाणी और व्यापारों में भी उसकी प्रकृति का उद्घाटन होता है अत: जब हम अपराधों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने चलते हैं तो मुख्य रूप से उसके व्यक्तित्व के बाह्य तथा आभ्यंतरिक पक्ष पर दृष्टिपात करते हैं । [२]

प्राय: देखा गया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का बाह्यपक्ष उसके आभ्यंतरिक पक्ष का प्रतिबिम्बन करता है । प्रसाद ने जो बाह्य सत्ता के सौन्दर्य के लिए

१- हेवलाक एलिस - द क्रिमिनल पृ० ४२

2. Federal Probation, March 1960. - Community responsibility in crime control by - O.W.Wilson. P.6.

कही थी - "हृदय की अनुकृति बाह्य उदार" यही बात अपराधों के संबंध में भी ठीक उसके विपरीत अर्थों में लागू होती है जब हम देखते हैं कि होमर का अपराध थैसाइटस नितान्त बदसूरत विकलांग कद तथा कम बालों वाला भीड़े सिर वाला व्यक्ति है।

मनुष्य की शारीरिक रूपाकृति के आधार पर उसके व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। सीजर लाम्ब्रोसो महोदय के अनुसार संकीर्ण ललाट लम्बे कान, चौड़ा जबड़ा, शरीर पर अत्याधिक घने बाल अथवा बहुत कम बाल, पीड़ा सहने की बहुत कम तथा बहुत अधिक क्षमता चेहरे पर असमय में ही झुर्रियां आदि अपराधी चरित्र की विशेषता है। लाम्ब्रोसो के अनुसार ठग के चरित्र में कुछ जन्मजात विशेषताएं होती हैं जैसे जिस स्थान या जाति का अपराधी होगा वहाँ के निवासियों का आकार प्रकार भिन्न होगा। जबड़े तथा गाल की हड्डियाँ अधिक बड़ी होती। आँखों में दोष होना, कान का असाधारण आकार छोटा या बड़ा - या चिम्पैन्जी की तरह होना। चोरों की म नाक चपटी, मुड़ी हुई अथवा ऊपर की ओर मुड़ी हुई होती है तथा हत्यारों की नुकीली अथवा फूले हुए नथुनों से नाक का छोर नुकीला और उठा हुआ होता है। होंठ मांसल, फूले और आगे को उभड़े हुए होते हैं। ठुड्डी पीछे की ओर झुकी हुई या असाधारण रूप से लम्बी होती है। पसलियों की हड्डियों में त्रुटि, अँगुलियों की संख्या अधिक तथा सिर के विभिन्न भागों में असमानता पाई जाती है।[2]

लाम्ब्रोसो के सिद्धान्त को गोरिंग, डा० हिलीन और प्रो० गाल्ट आदि स्वीकार नहीं करते क्योंकि शारीरिक लक्षणों के आधार पर ठग को नहीं पहचाना जा सकता फिर भी लाम्ब्रोसो के सिद्धान्त को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस मत के हैं कि अपराधियों के कुछ कुरूप चेहरे

१- लाम्ब्रोसो सीजर - क्राइम इट्स काजेज एण्ड रेमिडीज पृ० ३०० (१९१८)

२- शीतल कुमार राय - अपराध और दंड शास्त्र पृ० ५५

नितान्त विरल होते हैं ।[1] पुराण कथाओं में राक्षस वर्ग की कुरूपता (बड़े बड़े दाँत, सिर पर सींग, दसशिर, बड़े बड़े नाखून इत्यादि साथ) की परिकल्पना का आधार उनकी कुप्रवृत्तियाँ और उनकी पाप वृत्ति ही है । जिन उपन्यासों का हमने अध्ययन किया है उनमें लेखक की प्रवृत्ति प्राय: यही रही है कि आकृति की विचित्रता और कुरूपता के साथ खलता को सम्बद्ध करते हैं । बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान" उपन्यास के खलपात्र "बसंता" के रूप वर्णन से ही उसके व्यक्तित्व का परिचय मिल जाता है जैसे - "नाक चपटी होंठ मोटे, आँखें घुच्ची, माथा बीच में गहरे दार, भेदरा गोल, रंग काला मानो अंजन गिरि का एक टुकड़ा हो । पढ़ाई में काला अक्षर भैंस बराबर था ।"[2]

मनुष्य की मुखाकृति के द्वारा उसके संवेगों और मनोवृत्ति का भी पता चलता है । मनुष्य के आनन पर विराजमान भाव भी उसके रूप पर प्रभाव डालते हैं । आनन चरित्र अथवा अन्य आन्तरिक भावों का दर्पण है । रोमन कवि ओविड का नैतिक भावों के प्रति यह संकेत "मुखाकृति से अभ्यंतर अपराध कैसे प्रकट हो रहा है अत्यन्त सत्य है ।"[3]

ट्रीयान एडवर्ड्स का मत है कि रूप आत्मा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है । रूप आन्तरिक चरित्र और भावना का बाह्य ढाँचा है । मुख पर आये हुये भाव चाहे वह प्रेम के हों चाहे घृणा के हों बड़ी आसानी से पढ़ लिये जाते हैं ।[4]

---

1. "Beautiful faces it is well known are realy found among criminal's." P. 86-7. The Criminal by Havelock Ellis.

२- बालकृष्ण भट्ट - सौ अजान एक सुजान पृ० ३४ छठा सं० संवत १९९२ वि०

३- "How in the looks does conscious guilt appear." (Ovid).

बिहारी ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए एक स्थान पर कहा है कि नैन मन की बात कह देते हैं - झूठे जानि न संग्रहै मन मुँह निकसे बैन ।
याही तें मानहु किये बातनु कौं बिधि नैन ।।

4. "Features are the visible expression of the soul-the outward manifestation of the feeling and character within." Tryon Edwards.

वेशभूषा भी व्यक्ति के चरित्र को प्रगट करती है । रुचि के अनुसार ही व्यक्ति वस्त्र धारण करता है । खल के मिथ्याभिमान, आत्मप्रदर्शन का एक मुख्य प्रतीक उसकी वेशभूषा है । बार्ज बर्ट ने विभिन्न देशों के अपराधियों का अध्ययन करके यह पाया कि "लुटेरे चोर प्राय: शौक तथा भड़कीली वेशभूषा में रुचि रखते हैं ।"[1] आध्यात्मिक लवाटर जान कैस्पर लिवस का मत है, "जिस तरह आप अपने शरीर के साथ व्यवहार करते हैं उसी प्रकार अपने मकान अपनी गृहस्थी अपने शत्रु और अपने मित्र से भी करते हैं, परिधान आपके गुणों की तालिका है ।"[2] [3]कृष्ण चरण जैन के 'मंदिर दीप' उपन्यास का पात्र नागरदास अपनी वेशभूषा से ही अपने खल व्यक्तित्व का परिचय दे देता है जैसे -"बड़ी चिपके हुये फ्रेम वाली ऐनक लाल कैसर और पठानों वाली बड़ी कुल्ला पगड़ी पहने तेल और इत्र में बसा यह नौजवान कमीसा किताबों का पूरा बोझ लेकर कालेज आता है ।"[3] जिस तरह मनुष्य की रुचि उसके वस्त्रों में प्रगट होती है उसी प्रकार की उसी स्तर की रुचि उसकी अन्य व्यवहारों में जैसे अश्लील पुस्तकों के पढ़ने, अधिक नटक, मकौले, कपड़े इस्तेमाल करने, अश्लील गाना गाने, या भद्दी तस्वीरों को टांगने से मिल जाती है । परिधान के साथ साथ सौन्दर्य प्रसाधन, आभूषण और उनके धारण का ढंग भी चरित्र का परिचय दे देता है । भौतिक दृष्टि से व्यक्ति और उसकी रुचि एवं कार्य के बीच एकता, प्रयोजन और उसकी प्रेरणा को समझने की कुंजी है ।

१- हैवलाक एलिस - द क्रिमिनल पृ० १५४, ५५

2. "As you treat your body, so your house, your domestics your enemies your friends-dress is the table of your contents." Lavater. (A Cyclopedia of Quotation.)

३- कृष्ण चरण जैन - मंदिर दीप पृ० ४३

पात्र की वाणी मृदु है अथवा कठोर , पात्र में कितनी सौम्यता अथवा चंचलता है उसमें कितनी स्वच्छंदता एवं विनम्रता है ये तत्व भी चरित्र निर्धारित करते है । खल में मृदुता एवं सौम्यता अपने सत्य रूप में कभी नहीं दिखाई करती। खल में स्वच्छता एवं विनम्रता भी दुराव के आवरण में ढकी रहती है । "सभ्यता के आवरण में मनुष्य ने अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को ढँक अवश्य लिया परन्तु उसके अचेतन मन में वे अत्यन्त सजग रूप से विद्यमान है जो थोड़ा भी अवसर पाकर गेंद की भाँति उछल कर बाहर आने का प्रयत्न करने लगती है ।"[1] ऋषभ चरण जैन के `मंदिर दीप ` उपन्यास के खलपात्र नागरदास की बातचीत से ही उसके दुष्टतापूर्ण चरित्र का परिचय मिल जाता है जैसे -"क्या,इस बीसवीं सदी में परोपकारियों के जमघट के बीचो बीच जवानी के थपेड़े खाते हुये पिये-पिलाये और जिन्दा रहना | ---------- भला गौर तो करो श्यामा,यह तुम्हारी कैसी बेवकूफी है ।"[2] आपस की बातचीत से उसका व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है ।

मनुष्य के शरीर से संबंध रखने वाली आदतें भी उसके व्यक्तित्व का अंग होती है । कभी कभी मनुष्य में कुछ ऐसी शारीरिक आदतें होती हैं जिनसे उसका व्यवहार बिल्कुल विक्षिप्त हो जाता है जो वाणी में,मुद्राओं में तथा नानाप्रकार की आंगिक चेष्टाओं में व्यक्त होता है । उंगली का चटकाना,होंठ को दाँत से दबाना, आँखें झुका कर देखना,कुटिलतापूर्वक मुस्कराना,होठों को विचित्र ढंग से मरोड़ना पैर हिलाना आदि आंगिक चेष्टायें होती हैं । प्रतापनारायण श्रीवास्तव के `विदा ` उपन्यास के मिस्टर वेबस्टर अपने विचित्र ढंग से होठों को मरोड़ते हैं[3] जिससे उनके चरित्र की कुटिलता प्रकट होती है । अनुपलाल मंडल के `निर्वासिता ` का श्यामलाल,

---

१- डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० ३३० तृ० सं०

२- ऋषभ चरण सि जैन - मंदिर-दीप पृ० ६३

३- उसके साथ होठों की मरोड़ भी बड़ी विचित्र है । जब वह होठों को मरोड़ते हैं तो हृदय में एक भय का संचार होता है ---------- । पृ० १८८

इलाचन्द्र जोशी के 'लज्जा' का डा० कन्हैयालाल कुटिलता पूर्वक मुस्कुराते हैं जिससे उनके चरित्र की धृष्टता प्रगट हो जाती है।

कभी कभी खल पात्र किसी तकियाकलाम को अपनी वाणी का विशेष अंग बना लेते हैं। गोपाल राम गहमरी के जासूस की डाली के डा० रामचरन लाल ने 'समझ लो कि' जैसे व्यर्थ वाक्य को अपना तकिया कलाम बना रखा है।

मनुष्य के कर्म सम्पादन में भी उसकी आदतें दृष्टिगत होती हैं। आदत में कामना, इरादा, चयन और प्रवृत्ति का समावेश होता है। एक ही कर्म जब बार बार किया जाता है तो वह आदत का रूप धारण कर लेता है। खलपात्र की आदत होती है कि वे प्राय: आलसी होते हैं देर तक सोते हैं, गुस्से में मार बैठते हैं, दरवाजे को धड़ से बन्द करते हैं, सिर को झटका देकर घुमाते हैं जो उनके उद्दण्ड, क्रोधी होने का प्रमाण होता है। यही आदतें उनका चरित्र निर्मित करती है और चरित्र भाग्य। बुरी आदतें चाहे वे शारीरिक हों अथवा नैतिक दोनों ही चरित्र को नष्ट कर देती है यही नहीं उसका पतन कर देती है। आदत के प्रति अमेरिकन पादरी जार्ज डाना बोर्ड मैन का मत है 'एक कार्य का बीजारोपण कीजिए और वह एक आदत पड़ जाती है, एक आदत का बीजारोपण कीजिए उससे चरित्र निर्मित हो जाता है। एक चरित्र का बीजारोपण कीजिए वह भाग्य को निर्धारित कर देता है।[2]

खल के अन्दर प्राय: बहुत सी ऐसी लतें पड़ जाती है जैसे ताश खेलना, नशा पीना, जुआ खेलना, वेश्यागमन आदि जो उसके व्यक्तित्व को निर्मित करती है। विवेकहीन व्यक्ति इन व्यसनों में फँस कर विलासी हो जाते हैं। वस्तुत: मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपराधी में एक तीव्र उद्दीपक की असह्य लालसा होती है। जैसे शराब,

---

१- डा० रामचरन लाल की प्रत्येक बात के अन्त में 'समझ लो कि' जैसे व्यर्थ वाक्य का प्रयोग होता है।

२- ए साइक्लोपीडिया ऑफ कोटेशन्स

कभी जुआ और कभी व्यभिचार और वेश्यागमन उसकी इस प्रबल वासना के पूरक होते हैं। अपराध और मद्यपान प्रायः साथ साथ चलते हैं [1] और इस तरह जुआ तथा कामोत्तेजना भी। प्रायः प्रेम का उदात्त और पवित्र रूप इनमें नहीं मिलता। यहाँ तक कि उन प्रसंगों में भी जहाँ प्रेम अपराध का मूल कारण होता है। प्रेम की अभिव्यक्ति इन व्यक्तियों के संबंध में पाशविक ही होती है। अतः व्यभिचार और वेश्यागमन प्रायः क्रूरता के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ जाते हैं। [2] जुआ से निठल्लापन तथा बेईमानी बढ़ती है। जुएँ में जीत जाने पर उसमें धन के प्रति मोह उत्पन्न होता है और वह जुआ खेलने में प्रवृत्त होता है। व्यर्थ धन खर्च करने लगता है जिससे उसकी आर्थिक स्थिति खोखली हो जाती है। धन के अभाव में वह चोरी और हत्या जैसे कार्यों में प्रवृत्त होता है। जुआरी व्यक्ति की आदत से सम्पूर्ण घर प्रभावित होता है। नशा भी एक ऐसी लत है जो मनुष्य के स्वभाव को विकृत कर देती है। धूम्रपान की नशा से संतुष्ट न होकर मन की व्याकुलता को शान्त करने के लिए व्यक्ति शराब पीना शुरू कर देता है। मद्यपान अपराध का फल भी है और कारण भी। [3] शराबी मनुष्य का व्यक्तित्व जन साधारण की उपेक्षा का कारण बनता है वेश्यागमन भी दुराचार का लक्षण माना गया है। वेश्यागामी मनुष्य समाज, व्यक्ति एवं परिवार में दूषित वातावरण उत्पन्न कर देता है। वेश्यागामी मनुष्य कुवासनाओं के कारण पागल, अंधे और कोढ़ियों जैसे भयानक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। शारीरिक सौन्दर्य कुरूपता, विकृति से चरित्र का अनिवार्य संबंध नहीं है। इन सम्पत्ति संस्कार परिस्थिति वातावरण, इनसे अच्छा स्वभाव भले ही अवश्य बना सकता है परन्तु ऐसा चरित्र चरित्रों

१- हैवलाक एलिस - द क्रिमिनल पृ० १६३

२- हैवलाक एलिस - द क्रिमिनल पृ० १६८, ७०

३- "The relation of alcoholism to criminality is by no means so simple as is sometimes thought: alcoholism is an effect as well as a cause." - The Criminal, Havelock Ellis. P. 111

के साथ ही होता है । विवेक का अभाव एवं देशाभिमान जहाँ होता नहीं है जनता के कारण भले ।

समाज में कुछ ऐसे दोहरे व्यक्तित्व के लोग होते हैं जो ऊपर से तो सभ्य प्रतीत होते हैं पर अन्दर से ये समाज राष्ट्र व व्यक्ति का अहित करते हैं । इनके वेशभूषा, रहन सहन, वाणी या व्यापार किसी से भी इनके वास्तविक चरित्र का पता नहीं चल पाता । इन्हें सफेद पोश अपराधी की संज्ञा दी जाती है । प्रो० सदरलैण्ड ने कहा है कि -" वर्तमान युग के जो सफेद पोश अपराधी हैं वे पुराने डाकुओं से भी अधिक खतरनाक तथा चोर बाज हैं ।"[1] ऐसे व्यक्ति समाज, कानून और अदालत की आँख में धूल झोंक कर समाज में सभ्य एवं प्रतिष्ठित कहलाते हैं । रोज ही जन कल्याणकारी संस्थाओं में गबन, तस्कर, व्यापार, सट्टा, बाजार में सट्टा, प्रशासकीय विभाग में अनैतिक कार्य, घूस के बूते चलाना, गैर सरकारी संस्थाओं में व्यभिचार आदि गैर कानूनी अथवा अवैधानिक कार्यों के संबंध में समाचार पत्र में जो खबरें छपती हैं[2] वह इन सफेद पोश दोहरे व्यक्तित्व वाले मनुष्यों के हाथ की कारीगरी होती है । अपराधी होते हुये भी प्राय: ये निष्कलंक रहते हैं क्योंकि समाज की अन्य औपचारिकताओं का निर्वाह ये कुशलता पूर्वक करते रहते हैं किन्तु साहित्यकार की नजर से छुप नहीं सकते । ये अपराध के शिकंजे में भी नहीं आते लेकिन इनके सारे व्यापार व समाज विरोधी होते हैं । समाज का अहित करते हैं । ठगी, जिस्मफरोशी, झूठे विज्ञापन निकालना, चोर बाजी, लूट मार, पेटेन्ट दवाइयों, खाद्य पदार्थों में मिलन, या अन्य मिलावट, डाक्टर (दवा के बदले सिगरेट की पन्नियों से अधिक कम से अथवा

१- Edwin H. Sutherland . White coller criminality. American Sociological Review . February 1940. P. 1-2.

२- कौशल किशोर राय - अपराध और दण्डशास्त्र पृ० ६५-६६

ऐंठना , तथा डाक्टर का चोगा पहनकर अन्य तस्करी के व्यापार जैसे अफीम गाँजा भाँग बेचना) सौम्यत भ्रूणहत्या , वकील[2] के रूप में निरपराध को सजा दिलवाकर छिपाकर पैसा ऐंठना,सरकारी अपराधी (जज के रूप में पाप को बढ़ावा देने पर ऊपर से घूस को बुरा कहना),युद्ध के समय घटिया किस्म के अस्त्र ऊँचे दाम में बेचना,शिदाक,महाजन (व्यापार के रूप में धन ऐंठना) आदि अनेक प्रौढ़ अपराधी अथवा दोहरा व्यक्तित्व रखने वाले खल[3] जिनके बाह्य रूप को देखकर उनके वास्तविक चरित्र का पता नहीं लगाया जा सकता । उनका बाह्य साफ सुथरा तथा आकर्षक रूप समाज में गेटपास का काम करता है । ऐसे व्यक्ति समाज के लिए बहुत हानिकारक होते हैं । भेड़ की खाल में भेड़िया वाले व्यक्ति स्वार्थ के लिए जघन्य से जघन्य पाप करते है और धन के बल पर समाज में ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित रहते हैं । अवैधानिक कार्यों के करने पर भी वे दंडित नहीं होते ।

खल के विचार,भावना,अभिरुचि आदि में उसके व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । खल के स्वभाव का परिचय भर्तृहरि के नीतिशतकम् में इस प्रकार दिया गया है -" दुष्ट लोगों के मानदंड में प्रत्येक उदात्त तत्व का अवमूल्यन होता है । वे लज्जाशील पुरुष को जड़ और मतिमन्द कहते हैं , धार्मिक और व्रती को पाखंडी,पवित्रात्मा को छलिया,शूर को निर्दय,मुनिजन को मतिहीन,मिष्टभाषी को दीन,तेजस्वी को अहंकारी,बोलने वाले को बकवादिता और धीर - स्थिर पुरुष को कमजोर सिद्ध करते हैं । गुणियों का

१- गोपाल राम गहमरी के जंजाल की डायरी का डा० कुलीन गुप्त

२- ऋषभ चरण जैन के तपोभूमि का श्यामसुन्दर दास

३- छत्र के हरावी का पन्नालाल,प्रेमाश्रम के डा० इरफान अली वकील

खल मनुष्य मन का बहुत हलका होता है उसके मन में कोई बात स्थिर नहीं रहती जब तक वह अपने चित्त की बात दूसरे से कह नहीं लेता उसे चैन नहीं मिलता । इसलिए कहा गया है -

खल जन सों कहिये नहीं गूढ़ कबहुँ करि मेल ।
यों फैले जग माहि ज्यों जल पर बुन्दक तेल।।१

खल प्राय: चतुर और तेज बुद्धि होते है । समाज के नियम और मर्यादाओं का उल्लंघन कर दूसरों के हित अनहित का ध्यान न रखकर उन्हें दुःख देना ही उनका अभीष्ट होता है । कृतज्ञता से कभी नहीं डरते और भलाई के बदले बुराई करना उनके लिए साधारण बात होती है उन्हें अपने दुष्कृत्यों पर कभी पश्चाताप नहीं होता । ऊँच - नीच का विचार उनके दुष्कार्यों में बाधा नहीं पहुँचाते । कार्य के परिणाम की क्षणिक सुखानुभूति ही उनके आचरण को प्रेरित करती है । स्वार्थ की सिद्धि के लिए नैतिक अनैतिक सभी प्रकार के कार्य करने को उद्यत रहते हैं ।

खल के स्वभाव का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके गुण में प्रतिबिम्बित होने वाले लक्षणों को भी जानना आवश्यक हो जाता है । यद्यपि ये लक्षण खल के व्यवहार में ही प्रतिबिम्बित होते हैं तथापि इन लक्षणों को खल जानबूझ कर नहीं प्रदर्शित करता । ये लक्षण खल के व्यक्तित्व के नैसर्गिक अवगुण एवं अक्षमता है ।

खल के लक्षणों का चित्रण निस्संदेह संत तुलसीदास जी के सूक्ष्म अनुभव का परिचायक है । उन्होंने जिस तुलनात्मक विधि से लक्षणों को व्यक्त किया है वह अत्यन्त अनूठा एवं हृदयस्पर्शी है । दृष्टव्य है -

बिछुरत एक प्राण हर लेहि ।मिलत एक दारुण दुःख देहि ।
सुधा सुरासम साधु असाधु । जनक एक जग जलधि अगाधू ।।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधु।गरल अनल कलिमल सरि व्याधु ।
खलअघ अगुण साधु गुण गाहा।उभय अपार उदधि अवगाहा।।

१- वृंद कवि - वृंदावन विनोद सतसई पृ० १८

खल से सामना होने पर हृदय अत्यंत दुःखी होता है । खल मदिरा के सदृश्य है । मदिरा मनुष्य को उन्मत्त कर देती है । वह विवेक को नष्ट कर देती है । नष्ट विवेक अविवेकी का रूप धारण कर लेता है । अतः खल की तुलना मदिरा से की गई है । मदिरा विनाशकारी है उसी तरह जैसे खल । खल विष अग्नि आदि के समान है । विष और अग्नि दोनों ही विनाशकारी है खल भी ऐसा ही होता है । खल अवगुणों के सागर होते हैं वह अवगुणों को ही ग्रहण करता है ।

खल काम,क्रोध,और लोभ में सदा लिपटे रहते हैं ,निर्दयी होते हैं , कपटी होते हैं , बड़े कुटिल होते हैं और मैल उनके हृदय में भरा रहता है । बिना कारण ही वे सबसे वैर करते हैं और जो उनका हित करे उससे भी वैर करते हैं ।[१] इसी बात को भर्तृहरि ने नीतिशतकम् में इस प्रकार कहा गया है -

अकरुणत्वम कारण विग्रह:।
परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजन बन्धुजनेष्वसहिष्णुता ।
प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।। २

खल की स्वाभाविक दुर्बलतायें

कुछ साधारण एवं स्पष्ट भाव खल के अन्दर सामान्य रूप से विराजमान रहते हैं । ये भाव उसकी स्थिति एवं दशा को आपत्ति जनक तथा उसे

१- काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।
बैर अकारण सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ।।

उत्तरकाण्ड मानस - तुलसीदास

२- भर्तृहरि - नीतिशतकम् श्लोक ५१

अत्यंत अनिश्चित और डावाडोल बना देते हैं । इन भावों की विद्यमानता खल को मानव जीवन की सरस,सरल एवं मधुर उपलब्धियों के रसास्वादन से वंचित कर देती है ।

यह भाव एक तो भय है । खल में किसी न किसी प्रकार का कपट,दुराव और असत्य आदि होता है । उसके प्रगट हो जाने की सम्भावनायें खल के चित्त में नहीं होती अत: वह सर्वदा भयभीत रहता है । उसका कर्म सर्वप्रिय, सर्वपूजित,सर्वमंगल,सर्वसम्मत नहीं होता । वह अनुकरणीय नहीं होता अत: खल को नाहक बल नहीं प्राप्त रहता ऐसी स्थिति उसके आत्मबल को क्षीण कर देती है क्योंकि उसका आश्रय असत्य होता है ।

आत्मबल का अभाव उसे अत्यंत दीन-हीन एवं दुर्बल बना देता है । उसके पास कोई चारित्रिक अचल,स्थायी एवं नित्य संपत्ति नहीं होती । ऐसी सम्पत्ति का उसके पास सर्वदा अभाव होता है जिस पर आत्मा का अधिकार हो । मौलिक दुर्बलतायें मनुष्य को उतना अयोग्य नहीं बनाती जितना विचार एवं चरित्र की न्यूनता । आत्मबल से वंचित सबसे बड़ा निर्धन होता है । निर्बलता सबसे बड़ी दुर्बलता है और दुर्बलता खलता का कारण । इस दुर्बलता को ढकने के लिए मिथ्या दंभ,मिथ्या अभिमान निर्लज्जता आदि दुर्गुणों का विकास होता है ।

खल में निर्लज्जता होती है इससे उसका आत्माभिमान नष्ट हो जाता है । भर्त्सना,तिरस्कार दंड आदि को वह महत्व नहीं देता । दुष्ट नायक के समान ही खल में भी दुर्बलतायें रहती हैं । [1]जीवन में उसकी दृष्टि में लज्जा कोई मूल्य नहीं होता । यदि उसमें स्वाभिमान हो तब वह कोई कार्य ही ऐसा न करे जिससे उसे लज्जित होना पड़े । वह लोक निंदा से तो बच सकता है परन्तु आत्म तिरस्कार से नहीं ।

१- लाज न मानै कुमार की छांड़ि दई सब त्रास
देख्यो दोष न मानही,दुष्ट सु कहिये तास ।(रसिकप्रिया केशवदास)
दोष भरी प्रत्यक्ष ही सदा कर्म अपकृष्ट
जहि भार नारी,रसै,निलज धार्ष्ट परिपुष्ट - भावविलास - देवकवि कृत

भय और निर्लज्जता खल की स्थायी दुर्बलतायें हैं । ये दोनों उसके चरित्र की दुर्बलता के द्योतक हैं । ये व्यक्तित्व को निस्तेज कर मनुष्य के चरित्र के सौन्दर्य और आत्मबल को छीन लेती है । इनके अभाव में मनुष्य देव से दानव बन जाता है । यहीं पर खल की कामजनित दुर्बलता का उल्लेख करना भी अनुपयुक्त न होगा । खल की दृष्टि में प्रेम केवल एक शारीरिक माँग है जिसमें समय के लिए कोई स्थान नहीं है ।[1] डा० लौरेन्ट ने कहा " सेक्स उनके लिए कोई रहस्यपूर्ण और अद्भुत गुलाब नहीं है , उसे वह वीभत्स मानते हैं और सूर्य के प्रकाश पर खींच कर उस पर हँस सकते हैं ।"[2]

" खल के चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि उसके जीवन में कोई संतुलन लक्ष्य या आदर्श नहीं होता । न ही वे किसी निश्चित दिशा में परिश्रम कर पाते हैं । किसी व्यवसाय में जम कर काम भी नहीं कर पाते । वे अस्थिर और भ्रमणशील होते हैं । उनकी कोई निश्चित आकांक्षा नहीं होती । उनकी भावनाओं में निर्दयता अत्याचार और कठोरता पाई जाती है । उन्हें अपने क्रोधों पर काबू नहीं रहता और वे क्षण में प्रफुल्लित और क्षण में क्रुद्ध या उदास हो जाते हैं । लैंगिक इच्छा उनकी या तो बहुत अवरुद्ध होती है या असाधारण रूप से प्रबल । विवाह बन्धन उन्हें पसंद नहीं और घर वार से विमुख, पर विकृत व्यभिचार में वे निश्चिन्त और निस्संकोच भाव से भाग लेते हैं ।"[3] उनमें इतनी शक्ति

---

1. Havelock Ellis - "Love is always regarded as a purely physiological act." p. 235.

2. Havelock Ellis - "Sex is not for them a sacred and mysterious things, a mystic rose hidden beneath the obscure vault of the belly, like a strange and precious talisman enclosed in a tabernacle. For them it is a thing of ugliness, which they drag into the light of day and laugh at." P. 237. The Criminal.

३- हंसराज भाटिया - असामान्य मनोविज्ञान पृ० २३५ - ३६

नहीं होती कि अवरुद्ध इच्छाओं की पूर्ति नैतिक माध्यमों द्वारा ही करें । होली के अनुसार अपराधी सदा से असंतुष्ट ,दुखी और चिन्तित होते हैं । उनकी मनःस्थिति ऐसी होती है कि अपनी इच्छा पूर्ति के लिए वे अपराध का ही आश्रय लेते हैं । आपके सिद्धान्तों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि असंतोष तथा तत्संबंधित भावना-त्मक क्लेश अपराध के महत्वपूर्ण कारण है । [1]

खल के चरित्र की दुर्बलता यह है कि वह खलता करते समय एक दम उत्तेजित हो जाता है,उसे पाप करने में सुख का अनुभव होता है । उन्माद में अंधा हो परिणाम पर बिना विचार किये ही वह अनैतिक काम करता रहता है । इस प्रकार खल के मनोविकृत व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुये हम कह सकते हैं कि वह अस्थिर चित्त होता है,आत्मकेन्द्री होता है , विलक्षण होता है ,विषयोन्मुख होता है और उसमें सामाजिक परिस्थितियों से समायोजन करने की क्षमता नहीं होती । [2] उसमें पूर्व चेतना की भी कमी होती है और परिताप की भी । नैतिक असंवेदनशीलता के कारण वह निर्दय और क्रूर होता है । उसकी अस्थिर बुद्धि उसे एक ओर मूर्ख और असावधान बनाती है तो दूसरी ओर चालाक,असत्य प्रेमी,ढोंगी तथा धोखेबाज। जिज्ञासा जो समुन्नत मानव की विशेषता है उसका उसमें अभाव होता है और यदि वह लोमड़ी की सी चालाकी दिखाता भी है तो वह केवल व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए। इसीलिए डा० ए० फ्राय ने कहा कि अपराधी मेधावी होने की अपेक्षा मूर्ख अधिक होता है । [3]

जहाँ खल के चारित्रिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुये हमने उसकी दुर्बलताओं पर दृष्टिक्षेप किया वहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि खल की खलता की

१- कौशल कुमार राय एम० ए० - अपराध और दंडशास्त्र पृ० ७६

२- हैवलाक एलिस क्रिमिनल २१

"The average criminal ....often a more or less congenitally abnormal person,endowed with an ill-adjusted organism....... ."

३- हैवलाक एलिस पृ० १९६

उसे एक विशेष प्रकार का चरित्र गठन भी दे चुकी है जिसके तत्व हैं साहस, निर्भयता और दृढ़ता जिसे हम हठ का नाम दे सकते हैं । करने मरने की हिम्मत खल में पाई जाती है । वह अपने खलतापूर्ण उद्देश्य तक पहुँचने के लिए दुष्कर से दुष्कर मार्ग पर चल पड़ता है । अधिक से अधिक कठिनाइयों का सामना करने की हिम्मत रखता है और उसे कभी कभी जान को भी हथेली में रख कर ले चलने का संकल्प कर लेना पड़ता है ।

संकल्प की ऐसी दृढ़ता और उसे पूरा करने का निर्भीक साहस
जैसा सामान्य अथवा जो कोई सद्वृत्ति मनुष्यों में
प्रायः देखा हम सत् वृत्ति मनुष्यों में भी अपने सदुद्देश्य की पूर्ति में नहीं देखा जाता खल के साहस निर्भयता और दृढ़ता के उद्देश्य का निर्धारण ही उनकी वृत्ति का मूल्यांकन करते हुए उसे दुष्प्रवृत्ति की श्रेणी में रख देता है । यही तत्व उसे दल संचालन की शक्ति देते हैं जो हम "अमर अली" जैसे ठगों में पाते हैं ।[1] इसके अतिरिक्त खलों में खलता के बावजूद कुछ गुण भी मिलते हैं ।[4] उनकी भावुकता कभी कभी उनके व्यक्तित्व को विचित्र रूप दे देती है यही कारण है कि कभी कभी हम ऐसे खल पाते हैं जो सच्चा प्रेमी[2] होते हैं अथवा संतति के प्रति अतिशय व्याकुल प्रेम[3] जिनके हृदय में होता है अथवा दरिद्रों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव रखते हुए कंजूसों से लूटे हुए माल को दरिद्रों में बाँट देते हैं ।[5] जो उनके विशिष्ट

१- गोपाल राम गहमरी के जासूसी उपन्यास अमरअली ठग

२- ज्ञान शंकर - प्रेमचन्द के "प्रेमाश्रम" उपन्यास का

३- पारस नाथ, बेचन शर्मा उग्र के "शराबी" उपन्यास का
सालमा - वृन्दावन लाल वर्मा के [illegible] उपन्यास का

4. Havelock Ellis - The Criminal.
'It may seem a curious contradiction of what has already been set down concerning the criminals moral insensibility his cruelty, and his incapacity to experience remorse,' when it is added that he is frequently open to sentiment. It is however, true. Whatever refinement or tenderness of feeling criminals attain to, reveals itself as what we should call sentiment or sentimentality.' P.182.

५- जयराम डाकू - गोपालराम गहमरी के घटनाघटाटोप या जमींदारों का जुल्म उपन्यास का

दर्शन का अंग होता है । उनके भावुक व्यक्तित्व पर सहानुभूति का भी प्रभाव[1] पड़ता हुआ देखा जाता है ।

खल के व्यक्तित्व के इसी अंश में साहित्यकार की सौन्दर्य दृष्टि को उससे अधिक प्रीतिकर और मंगलमय सम्भावनाओं का सूत्र मिलता है क्योंकि यहीं उसके समाजीकरण और अनैतिकता के गर्त्त से निकाल पाने की आशायें निहित है । २ साहित्यकार की दृष्टि एक समुन्नत लोकमंगल का भाव लेकर चलती है । ज़िवेतर अर्थ उसकी रचना का लक्ष्य होता है और इससे भी ऊपर मानवता में उसका एक सहज विश्वास होता है । इस कारण उपन्यासों में हम ऐसे ही खलपात्रों का आधिक्य पाते हैं जिनमें उक्त कोमल भावनायें प्रायः मिल जाती है तथा जिनमें परिताप के भाव का भी उदय[3] होता है,तथा सुधार और मार्ग परिवर्तन भी जिनमें प्रायः दिखाई पड़ता है ।

खल के शस्त्र

खल के पास अपने खलतापूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ विशिष्ट शस्त्र होते हैं स्वार्थसिद्धि में वही इनका प्रयोग करता है । डकैती,चोरी,ठगी झूठ,छल,कपट,धोखा,दुराव,निंदा,चापलूसी,मुखबीरी,हत्या,बलात्कार,अतिक्रमण, आघात,अपहरण,मिथ्याभाषण,आडम्बर,विश्वासघात,षड्यंत्र आदि ऐसे साधन हैं जिनके माध्यम से वह अपने स्वार्थ की प्राप्ति करने का प्रयास करता है ।

१- डाकू करीम सिंह - गोपाल राम गहमरी के `डकुन बटोला` उपन्यास का

2. Havelock Ellis-The Criminal.
"Such sentiment as this-limited,imperfect,famtestic,as it may sometimes seem-is the pleasantest spot in criminal psychology. It is also the most hopeful.In the development of this tenderness lies a point of departure for the moralisation of the criminal." P. 184-5.

३- कामिनी मोहन - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध,`अधखिला फूल`

ये शस्त्र बड़े विचित्र और विनाशकारी होते हैं। इनकी विचित्रता यह है कि यह उस पर आघात तो करते ही है जिनपर इनका प्रयोग किया जावे साथ ही साथ ये उस पर भी आघात करते हैं जो इनका प्रयोग करता है। जिन पर इनका प्रयोग किया जाता है उनकी तो केवल भौतिक एवं लौकिक हानि ही होती है परन्तु जो इनका प्रयोग करता है उसकी आत्मिक अर्थात चारित्रिक हानि हो जाती है। जिन पर ये प्रयोग किए जाते हैं उनका सर्वनाश नहीं होता परन्तु जो इन्हें प्रयोग करता है उसका सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है। ये मनुष्य की सारी मानवता का वध कर पाशविक अवगुण को संसार के सम्मुख एक खल के रूप में उपस्थित कर देते हैं।

खल के इन हथकंडों के प्रति विद्वानों का मत भी ऐसा है कि ये मनुष्य को देव के स्थान पर दानव बना देते हैं। ढोंग,झूठ,छल,कपट,धोखा,दुराव,बहाना, आडम्बर चापलूसी आदि खल के शस्त्र हैं।

जो खल सत्य को छिपाकर असत्य या कुछ और दुनियाँ के सामने रखता है उसे ढोंग कहते हैं। कबीर ने भी ढोंगी की खूब आलोचना की है। ढोंग खल का सबसे प्रबल शस्त्र है।

दुराव :

दुराव एक भयानक मनोविकार है। काम,क्रोध ,लोभ मोह,चिंता,भय आदि विकार तो तूफान बाढ़,बवंडर की भाँति आते हैं और कुछ देर रह कर समाप्त हो जाते हैं इनसे जो हानि होती है वह क्षणिक होती है पर दुराव मनुष्य को हमेशा हानि पहुँचाता है। दुराव खल के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है। खल अपने प्रत्येक कार्य को दुराव से आच्छादित रखता है। कामवासना की अधिकता समाज व धर्म दोनों दृष्टि से अनुचित समझी जाती है। इसलिए ईर्ष्या,द्वेष,शत्रुता,प्रतिशोध,प्रतिहिंसा आदि के भावों को भी मनुष्य मन में छिपाये रखता है। ठगने,धोखा देने,आक्रमण करने आदि की भावी योजनाओं को भी खल अपने मन में छिपा कर रखता है उसके मन में कुछ रहता है पर ऊपर से कुछ दिखाई पड़ता है।

दुराव के कारण खल के अन्तःकरण में दो व्यक्तित्व निवास करते हैं

एक तो उसका पापी व्यसनी अपराधी व्यक्तित्व दूसरा ऊपर से समाज में अपनी झूठी प्रतिष्ठा बनाये रखने वाला। दोनों परस्पर विरोधी होते हुये भी एक ही मनुष्य में विद्यमान रहते हैं इसलिए दोनों में आपस में संघर्ष होता है इससे आत्मा में अशांति या बेचैनी बनी रहती है। दुराव के कारण ही मनुष्य के अशान्त मन में स्वप्नों का प्रादुर्भाव होता है। दबी हुई कुचली हुई अतृप्त कामेच्छा तथा अन्य भावनायें एक ग्रन्थि के रूप में अन्तर्मन में निवास करती हैं। जैसे मांस के भीतर एक लोहे की पिन धंस जाय तो वह जब तक निकल नहीं जाती घाव बना रहता है और दर्द होता है वैसे ही दुराव की ग्रन्थियाँ मन: क्षेत्र में बँधी रहती हैं और वहाँ से विष भरी फुफकारें छोड़ छोड़ कर शरीर तथा मन को निर्बल रोगी, क्षीण, जीर्ण करती रहती है। पाप के संस्कार भी दुराव के कारण ही बनते हैं।[1]

चापलूसी :

चाटुकारी द्वारा मनुष्य दूसरे की दुर्बलता का फायदा उठा लेता है। आत्म प्रशंसा सबको अच्छी लगती है यह मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है। इस दुर्बलता का फायदा उठाकर ठग अपने दुष्कृत्य लक्ष्य की पूर्ति में सहज ही सफलता प्राप्त कर लेता है।

चापलूसी एक खराब सिक्का है जो बाजार में केवल हमारी मूर्खता द्वारा चलता है।[2] अतः चापलूसी का प्रभाव केवल मूर्खों पर पड़ता है। चापलूसी का उपयोग केवल मूर्खों के साथ किया जा सकता है।

१- प्रो० रामचरण सिंह महेन्द्र - सम्मोहन विज्ञान

२- Roche foucauld- "Flattery is a base coin which gains currency only from our vanity."

धोखा :

धोखा छल मनुष्य का सबसे प्रबल अस्त्र है । धोखा द्वारा वह सत् पात्र को अपने जाल में फँसा कर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति हड़प कर लेता है । सिमन्स का मत है " धोखा अधिकतर अन्त में कपटी को पश्चाताप और ग्लानि प्रदान करता है।"[1]

झूठ :

छल मनुष्य झूठ बोल कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कला में सिद्धहस्त होते हैं । मिथ्याभाषण के बल पर वह असत् बात को भी सत्य सिद्ध करने का प्रयास करता है और झूठ के बल पर वह घोर से घोर पाप कर डालता है इसलिए होम्स का मत है - " पाप के पास बहुत से अस्त्र है लेकिन झूठ एक ऐसी मूठ है जिसमें सब अन्य अस्त्र लग जाते हैं । "[2]

घूसखोरी :

घूसखोरी उसका जन्म सिद्ध अधिकार होता है । किसी भी कार्य को सत्यतापूर्ण ढंग से करने का अभिनय करते हुए घूस लेना भी छलता है । मार्स्टन का मत है जो 'छलता को सोने से खरीद लेना चाहता है उसे पता लगेगा कि वह छलता को खरीदने के साथ साथ उसे बेच भी देता है ।"[3] सोने से खरीदी हुई छलता फिर बेचने

---

1. C. Simmons, - "For the most part fraud in the end secures for its companions repentance and shame."

2. O.W.Holmes- "Sin has many tools, but lie is the handle that fits them all." A Cyclopedia of Quotation.
MARSTON :
3. ~~Marston~~- "Who thinketh to buy villainy with gold shall find such faith so bought, so sold."

जाते के पास वापस लौट जाती है । घूसखोरी से दल का नैतिक स्तर गिर जाता है ।

हत्या :

हत्या दल का ऐसा भीषण एवं घातक कृत्य है जिसके द्वारा मनुष्य का जीवन समूलत: नष्ट हो जाता है । हत्या दल को निर्दयी, निष्ठुर एवं मूल्यहीन बना देती है । हत्या पर डेनियल वाबस्टर का कथन है कि " हत्या सम्पूर्ण प्रायश्चित है पर सबसे बड़ा अपराध है जिससे जनमानस घृणा करता है ।"[1]

विश्वासघात :

एच० डब्लू० बेकर का मत है अपने साथियों के प्रति कठोर विचार रखने की आदत में पड़ना अपनी भावनाओं की कोमलता एवं मृदुलता पर आघात पहुँचाये बिना सम्भव नहीं है ।[2] दल पात्र अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए प्रथम तो दूसरों पर अपना अत्याधिक विश्वास उत्पन्न करता व चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं पर काम निकल जाने पर उसके साथ विश्वासघात करता है ।

इन सारे तत्वों का आश्रय भावना की पवित्रता को क्षति पहुँचाती है । अनुचित भावना का प्रभाव चरित्र को नष्ट कर मनुष्य का अध: पतन कर देता है ।

---

1. Daniel Webster- "Every unpunished murder takes away something from the security of every man's life."

2. H.W.Beecher - A Cyclopedia of Quotation.

मानवतावादी दृष्टि :

पश्चिम में पुनर्जागरण की लहर के साथ साथ मानवतावाद का जन्म हुआ था जिसके फलस्वरूप संसार तथा मानव के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर आया। "स्वाभाविक, मानवीय तथा ऐन्द्रिक तत्वों को निवृत्तिपरक अलौकिक, धार्मिक तत्वों के ऊपर महत्व दिया गया।"[1] मानवतावादी मानव को ही एक पूर्ण मानदंड के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार "मानवतावाद वह लौकिक सिद्धान्त है जिसमें यह माना जाता है कि संसार के सभी मनुष्यों का समान रूप से कल्याण होना चाहिए और उनको उन्नत करके उनको संतुष्ट तथा सुखी रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।"[2]

हिन्दी उपन्यास में वेश्याओं के परिप्रेक्ष्य में जब हम मानवतावाद के प्रश्न को उठाते हैं तो उसमें दो प्रकार के प्रभाव देखते हैं एक तो यह कि उपन्यासकार का ध्यान उन व्यक्तियों की ओर गया जो बिचारे हैं, समाज की घृणा के पात्र हैं। आधुनिक साहित्यकार की मानवतावादी दृष्टि ने जिस प्रकार शताब्दियों से पददलित, निम्नवर्ग, शोषित वर्ग को अपनी मानवतावादी दृष्टि से संस्पर्श किया उसी प्रकार उनको भी जो आगे अपनाने नैतिक मूर्ति कर देते हैं। यह सही है कि इस वर्ग अर्थात वेश्याओं के प्रति उनकी सहानुभूति का भाव उतना सम्पूर्ण आलोच्यकाल में नहीं है जितना नारी, निम्नवर्ग तथा समाज के अन्य शोषित वर्गों के प्रति, तथापि 'सुमन' 'कृष्णचन्द्र', 'कभी रहती उन' आदि इस बात के प्रमाण हैं कि लेखक की दृष्टि उदार

---

1. James Edgar Swain - A History of World Civilization
'The natural, the human, and the sensual were given precedence over the ascetical, the supernatural, and the theological'. P. 354.

2- मानक हिन्दी कोश - चौथा खण्ड - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

की अपेक्षा अपराधी पर जा रही है और वह उसकी परिस्थिति की व्याख्या, सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक मजबूरियों के प्रति जागरुक हो रहा है। वह उन्हें उबारना भी चाहता है और उबरने की सम्भावनाएँ भी देखता है।

दूसरी बात जो इसी से जुड़ी है वह यह है कि मानवतावादी दृष्टि अलौकिक में भले न विश्वास करती हो लेकिन मानव की मानवता में विश्वास लेकर चलती है। डा० राधाकृष्णन ने बड़े ही सटीक ढंग से इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "सब मनुष्यों में निहित देवत्व के कारण कोई भी मनुष्य चाहे वह कितना ही दुराचारी क्यों न हो, तारण के अयोग्य नहीं है।"[१] इस दृष्टि के फलस्वरूप मानव में देवत्व की खोज अलख में चारित्रिक सौन्दर्य की खोज की ओर भी हमारा लेखक उन्मुख हुआ है।" गोपालराम गहमरी के "भटनाघटा डाप व जमींदारों का जुल्म" में डाकू जगतसिंह को गरीब किसानों के प्रति सहानुभूति है वह डाका सिर्फ इसी विचार से डालता है कि जमींदारों का पैसा लूट कर गरीबों को बाँट दे जिससे गरीब जनता उनके अत्याचारों से बच सके। गोविन्द वल्लभ पंत के "प्रतिमा" में डाकू देरावन को भी अपनी लड़की से अत्यधिक प्यार है।

आधुनिक युग का उपन्यासकार मानव मन में निहित दुष्टता को एक व्याख्या की दृष्टि से भी देखने की चेष्टा करता है। मानवतावादी दृष्टि इस बात का विश्लेषण करती है कि "हमारे शत्रु उतने बुरे नहीं होते जितना कि भावों के उद्रेक में हम उन्हें समझने लगते हैं।"[२] उपन्यासकार की दृष्टि इसी भाव को लेकर चलती है वह दुष्टता को अटूट नैसर्गिक अन्तर्वृत्ति के रूप में न देखकर उसे एक कमजोरी मानने की ओर उन्मुख हो रहा है। प्रेमचन्द युग में यह प्रवृत्ति उभरी है। जहाँ एक

१- मानवतावाद और शिक्षा, पूरब और पश्चिम के देशों में यूनेस्को द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा में राधाकृष्णन के विचार ———— पृ०४४

२- मानवतावाद और शिक्षा पूरब और पश्चिम के देशों में यूनेस्को द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा में राधाकृष्णन के विचार ————। पृ०४१

और मानवतावादी दृष्टि का प्रतिफल यह है कि समाज पर अत्याचार करने वालों को, गरीबों का खून चूसने वालों को, देश की हानि करने वालों को उपन्यासकार खल की श्रेणी में बिठा देता है; यही मानवतावादी विचारधारा से प्रेरणा लेकर वह खलों के चरित्रगत सदांश का उद्घाटन करता है और उनमें ग्लानि तथा परिताप का समावेश करके रूपान्तर की सम्भावनायें देखता है। मानवतावादी दृष्टि से प्रेरित होकर मधुसूदन दत्त ने मेघनाद को काव्य का नायक बनाया था। मैथिली शरण गुप्त ने कैकेयी के मातृत्व को सारे षड्यंत्र की जड़ में रख दिया था।

इसी प्रकार हमारा उपन्यासकार भी अपने खलपात्रों के व्यक्तित्व के संस्कार की नाना सम्भावनाएँ सोचने लगा है। परवर्ती युग के उपन्यासों पर तो मनोविज्ञान का इतना गहरा प्रभाव है कि कोई खल है यह कहना भी संदिग्ध हो जाता है। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' की लगभग यही स्थिति है।

अतः हम कह सकते हैं कि पूर्व के उपन्यासकारों ने खल के रूप में पिशाच की कल्पना की और आदर्श तथा उपदेश की धुन में उसके चरित्र को जनसाधारण की दृष्टि में इतना हेय, गिरा हुआ और पैशाचिक चित्रित किया कि जनसाधारण की सहानुभूति तो मिलना दूर रहा उसमें किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन की भी आशा नहीं रहता। आधुनिक युग के उपन्यासकारों ने खल के चरित्र का उदात्तीकरण कर उन्हें पिशाच की योनि से मुक्त कर मानव बनाया और उसे भी वास्तविकता के धरातल पर खड़ा कर दिया। अब मानवीय दुर्बलता के प्रति लेखक की दृष्टि सहिष्णु एवं उदार है। कथाकार जहाँ करुणा, सहानुभूति को नहीं पीठ करता है, वह किसी नीति कथन नहीं कहता। आजकल के लेखक की दृष्टि अपराध के ठीक पीछे में नहीं तक जाती बल्कि मानव स्वभाव में खलता का कीड़ा कहाँ छिपा है उसे मिट्टी से निकालता है इससे प्रतिनायक का लोप होता जा रहा है।

उपन्यासकार की मानवतावादी दृष्टि खल पात्रों के चरित्र में रूपान्तर को विशेष महत्व देती है। यद्यपि सूरदास ने माना था कि "कारी कामरी पर चढ़ै न दूजो रंग" पर उपन्यास के पात्र सर्वथा इस विचार के पोषक नहीं दिखाई पड़ते। कुछ ऐसे खलपात्र होते हैं जिनका परिस्थिति या सुसंग से रूपान्तर हो जाता है। अपने चरित्र की कमजोरी को समझ कर वह अपने कृत्य पर पश्चाताप करते

हैं और सुधर जाते हैं । [१] कभी कभी यह परिवर्तन अभेय परिस्थितियों अथवा उपाय के अभाव में होता है ऐसा परिवर्तन हृदय के परिवर्तन से नहीं होता इसलिए वह टिक नहीं पाता । पात्र अपनी कुशलता से कभी कभी ऐसी परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर लेता है और पुन: अपने पूर्व रूप को धारण कर लेता है परन्तु दुर्जन के संबंध विच्छेद होते ही उसका प्रभाव जाता रहता है । इस क्षणिक परिवर्तन के अतिरिक्त कभी कभी परिवर्तन स्थायी रूप भी ले लेता है । ज्ञान के उदय (बोध) होने पर खल को अपने ऊपर ग्लानि होती है और पश्चाताप । प्रायश्चित का आश्रय ले सद् विचारों द्वारा अपने चरित्र को पूर्णतया परिवर्तित कर देता है । खल में इस प्रकार का स्थायी परिवर्तन अपने प्रिय के अनिष्ट से भी होता है और अन्त: करण के विद्रोह द्वारा भी ।

१- प्रेमचन्द के प्रतिज्ञा उपन्यास के गुण्डे भी प्रेमा के भाषण को सुन कर प्रभावित होते हैं । वही गुण्डे जो कमला प्रसाद के भड़काने पर लाठी चलाते हैं, प्रेमा के भाषण को सुन कर इतने लज्जित होते हैं कि वनिता आश्रम के लिए सबसे बड़ी रकमें गुण्डे ही देते हैं ।

अध्याय - ४

संज्ञाओं का वर्गीकरण

अध्याय ४

खलपात्रों का वर्गीकरण

वर्गीकरण सदैव विभाज्य के लक्षित भेद पर आधारित होता है। खल का वर्गीकरण करते समय हम एक ही पात्र को विभिन्न दृष्टिकोण से निरीक्षण करना चाहते हैं। दृष्टि की जितनी पैनी अथवा विश्लेषणात्मक क्षमता है स्थिति, रूप,गुण,स्वभाव आदि के आधार पर खल के वर्गों की संख्या में वृद्धि होती जाती है। चरित्र के अनंत रूप,गुण,स्थिति,स्वभाव को वर्गीकरण की कुछ एक दृष्टियों द्वारा सीमित करना अपार का पार पाना है। चरित्र के रूप,गुण,स्थिति,स्वभाव की भिन्नता अनंत है।

मनोवैज्ञानिक एवं अपराधशास्त्री लेखक रसेल ने अपराधियों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें राजनैतिक अपराधी (Political criminal) आवेशवश अपराधी, (Criminal by passion) पागल अपराधी (insane Criminal); नैसर्गिक अपराधी (instinctive criminal) प्रसंगवश अपराधी (occasional criminal) आदतन अपराधी (habitual or professional Criminal) आदि वर्ग बताये हैं। यह सच है कि इनमें से कई वर्ग हमारे खलपात्रों को समाहित करते हैं। किन्तु हमारी दृष्टि और अपराध शास्त्री की दृष्टि में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि हम उसकी दुष्ट प्रवृत्ति को मानव चरित्र के वैशिष्ट्य के रूप में देखकर चलते हैं, मात्र वैज्ञानिक और नैयायिक की दृष्टि से नहीं देखते। कोई भी दुष्कृति हमारी दृष्टि में मुख्यतः खलता है अपराध हो या न हो। फिर पागल अपराधी तो हमारी सीमा में आते ही नहीं, हाँ खलपात्रों का [illegible] व्यवहार अवश्य आता है।

अतः वर्गीकरण के जिन मानदंडों को सामने रखकर हम खलपात्रों के

वर्गीकरण की चेष्टा करें तो उनका संबंध साहित्य के तत्वों से अधिक होना अपेक्षाकृत शुद्ध समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक तत्वों से । हमने अपने सामने कथानक, चरित्र शील, रूप, क्रिया आदि की दृष्टियाँ रखी हैं और उन्हें अपने आलोच्य उपन्यासों से संबद्ध करने की चेष्टा की है ।

१- कथानक की दृष्टि से :

कथानक में खल का क्या स्थान है और उसमें उसकी गति में उसका कितना महत्व है इस तथ्य को दृष्टि में रखकर हम 'प्रमुख खल' एवं 'सहायक खल' दो वर्गों में विभाजित करते हैं ।

क- प्रमुख खलपात्र :

कथानक में जिसकी भूमिका खलनायक अथवा प्रतिनायक की होती है वही प्रमुख खल पात्र होता है ।

खलनायक :

खलनायक कथा का सूत्रधार अथवा प्रधान पात्र होता है । वह कथानक की भावना का आधार स्तम्भ होता है । समस्त घटनायें एवं प्रसंग उसी के द्वारा निर्देशित, प्रभावित अथवा संचालित होती हैं । वही कथा की धुरी होता है जिस पर सम्पूर्ण घटनाचक्र नाचता है । वह इतना महत्वपूर्ण होता है कि केवल उसी का व्यक्तित्व कथानक पर छाया रहता है और कथा उसी के प्रकाश से आलोकित । प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह प्रत्येक घटना एवं दृश्य से व्याप्त रहता है । खलनायक अन्य पात्रों से अधिक जिज्ञासा एवं उत्सुकता जनक होता है ।

उसकी उपाधि भी घोषित करती है कि वह खलता का अधीश्वर है। वह खलों का राजा है । प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम का 'ज्ञानशंकर' खलनायक है । सम्पूर्ण कथा उसके चरित्र से प्रभावित है ।

फ्रांसीसी नीतिज्ञ रोशेफोकाल्ड का भी यही मत है कि "जिस प्रकार अच्छाई के नायक होते हैं उसी प्रकार बुराई के नायक भी ।"[१]

१- "There are heroes in evil as well as in good."
(Rochefoucauld)

प्रतिनायक :

जिस पात्र को हम खलनायक कहते हैं वह किसी पात्र के प्रतिपक्ष में नहीं उपस्थित होता परन्तु प्रतिनायक वह पात्र है जो नायक के प्रतिद्वंद्वी के रूप में उपस्थित होता है। पात्र को खलनायक की मान्यता इस आधार पर प्राप्त होती है कि वह कथानक का प्रमुख पात्र होता है। यदि खलनायक में प्रतिद्वंद्विता के गुण दृष्टिगत होता है तो वह किसी एक पात्र से संबंधित नहीं होता। प्रतिनायक उसे कहते हैं जिसका प्रतिद्वंद्वी भी कथा का प्रमुख पात्र नायक होता है। प्रतिनायक सदैव नायक के प्रतिकूल उपस्थित होता है। खलनायक का अस्तित्व स्वतंत्र होता है जब कि प्रतिनायक के अस्तित्व के लिए नायक का अस्तित्व अनिवार्य है।

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः
तस्य नायकस्येत्थंभूतः प्रतिपक्षो नायको भवति।[1] यथा
राम युधिष्ठिरयो रावण दुर्योधनौ।

नायक की फल प्राप्ति में विघ्न डालने वाला नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है। प्रतिनायक लोभी, धीरोद्धत, घमण्डी, पापी तथा व्यसनी होता है।[2] इस नायक का शत्रु प्रतिनायक इन विशेषताओं से युक्त होता है जैसे राम तथा युधिष्ठिर के शत्रु क्रमशः रावण तथा दुर्योधन है। आचार्य विश्वनाथ ने प्रतिनायक में धीरोद्धत नायक के सभी गुण-कपट, प्रचंडता, चंचलता, अहंकार आत्मगौरव और आत्मश्लाघा[3] माने हैं। किन्तु धीरोद्धत नायक में इतने अवगुण होते हुये भी उसकी प्रवृत्ति पाप की ओर नहीं होती। प्रतिनायक के व्यक्तित्व में पाप और पुण्य का प्रश्न नहीं उठता।

1- डा० भोला नाथ व्यास - हिन्दी का रूपक प्र० चौखम्भा विद्याभवन बनारस पृ०८१
2- विश्वनाथ-साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेद, १३१वां श्लोक
3- विश्वनाथ-साहित्यदर्पण तीसरा परिच्छेद ३३ श्लोक

प्रतिनायक की सृष्टि नायक के महत्व और गुणों को प्रकाश में लाने के लिए होती है वह नायक के मार्ग में बाधा उपस्थित करता है इस प्रकार से कथावस्तु में संघर्ष और द्वंद्व उत्पन्न होता है । प्रायः प्रतिनायक का लक्ष्य वही होता है जो नायक का । परन्तु आवश्यक नहीं कि प्रतिनायक का उद्देश्य अन्य न हो । अधिकतर प्रतिनायक की नायक से शत्रुता का कारण सामान्य लक्ष्य होता है । प्रतिनायक की शत्रुता का कारण एवं नायक के मार्ग में प्रतिरोध उत्पन्न करने का कारण दोनों के लक्ष्य की समानता के अतिरिक्त और कुछ भी हो सकता है । ऐसी स्थिति में भी प्रतिनायक की भावना यही होती है कि नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त न करे ।

प्रतिनायक भी उन्हीं गुणों से युक्त होता है जिनसे नायक । जैसे, साहस आदि जो नायक के लिए आवश्यक है वही प्रतिनायक के लिए भी । टक्कर के उभय पक्षों में शक्ति जब तक समान नहीं होती तब तक प्रतिद्वंद्विता प्रश्न ही उत्पन्न ही नहीं होती और यदि हुई भी तो अन्त में वह भूल सिद्ध होती है । प्रतिनायक नायक के साथ मिल कर कथानक का वहन करता है जहाँ प्रतिनायक होता है कथा दो स्तम्भों पर आधारित होती है । नायक प्रतिनायक दोनों मिल कर कथानक को गति प्रदान करते हैं । देवकी नन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास का प्रतिनायक 'क्रूरसिंह' है जो स्वभाव, व्यवहार एवं नाम सभी दृष्टि से क्रूर है । क्रूरसिंह चन्द्रकान्ता को प्राप्त करने के लिए नायक से सदैव संघर्ष करता है ।

ग-सहायक उपनायक :

कोई भी सहायक उपनायक कथानक का आधार स्तम्भ नहीं वरन् वह कथानक के विस्तार का अंग होता है । कथानक में उसकी आवश्यकता कथानक की भावना को पूर्णता प्रदान करने के लिए अनुभव की जाती है । कथानक में काल का जितना विस्तार, स्थान की जितनी विविधता एवं घटनाओं की संख्या जितनी समाविष्ट होगी सहायक पात्र के लिए उसमें उतना ही अधिक अवकाश एवं अवसर होगा ।

कथानक में अवतीर्ण सहायक उस उसके किसी पात्र का संबंधी, मित्र अथवा उसके सम्पर्क में आया हुआ कोई भी व्यक्ति हो सकता है । इसके अतिरिक्त कर्मचारी अथवा किसी व्यवसायी के रूप में भी प्रगट होता है । इतना ही नहीं वह संयोगवश कभी एकाएकी प्रगट हो और किसी विशेष कार्य को पूर्ण कर अदृश्य हो जाता है।

सहायक खल घटना चक्र को संचालित रखता है एवं कथानक में मोड़ उत्पन्न करता है । कथानक के असत् पात्रों के लिए प्रिय और सत् पात्रों के लिए अप्रिय वातावरण की सृष्टि करता है । अन्य पात्रों के गुण दोष को भी प्रकाश में ले आता है । सहायक खल कभी कभी वर्ग अथवा पेशे विशेष के सामान्य चरित्र का रूप उपस्थित, अथवा उनका परिचय देने के लिए कथानक में स्थान ग्रहण करता है ।

सहायक खल कभी कथा में आद्योपान्त निवाह करता है और कभी अपना अभिनय समाप्त कर अल्प काल में ही अदृश्य हो जाता है । यह कथानक की भावना पर निर्भर करता है । कथानक में एक अथवा सहायक खल के लिए केवल एक ही अथवा अनेकों अवसर हो सकता है । अनूपलाल मंडल के 'निर्वासिता' उपन्यास का 'रघुनाथ बाबू जमींदार सहायक खल के रूप में कथा में प्रवेश करता है । उसकी खलता का मुख्य कारण रूढ़िवादी विचार धारा और दूसरों को कष्ट पहुँचाना है ।

२- चरित्र की दृष्टि से :

चरित्र की दृष्टि से खलों का वर्गीकरण करते समय हम उनके चरित्र की दृढ़ता एवं चरित्र हे रूप की स्थिरता की परीक्षा करते हैं । क्या पात्र का चरित्र परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित हो रहा है उसके अनुसार रूप ग्रहण कर रहा है अथवा वह स्वयं परिस्थितियों पर नियंत्रण रख रहा है, अपने निश्चय के अनुसार ही आचरण कर रहा है और परिस्थितियों का संचालन कर रहा है ? इन प्रश्नों के परिणाम स्वरूप हम खल पात्रों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं । स्थिर खल और गतिशील खल ।

क- स्थिर खल :

स्थिर खल के चरित्र में अत्यन्त कठोरता होती है, उसके मन में कोई निश्चय होता है, कोई लक्ष्य होता है एवं आचरण के लिए कोई नीति अथवा सिद्धान्त । निस्संदेह खल की नीति और सिद्धान्त अविवेकपूर्ण और विनाशकारी ही होंगे । स्थिर

खल अपने विचारों एवं स्वार्थों की रक्षा हेतु विषम परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने का भरसक प्रयास करता है । वह परिस्थितियों ,अवरोधों तथा कठिनाइयों से विचलित न हो स्वार्थ सिद्धि तथा पापों को छिपाने के लिए नवीन उपाय ढूंढता रहता है वह अपनी पराजय को सरलता से स्वीकार नहीं करता । अनन्य से अनन्य युक्तियों की रचना कर संग्राम रत रहता है । असफलता,निराशा,अपमान,दुराव, प्राकट्य की स्थिति में उसके अन्दर प्रतिहिंसा,प्रतिशोध,प्रतिकार आदि की भावना और तीव्र हो जाती है ।

स्थिर खलपात्र अपने साथ अपने चरित्र का संकेत लेकर कथानक में प्रवेश करता है । उसका चरित्र कथानक के विकास के साथ साथ विकसित नहीं होता प्रत्युत जैसे जैसे कथानक प्रगति करता है उसके पूर्व संकेत के पृष्ठ पर पृष्ठ खुलते जाते हैं। उसके चरित्र की विशेषतायें धीरे धीरे प्रस्फुटित हो,अपना पूर्ण रूप उपस्थित करती है । उसके चरित्र की विशेषतायें अपने स्पष्ट गुणों से युक्त होती है । निराला के अलका उपन्यास का महादेव पात्र स्थिर खल की कोटि में आता है । उसका चरित्र प्रारम्भ से ही उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है । उसमें परवर्तन की सम्भावनायें नहीं होती । उसका अन्त उदात्तीकरण में नहीं होता । उसके व्यक्तित्व का स्वरूप आद्योपांत एक सा रहता है ।

ख-गतिशील खल :

गतिशील खल के चरित्र में कोई दृढ़ता अथवा स्थिरता नहीं होती । वह अपने चरित्र का विशेष संकेत लेकर कथानक में अवतीर्ण नहीं होता और न उसका चरित्र किसी निश्चित रूप एवं गुण से युक्त । वह परिवर्तनशील एवं लचीला होता है उसमें शीघ्र सरलता से आ जाता है । इस दुर्बलता के कारण वह अपनी नीति संकल्प अथवा निश्चय पर अडिग नहीं रह पाता । कठिनाइयाँ,परिस्थिति सम्बन्धी एवं परिणाम आदि उसके निश्चय को बदल देते हैं । परिवर्तन शील खल के चरित्र का विकास कथानक के विकास के साथ नहीं अपितु उसके विकास के साथ-साथ भिन्न-भिन्न रूप धारण करता रहता है । उसके अन्दर इतनी कठोरता नहीं होती कि ग्लानि और

पश्चाताप उसके निकट न आये ।

गतिशील खल भी दो प्रकार के होते हैं एक तो वे जो ग्लानि अथवा पश्चाताप के उत्पन्न होने पर अपना रूप बदल कर सुधर जाते हैं और दूसरे वे जो परिस्थिति, [ग्लानि, असफलता] या अन्य कारणवश अपनी किसी विशेष दुष्टता का अथवा खलता की योजना का त्याग तो कर देते हैं लेकिन उनकी मूलभूत प्रकृति सर्वथा नहीं बदल जाती । परन्तु अपना रूप स्थिर रखते हैं । लज्जाराम शर्मा मेहता के "बिगड़े का सुधार" उपन्यास का खल पात्र 'वनमाली बाबू' गतिशील खल है जो पाश्चात्य सभ्यता और दुष्ट मित्रों के कारण खलता करता है । पर वास्तविकता से परिचित होने पर वह पश्चाताप कर अपना जीवन सुधार लेता है । दूसरे प्रकार का खल बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' का डाकू सरदार है जो संस्कार से खल न होते हुये भी परिस्थितिवश खल बन जाता है पर ब्राह्मण कुमार के निष्कपट चरित्र को देख कर उसका मन ग्लानि से भर जाता है और वह अपनी डाकू वृत्ति को छोड़ देता है । उसका रूप परिवर्तन हो जाता है ।

३- खल कार्य क्षेत्र की दृष्टि से :

क्षेत्र की दृष्टि से खलपात्रों का वर्गीकरण करते समय हम अपने पात्र के व्यवसाय अथवा व्यसन पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित करते हैं । उसके जीविकोपार्जन का साधन और उसके जीवनयापन की प्रणाली पर भी दृष्टि रखते हैं । पात्र किस कार्य में सबसे अधिक समय देता है, जिसमें उसकी सबसे अधिक रुचि है , उसका जीवन क्रम , जीवनचर्या और जीवन क्षेत्र क्या है इन्हें भी दृष्टि में रखना पड़ता है ।

धर्म, राजनीति एवं समाज-तत्व से ही सदैव मानव चिन्तन के विषय रहे हैं । धर्म, राजनीति एवं समाज ही उसका कार्य क्षेत्र रहा है । अपने देश की रक्षा, उसकी उन्नति एवं उसकी मर्यादा का ध्यान मनुष्य का कर्तव्य है परन्तु खल इसके विपरीत अपने क्षेत्र को अपवित्र कर उसे क्षति पहुँचाता है । अपने क्षेत्र की मर्यादा को भंग कर उसमें अशान्ति, अव्यवस्था एवं अनाचार के लक्षण उत्पन्न कर देता है।

क्षेत्र की दृष्टि से खल पात्रों को तीन कोटि में विभाजित करते

हैं। धार्मिक,राजनीतिक एवं सामाजिक।

क- धार्मिक खल पात्र :

धार्मिक क्षेत्र में क्रियाशील खल अपने बाह्य रूप,वेशभूषा,केश-विन्यास,रुचि एवं कर्मनिष्ठता के आधार पर धार्मिक वर्ग में स्थान प्राप्त करता है। उसका धार्मिक मर्म परिधान,आडम्बर तथा रूप उसे धार्मिक वर्ग में स्थान प्रदान करता है।[1] सभी देशों में अपराधों का घनिष्ट संबंध धर्म और अंधविश्वास से पाया गया है। डाकूओं इत्यादि की रीति नीति का अध्ययन करते हुए यह देखा गया है कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं,देवी की पूजा करते हैं, बलि चढ़ाते हैं और उनके अनेक अंधविश्वास भी होते हैं।[2] उनके विश्वासों में पूर्ण आस्तिकता होती है ढोंग या कपट नहीं।

किन्तु जब हम धार्मिक खल की बात करते हैं तो हमारे विचार्य वे खल होते हैं जो धर्म को ही अपनी खलता का क्षेत्र बनाते हैं और धर्म के माध्यम से अर्थात धर्म का लिबास ओढ़ कर दुष्टकार्यों में प्रवृत्त होते हैं। भारत तो रूढ़ियों और धार्मिक रिवाजों का देश ही है यह रीति नीतियाँ समाज के उचित संचालन ही के लिए निर्मित हुईं,किन्तु कभी कभी यही अनुचित ढंग से समाजविरोधी क्रियाओं का माध्यम बन जाती हैं। धर्म के कारण हमारे यहाँ नरबलि ,आत्म बलि,देवदासी, जैसी अमानुषिक प्रथाओं का प्रचार हुआ और इसके कारण ही बहुत सा आलस्य और शोषण समाज में फैला हुआ है जिसका केन्द्र महन्त,पंडे,पुरोहित तथा कथित

---

1. Barnes and Teeters - "Religion sometimes serves, on the other hand, as a cloak for their villainy." p.74 New Horizons in criminology
2. Havelock Ellis. - The criminal p. 185-86

साधु आदि हो जाते है । जय शंकर प्रसाद का कंकाल तो ऐसे ही खल पात्रों का जमघट है ।

धर्मान्ध एवं रुढ़िग्रस्त चरित्र भी कभी कभी खल के रूप में दर्शन देते है । स्वार्थवृत्ति को सर्वोपरी लेकर चलने वाले, धर्म-अधर्म के विवेक की उपेक्षा करके, अज्ञानवश अपने कृत्यों का मूल्यांकन करने में असमर्थ, अतः पात्र खल ही है । अपने पाप, कुकर्म एवं अधर्म को धार्मिक आडम्बर के आवरण में छिपाए रखने वाले पात्र भी धार्मिक खल है ।

राजनैतिक तथा सामाजिक खल की अपेक्षा धार्मिक खल अधिक निंदनीय एवं घृणित रूप प्रस्तुत करता है । परम्परागत पवित्र धार्मिक धारणाओं को अपवित्र एवं धर्म को कलुषित करने का अपराधी होता है । वह ऐसे दुराव का अवलम्ब ग्रहण करता है जो मानव जाति की और मानव संस्कृति की सबसे श्रेष्ठ संपत्ति एवं बल है ।

धर्म का आवरण खल के लिये अत्यंत अनुकूल है । वह ऐसा आवरण है जिसमें प्रत्यक्षतः उसके सम्पूर्ण दोष सरलता से छिप जाते हैं । खल के भाव धोखा देने के लिये इससे उत्तम अन्य साधन नहीं होता । जयशंकर प्रसाद के कंकाल का "देवनिरंजन" धार्मिक खल है । धर्म की आड़ में ही वह व्यभिचार करता है ।

ख-राजनैतिक खल :

राजनीति में रुचि और राजनैतिक कार्य क्षेत्र में जो अशुभ भाव को राजनीतिक खलों में स्थान प्रदान करते हैं ।

राजनैतिक खल शासक, शासित, नेता अथवा अन्य किसी वर्ग का भी हो सकता है । उसकी पद स्थिति नहीं वरन् कार्य और रुचि उसे राजनीतिक होने का अधिकार देती है । यों तो राजनैतिक अपराधी प्रायः वह व्यक्ति होता है जो एक संवैधानिक शासन को उलटने में प्रयत्नशील होता है । किन्तु ऐसे व्यक्तियों (जिनकी नामावली के भीतर गांधी, सुभाष, जवाहरलाल नेहरू, कार्नेल, अब्राहम लिंकन लेनिन आदि आते हैं) का व्यवहार समाज विरोधी नहीं होता वरन् इसके विपरीत

ये तो ऐसे नेता शहीद और संत होते है जो समाज विरोधी तत्वों से ही जूझते है अत: हमारा मानदंड समाज विरोधी ~~तत्वों से ही~~ आधार ही होगा । राजनीति में साम,दाम,दंड भेद नीति के अंग हैं । ~~किन्तु~~ किन्तु उपन्यासकार की दृष्टि राजनीति की दृष्टि से नहीं वरन् सत्-असत् की दृष्टि एवम् से,सदाचार दुराचार की दृष्टि से,पात्रों के क्रिया कलाप का मूल्यांकन करती है। इसी आधार पर हम उन व्यक्तियों को हतपात्र कहते है जो षड़यंत्रकारी है, विश्वासघाती है और देश के विभीषण है । इस प्रकार लेखक के निर्णय का आधार राजनीति नहीं लोकमत होता है ।

राजनीतिक दल का जीवन, लक्ष्य एवं उद्देश्य महत्वाकांक्षा और जीविकोपार्जन भी होता है । कोई दल व्यक्तिगत स्वार्थ के हेतु इस क्षेत्र में रुचि प्रदर्शित करता है और देशभक्ति की आड़ में जानबूझ कर मातृभूमि का अहित करता है , कुछ राजनैतिक दल प्रत्यक्ष रूप से प्रजा के हित के लिये नहीं वरन् अपनी किसी स्वार्थपूर्ति के लिये विद्रोह एवं राष्ट्र के साथ विश्वासघात करते हैं । इसके अतिरिक्त एक प्रकार के राजनैतिक दल और होते हैं वे हैं अयोग्य व्यक्ति, राजनीति के ज्ञान से सर्वथा रहित । वे जानबूझ कर देश का अहित तो नहीं चाहते परन्तु अज्ञान वश और दूरदर्शिता के अभाव में देश को पतन की ओर ले जाकर संसार में उसकी प्रतिष्ठा एवं मान को नष्ट कर देते हैं । इस अंतिम वर्ग में हमारे आलोच्य उपन्यासों में अधिकांशत: ऐतिहासिक पात्र देखने में आते है जैसे मीरजाफर खाँ[१] सिराजुद्दौला[२] आदि । कुछ ऐसे भी है जो लेखक की कल्पना की उपज है और जिनके द्वारा लेखक कोई संदेश देना चाहता है ।

१- किशोरी लाल गोस्वामी के हृदयहारिणी उपन्यास का 'मीरजाफर' खाँ पद लिप्सा के लोभ में अंग्रेजों से मिल कर अपने राजा,का अहित करता है और देश की बाग डोर अंग्रेजों के हाथ में दे देता है ।

२- अयोग्य शासक

ग सामाजिक खल :

धार्मिक तथा राजनीतिक समाज समष्टि के दो व्यष्टि क्षेत्र है। धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में समूह की भावना नहीं है। धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में एक ही प्रकार का वर्ग सम्मिलित है। सामाजिक क्षेत्र समूह की भावना से परिपूर्ण है। इस क्षेत्र में अनेक वर्ग समाहित है। साहित्यिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, व्यवसायी, कलात्मक, अफसर, अधिकारी, पुलिस, सैनिक, जमींदार, किसान, मजदूर, वकील डाक्टर, शिक्षक, विद्यार्थी, कर्मचारी, भिखारी, आदि अनेक वर्ग इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

समाज में कुछ पेशे ऐसे है जिनसे संबंधित पात्र का रूप ही खल है जैसे डाकू, चोर, ठग, गुंडा, कुटना, तस्कर, ब्लैकमेलर आदि। इनके नाम एवं रूप ही खलता के द्योतक है। ऐसे पात्र खलता का साकार रूप है।

कुछ व्यसन ऐसे है जिनमें फँस कर पात्र खल बन जाता है जैसे जुआरी, शराबी, वेश्यागामी ऐसे पात्र है जिनके खल होने की सम्भावनाये अत्यधिक होती है जिसके अन्दर इसकी लत पड़ जाती है वह अवश्यमेव खल का रूप धारण कर लेता है। इसके अतिरिक्त कुछ आदिवासी जातियाँ भी है जिनकी खलता जरायम पेशा ही होती है।

समाज में कुछ वर्ग ऐसे है जिनसे संबंधित पात्र बहुधा खल के रूप मे चित्रित हो जाते है जैसे पुलिस, वकील, डाक्टर, वैज्ञानिक, व्यवसायी, जमींदार आदि। इन वर्गों में खलता या तो परम्परा से व्याप्त है या इनमें खलता की सम्भावनाये तथा अवसर उपस्थित है।

सामाजिक खल समाज को अनेक प्रकार से पीड़ित करते है। कलह, अपहरण, बलात्कार, विद्रोह, विनाशकारी आविष्कार, हानिकारक उत्पादन, अश्लील रचनाये, घूसखोरी, अत्याचार, कृतघ्नता, चारित्रहीनता, मुनाफाखोरी, धोखा, हिंसा, मारपीट, झगड़ा आदि द्वारा समाज में अव्यवस्था तथा अशान्ति उत्पन्न करते है।

गोपाल राम गहमरी के 'घटना घटा टोप या जमींदारों का जुल्म' उपन्यास का पात्र बांकलसिंह सामाजिक खल है जो जमींदारों का सरदार होने के कारण

धनलिप्सा के वश उनको पाप करता है। इसी तरह वृंदावन लाल वर्मा के कुंडली चक्र उपन्यास का खलपात्र मुकुन्द धनलिप्सा के वशीभूत हो झूठ, धोखा, आडम्बर विश्वासघात आदि के सहारे अपनी स्वार्थ पूर्ति करना चाहता है साथ ही वह बहुविवाह का भी समर्थन करता है जो समाज में कुरीति समझी जाती है। ये खलपात्र अनाचार को फैलाते हैं सामाजिक कुप्रवृत्तियों को प्रेरणा देते हैं। संस्कृति को पतनशील बनाते हैं। राष्ट्र की सम्पत्ति का नाश करते हैं।

३- रूप की दृष्टि से

रूप की दृष्टि से खलों का वर्गीकरण करते समय हम उनके रूप पर दृष्टिपात करते हैं। इस क्रिया से खल कई रूपों में दृष्टिगत होता है। रूप से कोई खल यथार्थवादी कोई मनोवैज्ञानिक कोई पौराणिक तथा कोई ऐतिहासिक प्रतीत होता है। किसी पात्र को विचार, किसी पात्र को मन की प्रकृति, किसी पात्र को काल एवं किसी पात्र को इतिहास, उसके रूप को प्रदान करता है। अतः इस दृष्टि के अन्तर्गत हम पात्रों को यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक चार वर्गों में विभाजित करते हैं।

क-यथार्थवादी खल -किसी खल का रूप आदर्शवादी प्रायः नहीं पाया जाता। खल का रूप सदैव यथार्थवादी रहा है। खलता और आदर्श में कहीं पर भी किसी प्रकार से कोई संबंध है ही नहीं। खलता के निकट आदर्श और आदर्श के निकट खलता कभी निवास कर ही नहीं सकती। खलता कुछ और है आदर्श कुछ और। खलता गुण और रूप में आदर्श से सर्वथा विपरीत है।

~~यथार्थवादी खल :~~

पात्र का जीवन दर्शन, उसका विश्वास, उसका दृष्टिकोण उसके अतिरिक्त उसका वास्तविक जीवन जब वस्तुतः वैसा ही प्रतीत होता है जैसा सामान्यतया इस संसार में पाया जाता है तब हम उसे यथार्थवादी खल कहते हैं।

खल केवल इस दृश्यमान संसार से ही परिचित होता है। उसके

सम्मुख उसके महान पुरुषार्थ स्वार्थ ही होता है कोरा स्वार्थ ही नहीं स्वार्थ जो स्वाभाविक है उसका स्वार्थ ऐसा है जिसमें अहित एवं परपीड़ा का कोई मूल्य नहीं है। सांसारिक उपलब्धियों को वह केवल विषय भोग की दृष्टि से ही देखता है।

यथार्थवादी खल का विचार एवं मत यह होता है कि इस भौतिक जगत के परे कुछ सोचना व्यर्थ है। ऐसा दृष्टिकोण उसमें अनास्था उत्पन्न कर देता है। वह धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य का कोई विचार नहीं करता। परिस्थिति एवं अवसर, आवश्यकता एवं इच्छा पूर्ति का जो भी मार्ग उपस्थित करें उसे वह ग्रहण कर लेता है। उसका लक्ष्य एवं उद्देश्य केवल यही होता है कि शारीरिक एवं ऐन्द्रिक मांगों की किस तरह भी हो पूर्ति की जानी चाहिये। वह संसार को केवल उसकी प्रत्यक्ष स्थिति एवं उसके भौतिक रूप की ही मान्यता देता है। भविष्य एवं आदर्श के चिंतन को वह मूर्खता समझता है। क्या होना चाहिये इसका ध्यान उसे नहीं रहता, क्या है बस वह उसी को देखना एवं उसी के अनुसार करना चाहता है।

निराला के अप्सरा उपन्यास का " कुँवर विजय प्रताप सिंह " और कल्याण सिंह शेखावत के उपन्यास " हेर - फेर " का " रतन पाल " यथार्थवादी खल है। रतन प्रारम्भ में खल न होते हुये भी अन्त में खल बन जाता है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने से अधिक योग्य प्रशंसक और बुद्धिमान मनुष्य को समाज में प्रतिष्ठित होते हुये नहीं देख सकता। रतन की यही मानव सुलभ कमजोरी ने उसे खल बना दिया। इसे स्पर्धा का भाव कहते हैं।

ख- मनोवैज्ञानिक खल :

जब हम मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि से खलपात्रों के शील की ओर अग्रसर होते हैं तो इसके दो पक्ष दिखाई देते हैं (१) वस्तु परक (Objective) (२) आत्म परक (Subjective)

(१) धूर्तता खल के लिये एक अत्यंत आवश्यक योग्यता है। इस धूर्तता

का परिचय उसके निरीक्षण अन्वेषण एवं अनुसंधान के गुणों से प्राप्त हो जाता है । खल प्रायः मूर्ख नहीं होता । प्रायः सभी खल मनोवैज्ञानिकता के आधार पर कार्य करते हैं वह परिस्थितियों को, अपनी शक्ति को, उचित ढंग से तौल कर अपनी वाणी और कर्म को निर्धारित एवं निर्दिष्ट करता है । उसका जीवन पद-पद आपद-ग्रस्त होता है । अतः सावधानी उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है । यही सावधानी उसकी चतुराई और चालाकी है । इस दृष्टि से खलमात्र प्रायः मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं और हम अधिकांश खलों को मनोवैज्ञानिक कह सकते हैं।

किन्तु यहाँ हमारी दृष्टि इससे कुछ भिन्न है । यहाँ हम खल नहीं वरन् लेखक की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि को अपना आधार बनाते हैं ।

(२) मनोवैज्ञानिक खलका लक्षण यह होता है कि हमें उसके मन में विद्यमान उथल - पुथल तथा संकल्प- विकल्प का विस्तृत परिचय प्राप्त होता है । जिस खल की केवल बाह्य स्थितियों का ही नहीं अपितु उसकी मानसिक उलझन और द्वन्द्व पर भी सूक्ष्म प्रकाश डाला जाता है उसे हम मनोवैज्ञानिक खल की कोटि में रख रहे हैं ।

१९वीं शताब्दी में मनोविज्ञान की प्रगति से एवं चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिक प्रणाली ने जो व्यक्तित्व की नूतन व्याख्यायें प्रस्तुत की उनसे खल के स्वरूप में परिवर्तन प्रस्तुत होता है । अब खल केवल नायक के मार्ग में बाधा उपस्थित करने वाला प्रतिद्वंद्वी अथवा अधिकार पिपासु ही नहीं रहा । लेखक उसकी मनः स्थिति तथा उसके अन्तर में निवास करने वाले अवगुण पर प्रकाश डालकर उसके अन्तः प्रेरणाओं तक पहुँच दिखाता है । इस दृष्टि से समाज का कोई भी व्यक्ति खल हो सकता है, मनोविज्ञान ने इसे प्रतिपादित कर दिया है । समाज के प्रत्येक वर्ग, वर्ण, पेशे को खल रूप में प्रस्तुत किये जाने की सम्भावना की जाने लगी । उपन्यासकार के मन में पाप की परिकल्पना जब नितान्त बंधी हुई लकीरों में स्पष्ट नहीं है वैसी प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में सम्भवतः थी । भगवती चरण वर्मा ने तो पाप के मापदंडों की संशयात्मक स्थिति के प्रश्न को उठा कर ही चित्रलेखा उपन्यास की रचना की है । एक स्थान पर कहते हैं -" पाप क्या है ? उसको कौन समझता है । जिसको मैं पाप समझता हूं, उसको दूसरा व्यक्ति सम्भवतः पाप न माने और साथ ही बहुत सी

बातें जिन पर हम ध्यान तक नहीं देते, बहुतों के लिये पाप हो सकती है ।[1]
हमारे आलोच्य उपन्यास प्रायः मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण विज्ञान के सीमित वैज्ञानिक अर्थों को लेकर नहीं चलते इस युग का मनोविज्ञान " दार्शनिक मनोविज्ञान ही कहा जा सकता है । प्रेमचन्द ने कुछ "विचार " में स्वतः ही लिखा है कि
इस विषय में अभी तक मतभेद है कि उपन्यास में मानवीय दुर्बलताओं और कुवासनाओं का, कमजोरियों और अपकीर्तियों का विशद वर्णन वांछनीय है या नहीं, मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि जो लेखक अपने को इन्हीं विषयों में बाँध लेता है वह कभी उस कला सिद्धि की महानता को नहीं पा सकता जो जीवन संग्राम में एक मनुष्य की आन्तरिक दशा को सत् और असत् के संघर्ष और अन्त में सत्य की विजय को मार्मिक ढंग से दर्शाता है ।"[2] फिर भी कुछ उपन्यासकारों ने व्यक्ति मानस की जो पैठ दिखाई है, पात्रों की कुंठाओं और द्वंद्वों का जो विश्लेषण किया है उसके आधार पर ही हम मनोवैज्ञानिक पात्रों को देखते हैं । इस दृष्टि से जैनेन्द्र के उपन्यास " परख " 'सुनीता' तथा इलाचन्द्र जोशी का 'लज्जा' उपन्यास ही हमारी सीमा रेखाओं के अन्दर नहीं आते वरन् प्रेमचन्द के निर्मला उपन्यास के 'मुंशी तोताराम,' चतुरसेन शास्त्री के हृदय की प्यास के "प्रवीण " वृंदावन लाल वर्मा के गढ़कुंडार का "नागदेव " सियाराम शरण गुप्त के गोद का "दुखिया राम चन्द्र " भगवतीचरण वर्मा के चित्रलेखा की 'चित्रलेखा " हमारे लिये विचारणीय हैं ।

प्रेम चन्द ने ही सर्व प्रथम उपन्यास में मनोविज्ञान का सूत्रपात किया ।[3]

१- भगवती चरण वर्मा - चित्रलेखा पृ० १०२ उन्नीसवीं आवृत्ति

२- प्रेम चन्द - कुछ विचार पृ० ७२

३- "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"
कुछ विचार पृ० ३०

"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ ———— चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है ।"
प्रेम चन्द - कुछ विचार पृ० ५३

प्रेम चन्द के अनुसार " मानव चरित्र न बिल्कुल श्यामल होता है न बिल्कुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र सम्मिश्रण होता है।" [1] इस दृष्टि से सफलता के नये खुले साँचों को निर्धारित करने का काम कठिन हो जाता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में जीवन-उसकी जटिलताओं, वैषम्य तथा संघर्ष को समाविष्ट किया है। क्योंकि मानसिक द्वन्द्व उपन्यास या गल्प का खास अंग है।" [2] प्रेम चन्द ने अपने सेवासदन उपन्यास में 'सुमन', रंगभूमि में 'सूरदास' और ग़बन में 'रमानाथ' की मनोवैज्ञानिक स्थिति का चित्रण बड़ी ही सफलता के साथ किया है।

इससे कुछ भिन्न दृष्टि मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार की है। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार श्वेत कार्यों के पीछे भी कभी कभी श्यामवृत्तियों की प्रेरणा देखता है। मनोविश्लेषण वाद का प्रभाव जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यासों में है। जैनेन्द्र इलाचन्द्र जोशी आदि उपन्यासकार अन्तश्चेतना को लेकर चले हैं इस दृष्टि से बहुत से पात्र बाह्य रूप से खल नहीं हैं पर उनके आन्तरिक खलत्व का परिचय मिल जाता है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में खल की स्वतंत्र उत्पत्ति न कर एक ही पात्र में सत् असत् का मिश्रण देखा है।

उपर्युक्त दोनों प्रकारोंमें मूलभूत अन्तर आदर्शवाद और यथार्थवाद का है। प्रथम प्रकार की दृष्टि मानव को मानव मान कर चलती है, उसको दुर्बल मानकर भी उसमें उत्कर्ष की सम्भावनायें देखती है और जहाँ मौका लगता है उत्कर्ष हो जाता है। प्रेमचन्द ने कहा -" मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल प्रपंच या और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है - उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगा कर, प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करके।" [3] प्रेमचन्द के हीरा, सुंदर ज्ञानशंकर आदि जिनमें

१- प्रेम चन्द - प्रेमाश्रम पृ० ३६१

२- प्रेम चन्द - कुछ विचार पृ० ७०

३- प्रेम चन्द - कुछ विचार पृ० ११०

ही पात्र है जो मानव के उत्कर्ष के प्रमाण है । दूसरी ओर मनोविश्लेषणवादी मानव के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कार्मों, वाणी एवं व्यापारों के पीछे उसकी स्वार्थ वृत्ति, उसकी महत्वाकांक्षा उसकी हीन ग्रंथि अथवा कामवृत्ति के कीड़े को छिपा हुआ पाता है । इस प्रकार मनोविश्लेषणवादी दृष्टि आदर्शों की खोखला दिखाती हुई यथार्थ की नग्नता को सामने लाती है ।

ग-पौराणिक खल :

हिन्दी में पौराणिक उपन्यासों की संख्या नगण्य है । उपन्यास साहित्य की अत्यन्त आधुनिक विधा है अतः उसमें पौराणिक चित्रण के लिए अवकाश प्राय: नहीं ही है ।

पुराणों के खल राक्षस, असुर और दानव रहे हैं । इसके अतिरिक्त दुष्ट और क्रूर राक्षगण एवं कर्म का कुठा रूप धारण करने वाले व्यक्ति भी । पौराणिक खल नायक अधिकतर प्रतिनायक के रूप में ही दृष्टिगत होते हैं । कहीं कहीं पौराणिक खल सहायक पात्र के रूप में भी मिलते हैं । पौराणिक खल का रूप दानवी एवं मानवी दोनों ही है । चारुणी प्रसाद शर्मा के पौराणिक उपन्यास 'सती सुलोचना' में रावण कुम्भकरण, शूर्पनखा आदि खल के रूप में आये है । इन खलपात्रों का चित्रण लेखक ने पौराणिक कथाओं के आधार पर ही किया है । दुष्ट रावण ऋषि-मुनियों से राज्य कर प्राप्त करने के लिए उनके शरीर का मांस या रक्त कर के रूप में वसूल करता है जिससे उसकी क्रूर, एवं राक्षसी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है ।

घ-ऐतिहासिक खल :

ऐतिहासिक उपन्यास के पात्र तो ऐतिहासिक वर्ग में स्थान पाते ही हैं इसके अतिरिक्त अन्य उपन्यासों में भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है । ऐतिहासिक के अतिरिक्त अन्य उपन्यासों में न तो वे कोई भूमिका ही निभाते

हैं और न कोई अभिनय करते हैं । वे मूक, एवं गतिरहित होते हैं । अन्य उपन्यासों में कोई पात्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व का किसी अवसर पर रूप धारण एवं उपस्थित कर सकता है परन्तु इसमें इतिहास का वास्तविक पात्र नहीं प्रस्तुत होता अत: हम उसे मूक और गतिरहित कहते हैं । ऐसे अवसर पर जो पात्र क्रियाशील होता है वह केवल ऐतिहासिक पात्र का प्रतिरूप होता है न कि स्वयं वह ।

ऐतिहासिक खल एक तो वे हैं जो इतिहास के वास्तविक चरित्र हैं और दूसरे वे जो कथानक के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए वास्तविक चरित्र के साथ सम्बद्ध आते हैं । ऐसे पात्रों के अस्तित्व की प्रामाणिकता यद्यपि इतिहास द्वारा सिद्ध नहीं होती तथापि ऐतिहासिक उपन्यास में उनकी भूमिका उन्हें ऐतिहासिक बना देती है ।

ऐतिहासिक खल की कोटि में प्राय: वही चरित्र आते हैं जो देश द्रोही हुए हैं और जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए देश की स्वतंत्रता पर आघात किया है । ऐतिहासिक खल केवल देशद्रोही ही नहीं समाज द्रोही एवं धर्म द्रोही के रूप में भी प्रस्तुत हुये हैं । ऐतिहासिक खल का रूप धार्मिक राजनैतिक अथवा सामाजिक कुछ भी हो सकता है। ऐतिहासिक खल केवल अधिकार अथवा राज्यलोलुप ही नहीं वरन कामलोलुप, महत्वाकांक्षी तथा धनलोलुप भी है । ब्रजनन्दन सहाय के लालचीन उपन्यास का 'लालचीन' और किशोरी लाल गोस्वामी के तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी उपन्यास का 'सलाबत खाँ' ऐतिहासिक खल की कोटि में आते हैं । ये स्वार्थवश धनलोलुपता से वशीभूत हो देश द्रोह करते हैं ।

५- क्रिया की दृष्टि से :

इस दृष्टि से खल का वर्गीकरण करते समय हम इस बात पर विचार करते हैं कि वह अपना किस प्रकार करता है । वह विरोध प्रकट रूप से करता है अथवा अप्रकट रूप से । उसकी क्रिया परोक्ष रूप से होती है अथवा अपरोक्ष ।

क) अपरोक्ष खल —

क-अपरोक्ष खल :

खल के जितने भी क्रियाशील रूप बतलाये गए हैं । उनमें सभी में परोक्ष एवं अपरोक्ष दोनों की ही सम्भावनायें हैं ।

खल को अपरोक्ष उसी अवस्था में कहा जाता है जब वह प्रगट रूप से स्वयं एवं दूसरे के द्वारा खलता करता अथवा करवाता है । यह सत्य है कि अपरोक्ष खल भी अपनी खलता को दुराव के आवरण में आच्छादित रखता है । दुराव प्रकाश में आ जाये इससे वह भयभीत भी रहता है । परन्तु वह सम्मुख आने से घबराता नहीं। शत्रु प्रतिद्वंद्वी प्रतिपक्षी पर उसकी घृणा,ईर्ष्या,द्वेष अथवा बैर प्रगट हो जाये इसकी चिंता उसे नहीं होती । वह खुल कर विरोध करता है । बाबू चतुर्भुज सहाय के कुमारी चन्द्रकिरण उपन्यास का 'कट्टर खाँ' पात्र अपरोक्ष खल के रूप में आया है।

ख-परोक्ष खल :

जब पात्र को परोक्ष उस अवस्था में कहते हैं जब वह स्वयं या किसी के द्वारा अप्रगट रूप से खलता करता अथवा करवाता है । ऐसा करना किसी कारण वश उसके हित के अनुकूल होता है ।

परोक्ष खल सम्मुख आने का साहस नहीं करता । वह चाहता है कि उसके द्वारा पहुँचाई गई,आपत्ति आदि का स्रोत गुप्त रहे । परोक्ष रूप से खलता करने का कभी कभी यह कारण भी होता है कि इस विधि से उद्देश्य पूर्ति में सरलता एवं साध्यता प्रतीत होती है । परोक्ष खल के पृष्ठ में कुटिलता अधिक परिलक्षित होती है ।

खलता की परोक्ष विधि ही खल के अधिक अनुकूल होती है । अपरोक्ष मार्ग का अनुसरण परोक्ष मार्ग के अभाव में ही किया-जाता है । अपरोक्ष के लिए पर्याप्त स्थिति ,साधन,सुरक्षितता एवं धैर्य न होने के कारण भी खल परोक्ष मार्ग को अपनाता है । जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक खल यथासम्भव तथा यथासाध्य परोक्ष ही रहना चाहता है । दुराव ही तो खलता

का सबसे प्रबल शस्त्र है और परोक्षा की भावना गौण है । कृष्ण चरण जैन के भाई उपन्यास का खलपात्र " कुबड़ी कौवी " परोक्षा खल की कोटि में आता है उसका प्रत्येक कार्य दुराव से आच्छादित है ।

वर्गीकरण के नवीन दृष्टिकोण के आधारभूत तर्क :

पात्र के वर्गीकरण का पूर्वोक्त परम्परागत प्रतिपादित दृष्टिकोण खल वर्गीकरण की आवश्यकता को पूर्णतया: संतुष्ट नहीं करता । वर्गों का निश्चय अथवा निर्धारण एक ही पात्र को विभिन्न दृष्टियों से निरीक्षण करने के लिये किया जाता है । उपन्यासों के अध्ययन एवं उनमें प्रतिपादित खल चरित्रों के अनुसंधान एवं विश्लेषण से प्रकट होता है कि उनके व्यापक एवं सूक्ष्म परीक्षण हेतु अतिरिक्त दृष्टिकोण भी अपेक्षित है । परम्परागत वर्गीकरण उसके विविध लक्षण, प्रवृत्ति, दशा, गुण एवं रूप आदि का परिचय प्राप्त कराने के लिये पर्याप्त नहीं है । परम्परागत दृष्टिकोणों से खल का वर्गीकरण करने के उपरान्त उसके चरित्र के परीक्षण योग्य कुछ ऐसे स्पष्ट पक्ष तथा रूप शेष रह जाते हैं जो उनसे निर्दिष्ट नहीं होते ।

खल चरित्र के ये आकर्षणीय पक्ष तथा रूप वर्गीकरण के नवीन दृष्टिकोणों की उत्पत्ति करते हैं ।

प्रस्तुत वर्गीकरण की सम्भावना एवं सूक्ष्म खल चरित्र के आधार अनुशीलन एवं निरीक्षण के परिणाम स्वरूप उपस्थित की गई है ।

६- अपराध की दृष्टि से

अपराध की दृष्टि से खल का वर्गीकरण करते समय हम देखते हैं कि खल अपने अपराध , अपराध के रूप एवं परिणाम से कहाँ तक परिचित है । उसने अपराध किस स्थिति में किया है । न्याय के सम्मुख दोषी होते हुये भी वह कितने दंड का अधिकारी है । उसका अपराध किस सीमा तक क्षम्य है और किस सीमा तक नहीं । क्षम्य का अर्थ यह है कि उसके अपराध की गुरुता कितनी है । दोषी तो वह

है ही। उसके द्वारा हुई हत्या का उसे कितना ज्ञान था और कितना जान बूझ कर उसने अपराध किया। इन तथ्यों के आधार पर हम खल के लिये दो वर्ग निश्चित करते हैं; अभिज्ञ खल और अनभिज्ञ खल।

क- अभिज्ञ खल :

अभिज्ञ खल हम उस पात्र को कहते हैं जो अपने अपराध से भिज्ञ रहता है और उसका अपराध जानबूझ रहता है क्योंकि वह किस स्वार्थ के लिये हत्या कर रहा है, उसकी हत्या क्या है? उस हत्या को किस ढंग से करना चाहता है और उस हत्या के द्वारा क्या परिणाम चाहता है इन सब बातों से वह भिज्ञ रहता है।

उद्देश्य की प्राप्ति हो अथवा नहीं, योजना या षड्यंत्र सफल हो अथवा नहीं, सफलता उसी रूप में प्राप्त हो जैसी उसने परिणाम स्वरूप सोची थी अथवा नहीं, रहता है वह अपने संकल्प से, अपनी हत्या से और अपने उद्देश्य से पूर्णतः परिचित। वह अपने निश्चित ढंग से निश्चित स्थान पर और निश्चित परिणाम के लिये प्रहार करता है। उसका प्रहार संयोगवश निश्चित स्थान पर न पड़ कर अन्यत्र भी पड़ सकता है, आघात जितना वह चाहता था उतना नहीं भी पड़ सकता, ऐसा भी हो सकता है कि किसी बाधा के उत्पन्न हो जाने से उसे आघात का अवसर ही न प्राप्त हो। इस प्रकार की कोई भी स्थिति ऐसा अन्तर नहीं उपस्थित करती जिससे यह कह सकें कि वह अपने अपराध से भिज्ञ नहीं था। वह अपने अपराध के हर चरण अर्थात उसके कारण, रूप एवं परिणाम सबसे भिज्ञ रहता है। अपराध का कारण उसके पास रहता है, अपराध की योजना वह स्वयं बनाता है और अपने अपराध द्वारा जो स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है उससे भी वह पूर्णतया भिज्ञ रहता है। जो पात्र यह जानते हुये कि वह हत्या से अपराध करता है वह अभिज्ञ खल है जिसका अपराध आदि से अन्त तक सजग प्रतीत होता है वह पात्र अभिज्ञ खल है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव के "विकास" उपन्यास की खलनायिका "मिस ट्रुबीलियन" उर्फ "रोजिनर रोज" अभिज्ञ खल की कोटि में स्थान रखती है। वह जानबूझ कर हत्या करती है।

ख- अनभिज्ञ खल :

कभी कभी संदेह अथवा भ्रम वश अनायास मनुष्य से ऐसा अपराध हो जाता है और जिसका परिणाम इतना भयंकर रूप धारण कर लेता है कि वह अपराधी को खल बना देता है । ऐसी स्थिति में अपराध खलता का रूप ग्रहण कर लेता है । और मनुष्य के खलता का दोषी बना देता है । इस प्रकार के अपराधियों को हैवलाक एलिस ने प्रसंगवश अपराधियों के अन्तर्गत रखा है जिनकी मुख्य विशेषता दुर्बलता होती है वे न तो प्रलोभन का सामना करने की शक्ति रखते हैं और न अपने आवेश को ही वश में रख पाते हैं । प्रायः अभाव इनकी खलता की जड़ में होता है । प्राचीन काल में इस प्रकार के अपराधियों के पाप को अकामकृत कहा गया था ।

यह सत्य है, संदेह अथवा भ्रम सत् पात्र में कभी खलता का कारण नहीं बनता । सत् पात्र अपने संदेह आदि की पुष्टि अथवा निवारण, धैर्य एवं दूरदर्शिता से कर लेता है । खल अपने संदेह आदि की पुष्टि उचित प्रमाणों से नहीं अन्य संदेह से करता है । खल संदेह से संदेह की पुष्टि करता है ।

अनभिज्ञ खल भी अपनी खलता के प्रत्येक चरण से अवगत रहता है । वह भी अपनी खलता का कारण उसका रूप, अपनी योजना और अपने उद्देश्य से भली भाँति परिचित रहता है ।

अनभिज्ञ खल और अभिज्ञ खल में अन्तर केवल इतना ही है कि अनभिज्ञ खल उस परिणाम की न कोई रूपरेखा अपने मन में निश्चित किये रहता है और न उसकी कोई आशा ही रखता है जो परिणाम स्वरूप उसके सम्मुख आ उपस्थित होता है । अभिज्ञ खल के उस कर्म में जिसके कारण हम उसे खल कहते हैं आदि से अन्त तक अन्तर नहीं रहती है । अनभिज्ञ खल का वह कर्म जिसके कारण वह खल घोषित किया जाता है आदि में उसका रूप खलता का न होकर अपराध एवं अन्याय की सीमा में ही रहता है । अन्त में जब उस अपराध अथवा अन्याय का रूप परिणाम स्वरूप पापमय एवं अकल्पनीय प्रतीत होता है तभी वह उसे खल घोषित करता है ।

संदेह अथवा भ्रमवश शरीर द्वारा जब किसी की हानि हो जाती है तो उसे प्रायः भावना की दृष्टि से देखा जाता है खल की कोटि में नहीं ढकेला जाता ।

संदेह और भ्रम को अपने स्वार्थ में बाधक पाकर, स्वार्थ रक्षा के लिये योजना की रचना कर जब पात्र किसी का अहित करने के लिये तत्पर हो जाता है उसकी योजना में परिणाम की कल्पना की कमी रहती है और वह जो कुछ भी करता है वह संदेहों के वशीभूत या क्रोध आवेश में कर बैठता अनायास ठंडे दिल से करके, कभी वह खलता का दोषी होता है। ऐसी स्थिति में उत्पन्न खलता पात्र को अनभिज्ञ खल का रूप प्रदान करती है। प्रेमचन्द के निर्मला उपन्यास का पात्र मुंशी 'तोताराम' अनभिज्ञ खल है जो संदेह वश अपने बच्चे और पत्नी का जीवन नष्ट कर देता है। उसकी खलता अनजान में पनपती है उसके द्वारा किया गया कार्य और उसका परिणाम ही उसे खल बना देता है। ऐसे खल में रूपान्तर, चरित्र परिवर्तन की सम्भावनायें अधिक होती है क्योंकि कभी कभी वह स्वयं ही अपने अपराध के प्रति सजग नहीं होता।

७- मान्यता की दृष्टि से :

इस दृष्टि से खल का वर्गीकरण करने में हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि खल का रूप माना हुआ है अथवा उसके खल होने न होने दोनों की सम्भावना है। एक नाम और रूप से ही माने हुये खल हैं दूसरे वे खल हैं जिनको केवल नाम और रूप के आधार पर ही खल नहीं कहा जा सकता, वरन् उनके कार्य कलाप का मूल्यांकन करके ही हम उन्हें खल कहते हैं। इस विचार के अनुसार हम खल को निश्चित खल और अनिश्चित खल कहते हैं। इस वर्गीकरण को करते हुये भी इस वर्गीकरण में कुछ कमी सी प्रतीत होती है तथापि उपन्यासों में निश्चित धारणा लेकर वर्ग के ही रूप में निर्दिष्ट हुआ है। इस कारण निश्चित प्रकार के खल हम उन्हें कहेंगे जिन्हें हम बिना उनके व्यापारों का विश्लेषण किये हुये ही डाकू चोर ठग तस्कर आदि मानते आये हैं। वस्तुतः परम्परागत मान्यताओं का निर्धारण ही इसके मूल में है।

८- निश्चित खल :

निश्चित खल वे हैं जो अपने नाम एवं रूप दोनों से ही अपने खल होने का परिचय देते हैं जैसे चोर डाकू ठग लुटेरा, ब्लैकमेलर, तस्कर, गिरहकट और जिप्सी

आदि ।

एम० टार्ड तथा अन्य कुछ अपराध शास्त्रियों ने यह बताने की चेष्टा की है कि सभी अपराध पेशेवर होते हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दृष्टि से यह एक आंशिक सत्य ही है ।

पेशेवर खल अपेक्षाकृत कम संख्या में मिलेंगे तथापि वे अपराधियों में सबसे ऊपर दिखाई पड़ते हैं क्योंकि उनकी खलता नितान्त निश्चित, स्पष्ट, सुनियोजित और पूर्व निर्धारित होती है । यह भी उल्लेखनीय है कि उनके अपराध प्रायः आर्थिक होते हैं । आदतन तथा पेशे से जो अपराधी हैं उनकी खलता का प्रवाह आदत की और वंशानुक्रम की रूढ़ परम्पराओं से प्रतिफलित होता है , उनकी जीवन विधि का स्वरूप होता है कोई आकस्मिक अभिव्यक्ति नहीं । जिस प्रकार आज के अपराध शास्त्री यह मानते हैं कि अमरीका के कुख्यात जूक परिवार तथा कलिकाक परिवार के व्यक्तियों में भी उचित वातावरण का सृजन करके उनकी आनुवंशिकवृत्ति में परिवर्तन उपस्थित किया जा सकता है और उनके अपराधत्व का इतिहास बदला जा सकता है उसी प्रकार हमारा मानवतावादी उपन्यासकार भी यह विश्वास करता है कि बालक विनायक के सत् प्रभाव से डाकू सरदार का हृदय परिवर्तन सम्भव है । निश्चित खल के दो लक्षण हैं- एक तो यह कि उसके नाम और रूप से ही प्रगट होता है कि वे खल हैं और दूसरे यह कि निश्चित खल अपने परिवार में नहीं केवल बाह्य समाज में ही क्रियाशील होते हैं। पं० चन्द्रशेखर पाठक के जासूसी उपन्यास अमरवती ठग-ठग वृत्तान्त का पात्र अमरवती ठग निश्चित खल है । उसका नाम ही खलत्व का प्रतीक है ।

ब- अनिश्चित खल :

अनिश्चित खल वे हैं जिनका केवल नाम अथवा रूप ही खल होने का परिचय नहीं देता । उनके क्रिया कलाप का विश्लेषण करने पर ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे खल हैं अर्थात् अनिश्चित खल समाज के किसी विशेष वर्ग अथवा पेशे का व्यक्ति नहीं होता । वह किसी भी वर्ग, पेशा, जाति अथवा धर्म का हो सकता है जैसे वेश्या, वकील, डाक्टर, पुलिस, जमींदार, अधिकारी वैज्ञानिक, व्यवसायी आदि । वह

कोई व्यसनी जैसे जुआरी, शराबी, वेश्यागामी आदि भी हो सकता है । जुआरी, शराबी, वेश्यागामी की स्थिति निश्चित खल और, डाकू जैसी नहीं है । निश्चित खल नाम, रूप, गुण तीनों से ही खल दीख पड़ता है । जुआरी आदि नाम से भले ही खल भासित हो परन्तु जब तक उनके अन्दर अन्य अवगुण नहीं दिखलाई पड़ें, जब तक वह खल का रूप नहीं धारण कर लेते हम उन्हें खल नहीं कह सकते । जुआ खेलना, मदिरापान एवं वेश्यागमन ही किसी को खल नहीं बना देते । जब ये दुर्व्यसन पात्र से खलता करवाते हैं तब वे खल कहलाते हैं । अत: ऐसे पात्र भी अनिश्चित खल की कोटि में आयेंगे ।

गोपाल राम गहमरी के जासूसी उपन्यास हंसराज की डायरी का पात्र 'डाॅक्टर शुक देव प्रसाद' अनिश्चित खल के रूप में कथा में प्रवेश करता है क्योंकि उसका बाह्य क्रिया कलाप या पेशा उसके पाप को प्रगट नहीं करते । प्रतापनारायण श्रीवास्तव के विदा उपन्यास का पात्र मिस्टर देवदत्त वर्मा (ज्वाइंट मजिस्ट्रेट) भी अनिश्चित खल है ।

८- कारण की दृष्टि से :

इस दृष्टि से खल का वर्गीकरण करने के लिए हम खल की खलता के कारण का अन्वेषण करते हैं तथा ध्यान को उसी पर केन्द्रित तथा एकाग्र । खल में उसकी खलता का कारण प्रत्यक्षरूप से केवल एक प्रतीत होता है अथवा अनेक । अत: इस दृष्टि से किये गये वर्गीकरण के लिए हम दो कोटि निश्चित करते हैं- एकमुखी खल और बहुमुखी खल ।

क- एकमुखी खल :

एकमुखी खल वे हैं जिनकी खलता का प्रत्यक्ष कारण केवल एक होता है - वह कामासक्ति, धनपिपासा, अधिकारलिप्सा, ईर्ष्या, गर्व व्यावहारिक कारण हो अथवा विफलता निराशा अभाव के प्रकार का कोई मनोवैज्ञानिक कारण । इसके

अतिरिक्त आर्थिक कारण भी हो सकता है कारण होता है एक ही । इसमें कोई संदेह नहीं कि वह एक कारण अत्यन्त विकराल रूप धारण कर अत्यन्त हानिकारक परिणाम उपस्थित कर सकता है । उसका स्वार्थ अधिक सीमित होता है । एक मुखी खल विशेष अवसर पर विशेष चरित्र का परिचय देकर हट जाता है । यदि वह बार बार भी मंच पर आवे तो उसका अर्थात उसकी खलता का रूप और गुण नहीं बदलता। प्रत्येक बार उसकी खलता का एक वही कारण होता है उसके स्वार्थ में अन्तर नहीं आता, परिस्थिति और अवसर अनुसार उसके स्वार्थ की अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न रूप में होती है । स्थिति के अनुसार वह अपनी दुर्बलता का परिचय भिन्न भिन्न प्रकार से देता है । लोभवश वह कभी चोरी , कभी घूसखोरी, कभी ठगी और कभी झूठा चंदा वसूल करता है । इस तरह खलता अथवा स्वार्थ का रूप एवं गुण तो लोभ था वही बना रहा परन्तु इस लोभ ने भिन्न रूप भिन्न समय पर पृथक पृथक रूप धारण किया । उसके दोष की संख्या में वृद्धि नहीं होती । उसके दोष की गुरुता अवश्य बढ़ सकती है । एक ही, एकांगी खलता की भिन्न भिन्न अवसर पर भिन्न भिन्न रूप में पुनरावृत्ति उसके पाप की वृद्धि कर देती है । पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के अधखिला फूल उपन्यास का पात्र 'कामिनी मोहन' एक मुखी खल है । उसकी खलता का मुख्य कारण कामासक्ति है । कामासक्ति के कारण ही वह अनेकों स्त्रियों का जीवन नष्ट कर देता है ।

ख बहुमुखी खल :

जिनकी खलता का कारण प्रत्यक्ष रूप से एक से अधिक प्रतीत होता है वे बहुमुखी खल हैं । बहुमुखी खल में खलता का बाहुल्य तथा खलता का रंग बिरंगी होना आवश्यक है । उनकी खलता में व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक कारणों का मिश्रण होता है । जब एक से अधिक कारण परस्पर मिल जाते हैं तब खल बहुमुखी हो जाता है । बहुमुखी खल की खलता में विविध कारण सब अपना अपना पृथक पृथक प्रभाव डालते हैं । जहां लोभ खलता का कराण है और वहीं जब नैराश्य भी उत्पन्न हो जाता है तब यही नैराश्य उसे और भी भयंकर अपराध का दोषी बना

देता है । नैराश्य स्वतंत्र रूप से अत्यंत घृणित एवं जघन्य युक्तियों का अवलम्ब ले महान
हानिकारक परिणाम उत्पन्न करता है । यह खल के व्यक्तित्व का एक और पक्ष होता
है एक कारण के साथ कई कारण मिल जाते हैं इसलिये खल को बहुमुखी कहते हैं ।

बहुमुखी खल प्रायः प्रमुख खल ही होते हैं । खलता का बाहुल्य ही उन्हें
प्रमुख बनाता है । वह बहुमुखी है इसलिये उसका स्वार्थ भी विविध है । स्वार्थ की
विविधता ही एक प्रकार से बहुमुखी खल की उत्पत्ति करती है वह कभी इस स्वार्थ के लिए
और कभी उस स्वार्थ के लिये खलता का प्रदर्शन किया करता है । वह कथानक से कभी
हटता नहीं । उसके हटते ही कथा समाप्त हो जाती है । वह इसका परिचय देने के लिये
कथानक में जन्म लेता है कि एक चरित्र में कितने विभिन्न दोष हो सकते हैं और
खलता का रूप कितना विविध हो सकता है ।

बहुमुखी खल का लक्षण है कि कथानक की प्रगति के साथ उसके क्रियाशील
का विस्तार फैलता जाता है और उसका रूप अधिकाधिक घृणित एवं पाशविक होता
जाता है । प्रेम चन्द के प्रेमाश्रम का 'ज्ञानशंकर' बहुमुखी खल है । उसकी खलता का क्षेत्र
व्यापक है । कथानक की प्रगति के साथ ही साथ उसकी खलता के नये नये रूप सम्मुख
आते जाते हैं । सम्पूर्ण उपन्यास ज्ञानशंकर की खलता को प्रदर्शित करता है उसके समाप्त
होते ही कथा भी समाप्त हो जाती है ।

लिंग की दृष्टि से :

इस विभाजन की उपयुक्तता इससे भी सिद्ध होती है कि प्राचीन काल
से दंड विधान में पुरुष तथा स्त्री के समान पापों के होते हुए भी कभी कभी अन्तर
किया जाता रहा है । अज्ञान में किये हुए व्यभिचार की अपराधिनी स्त्री का
प्रायश्चित्त आधा ही होता था । पतित होने पर यदि पुरुष को दूर मार्ग पर त्याग
दिया जाता था तो स्त्री को घास फूस की बनी झोपड़ी में ले जाकर रखा जाता
था और उसका भोजन भी दिया जाता था कि वह जी सके । कात्यायन[१] का मत है

१- कात्यायन - स्मृति सारोद्धार श्लो० ४८८

कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा आधा अर्थदंड लगता है वहाँ पुरुष को मृत्यु दंड मिलता है वहाँ स्त्रियों का अंगविच्छेद ही पर्याप्त है।

सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोग से निर्मित है। समाज निर्मित है नर और नारी के सहवर्ती से उपन्यास-घर, परिवार, समाज तथा देश का चित्र उपस्थित करता है अत: उपन्यास में भी स्त्री एवं पुरुष दोनों निवास करते हैं। यह सम्भव है कि एक घर अथवा परिवार में केवल पुरुष ही पुरुष हो, अथवा केवल नारी ही नारी। परन्तु इस प्रकार का एकांगी समाज यथार्थ और कल्पना के विरुद्ध है। उपन्यास में समाज का प्रतिबिम्ब स्वाभाविक होता है अत: इस प्रतिबिम्ब में नर नारी दोनों ही की प्रकृति का स्वरूप उद्घाटित होता है।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि ऐसा कथानक सम्भव ही नहीं है जिसमें पुरुष अथवा स्त्री किसी एक ही वर्ग के पात्र के लिये अवकाश हो परन्तु ऐसा उपन्यास उपलब्ध नहीं है जिसमें पात्र केवल पुरुष ही अथवा केवल नारी ही हो।

संस्कार अथवा परिस्थिति ही मानव को खल बनाती है। संस्कार एवं परिस्थिति नारी जीवन में भी उतना ही महत्व है जितना पुरुष में।

जन्म - मृत्यु हर्ष - विषाद , शान्ति - कलह , आनन्द - पीड़ा वैभव - दरिद्रता, लोभ- त्याग, प्रेम- घृणा, रक्षण-भक्षण, सहानुभूति-उपेक्षा, दया-निर्दयता, पाप - पुण्य आदि सब समाज में व्याप्त है। नर एवं नारी दोनों ही इनसे प्रभावित है इनके प्रभाव के विभिन्न रूपों का वर्णन नर एवं नारी दोनों ही वर्ग के पात्रों द्वारा उपस्थित होता है। जीवन की इन उपलब्धियों में नर एवं नारी दोनों का अंश है। अत: जहाँ पुरुष खल का अनुभव सम्भव है वहाँ नारी खल का भी। संस्कार एवं परिस्थिति उभय वर्ग पर समान प्रभाव डालती है। यह सत्य है कि नारी जीवन में संस्कार एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम एवं उनकी प्रतिक्रिया का रूप भिन्न होता है।

संसार की जनसंख्या में अधिक कौन है इसकी विवेचना हमारा विषय नहीं परन्तु उपन्यास जगत में एक कथानक में प्राय: पुरुष पात्रों की ही संख्या अधिक मिलती है। आलोच्य काल के उपन्यासों में जिस प्रकार सब्र रूप से पुरुष पात्रों की संख्या स्त्री पात्रों की अपेक्षा अधिक है उसी तरह खलपात्रों में भी

पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या की अपेक्षा अधिक है। मुझे अपने अध्ययन कार्य में लगभग सौ पुरुष अपराधी और चालीस स्त्री अपराधी मिले हैं। अपराध वैज्ञानिकों ने गणना करके भी इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि पुरुष अपराधियों की संख्या स्त्री अपराधियों की संख्या से सदा अधिक होती है।[1] संयुक्त राष्ट्र में तो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के दसगुने अपराध अधिक होते हैं। यह बात दूसरी है कि एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में इस अनुपात से वैभिन्न्य हो सकता है। यह भी कहा गया है कि जिस राष्ट्र में पुरुषों के समान ही स्त्रियों को स्वतंत्रता और समानता के अधिकार प्राप्त हैं वहां स्त्रियों के अपराध की संख्या भी पुरुषों के बराबर आ रही है, फिर भी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के साथ साथ उनकी मूलभूत सृजनात्मक और मातृत्व की प्रवृत्ति के कारण अपराधी स्त्रियों के आंकड़े पुरुष अपराधियों की अपेक्षा प्रायः कम ही रहते हैं। अमरीका के इण्डियाना स्कूल के ६२१ अध्यापकों ने वैज्ञानिक परीक्षण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक अभियोजित होती हैं, उनमें लड़कों की अपेक्षा लज्जा की भावना अधिक होती है। भारत के लिए यह बात और भी सत्य है, जहाँ एक ओर तो उन्हें लड़कों जैसी छूट नहीं रही है सामाजिक नियंत्रण और मान्यताओं का भी अधिक ध्यान रखना पड़ता है, और दूसरी ओर पारिवारिक शिक्षा में उनमें नारी सुलभ गुणों को विकसित करने की हर सम्भव चेष्टा की जाती है। मोट के अनुसार भारत में पुरुष तथा स्त्री अपराधियों का अनुपात २८ तथा १ का है।[2] पुरुष वर्ग की संख्या के अधिक होने का कारण स्पष्ट है। पुरुष का कार्य क्षेत्र सर्वदा स्त्री के कार्य क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत विविध व्यापक एवं उत्तरदायी रहा है। स्त्री वर्ग का कार्य क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहा है। नारी वर्ग के रूप में परिवार से

१- हैनसाफ रसिल, - द क्रिमिनल पृ० २४१

२- हैनसाफ रसिल - द क्रिमिनल पृ० २४२

परे बहुत कम दृष्टिगत होती है वह विविध रूप में हल बन भी नहीं सकी, क्योंकि स्त्री के पास सतता के लिये कार्य क्षेत्र अवसर एवं आवश्यकता का अभाव रहा है। नारी उतने विविध एवं व्यापक कार्य क्षेत्र में प्रवेश नहीं करती जितना नर। वैयक्तिक तथा सामाजिक स्थिति के कारण पुरुष बाह्य रूप से समाज का अधिक महत्वपूर्ण अंग रहा है। अपनी व्यापक क्रियाशीलता के कारण पुरुष का उत्तरदायित्व समाज की व्यवस्था अव्यवस्था, शान्ति - अशान्ति, विकास - ह्रास आदि सभी पर अधिक प्रतीत होता है

समानाधिकार के आलोक में भी समाज में स्त्री की स्थिति पुरुष की स्थिति से केवल भिन्न ही नहीं प्रत्युत अधिक विचारणीय एवं वर्णनीय रही है। विभिन्न देशों में उसके कारण सांस्कृतिक विभिन्नता हो सकती है किन्तु जो मूलभूत व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिक तथ्य है वह यह है कि पुरुष और स्त्री की शरीर के साथ साथ मन की बनावट में भी मूलभूत अन्तर है। मातृत्व नारी प्रकृति का मूल स्वर है जो वात्सल्य ममत्व, सुरक्षा आदि के भावों को लेकर अन्तर्मुखी अधिक हो जाता है और संहारात्मक प्रवृत्तियों की अपेक्षा सृजनात्मक प्रवृत्ति को महत्व देता है।

शारीरिक तल पर नारी सुकुमार है अतः वह दुर्बल भी है। नारी सृष्टि में सौन्दर्य की प्रतिमा है, प्रतीक है। प्रकृति में सौन्दर्य अन्यत्र भी उपलब्ध है परन्तु वह मूक है जड़ है एवं स्थावर है। नारी सौन्दर्य की पार्थिव प्रतिमा नहीं वह सौन्दर्य की जीती जागती मूर्ति है। उसका सौन्दर्य ईश्वर की सौन्दर्य दृष्टि की अनुपम कृति है और मानव की सौन्दर्यदृष्टि का अनुपम आकर्षण।

मानसिक तल पर नारी भीरु है, विलासप्रिय है। उसमें जीवन की कठिनाइयों, विषमताओं का सामना करने के लिये यथेष्ट मनोबल एवं सहिष्णुता है। किन्तु भौतिक भय, जोखिम अथवा खतरे का सामना करने के लिये साधारणतया उसके पास पर्याप्त शरीर बल का अभाव है। नारी सुकुमार है तथा निर्बल है अतः उसे सर्वदा संरक्षण की आवश्यकता रही है। सौन्दर्य को संरक्षण की आवश्यकता इसलिये है कि वह सदैव आपत्ति की आशंकाओं से घिरा रहता है। दुर्बलता को संरक्षण की आवश्यकता इसलिये है कि उसे अवलम्ब चाहिये। नारी का आकर्षण, लालित्य एवं लावण्य उसकी आपद बन जाता है। अतः सुरक्षा में रहती नारी को अपने क्रिया कलापों की खुली छूट मिलना संभव नहीं हो पाता। उसकी संरक्षित स्थिति में उसकी

नहीं पनपती जितनी कि स्वतंत्रता में । नारी का स्वभावगत गुण प्रेम है इसलिए क्रूरता, दुष्टता एवं हिंसा का अभाव मिलता है । हैवलाक एलिस की धारणा है कि "स्त्रियों के अपराध अनिवार्य रूप से पारिवारिक होते हैं - पिता, पति अथवा बच्चों से संबंधित । उनके अपराधों का बहुत सा अंश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यौन समस्याओं से संबंधित होता है ।[1] अन्य अपराध शास्त्री भी इस मत के हैं कि स्त्री के अपराध के मध्य कहीं न कहीं पुरुष होता है ।[2] अपने उपन्यासों में हम गोविन्द वल्लभ पंत के मदारी की 'लाजवी', जयशंकर प्रसाद के तितली की 'अनवरी' अथवा भगवती चरण वर्मा के चित्रलेखा की 'चित्रलेखा' आदि में इन तथ्यों की प्रामाणिकता सिद्ध होते देखते हैं ।

प्रारम्भिक उपन्यासों में नारी खल का रूप अधिकतर परम्परागत ही रहा है । पुरुष खल के रूप में अधिक विस्तार दृष्टिगत होता है । जब दृष्टिकोण आदर्श से यथार्थ की ओर झुका तो पुरुष तो इस चपेट में आ गया और उसका खल रूप यथार्थ के आलोक में बहुरंगी दृष्टिगत होने लगा । इस युग में स्त्री ने सामाजिक स्वतंत्रता किसी सीमा तक प्राप्त अवश्य कर ली थी लेकिन उसके कार्य क्षेत्र ने उतनी विविधता नहीं प्राप्त की जितनी पुरुष को प्राप्त थी । अतः नारी के अधिकांश अपराध और दुष्टतापूर्ण कृत्य प्रायः परिवार की सीमाओं में ही बंधे रहे हैं । अपराध वैज्ञानिकों के अनुसार एक ओर तो स्त्री अपराधियों के गिरोह ही प्रायः नहीं मिलते और यदि वे किसी गिरोह से सम्बद्ध भी होती है तो वह गिरोह पुरुष डाकू या तस्करों का होता है, दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ एक आधुनिक रूप से योजनाबद्ध अपराध की क्रिया में स्त्रियाँ संलग्न हुई थीं ।[3]

"अपराध वैज्ञानिक आर्थिक कारणों के अतिरिक्त काम को अपराध की जड़ में मानते हैं । यह तथ्य स्त्री अपराधियों के संबंध में अधिक सत्य है । पुरुष के अपराध तो अन्य कारणों से भी होते हैं, किन्तु स्त्री के अपराधों के केन्द्र में प्रायः ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई न कोई पुरुष होता है।"[*]

1- हैवलाक एलिस- द क्रिमिनल पृ० [illegible]

2- बार्नेस एण्ड टीटर्स - न्यू हॉरिजन्स इन क्रिमिनोलोजी पृ० ५६१

3- ,, ,, ,, - ,, ,, ,, ,, पृ० ५६८, ५७२

*While it is dangerous to generalize, it is almost proverbial that most offenses committed by women involve men, directly or indirectly. P.569. New Horizons in Criminology.

पेशेवर खलों के रूप में वेश्या और कुटनी का क्रियाशील भी काम है। प्रेम और वासना जब एकाधिकार और प्रतिहिंसा से संयुक्त हो जाती है तो सहज ही ईर्ष्या,छल,कपट,प्रवंचना,चोरी,मिथ्याभाषण,क्रूरता और यहाँ तक कि हत्या की सीमा तक भी पहुंच जाती है। भारत में संयुक्त परिवार के संबंधों में भी स्त्री की एकाधिकार भावना और ईर्ष्या को प्रसार मिला है। संयुक्त परिवार जहाँ त्याग और बलिदान की ट्रेनिंग देता है वही कभी कभी विधवा और आश्रित,देवरानी-जेठानी,भाई-भाभी, बहन या भाभी के संबंधों में ईर्ष्या और स्पर्धा की आग सुलगने लगती है,जब यदि वह बाढ़ हो पूरे परिवार को वैमनस्य की आग में जला डालती है।

आलोच्य काल के कितने ही उपन्यासों में हमें इसके प्रमाण मिलते हैं, जब देवकी(नन्द) की भाग्यवती[1](भावज)दुलारी(नन्द) को सुशीला[2](भावज) के साथ दुष्टता पूर्ण कार्यों में क्रियाशील पाते हैं,अथवा किशोरी लाल गोस्वामी के 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह' की 'सुशीला' को सौतियाडाह से जलते पाते हैं,अथवा वृंदावनलाल वर्मा के प्रेम की भेंट की 'उजियारी' को प्रेम के मार्ग में प्रतिद्वंद्वी सरस्वती से ईर्ष्या करते पाते हैं।

निश्चित खल के वर्ग में आने वाले पात्र जैसे-चोर,डाकू,ठग,ब्लैकमेलर, तस्कर,गिरहकट प्रायः पुरुष खल ही दृष्टिगत होते हैं। इनकी भूमिका में नारी खल के उदाहरण आलोच्य उपन्यासों में नहीं हैं। हाँ निश्चित खल जैसे कुटना-कुटनी,और ऐयार उभय वर्ग में चित्रित हैं।

वकील,डाक्टर,पुलिस,जमींदार,अधिकारी एवं वैज्ञानिक आदि की भूमिका में प्रस्तुत खल भी पुरुष ही हैं। अनिश्चित वर्ग में नारी खल समाज की साधारण सदस्या के रूप में ही प्रस्तुत की गई है। हिन्दी उपन्यास में नारी खल और पुरुष खल जिन रूपों में प्रस्तुत हुए हैं उनके अवलोकन से ज्ञात होता है कि नारी दूती (कुटनी) प्रेमिका,सौत,सास , पतोहू,ननद,पत्नी,मित्र,वेश्या,डाक्टर,विधवा आदि रूपों में प्रकट हुई है। पुरुष खल जमींदार,पुलिस,भाई,प्रेमी,नौकर,राजा,दीवान,

---

१- श्रद्धाराम फिल्लौरी - भाग्यवती

२- लज्जाराम शर्मा- सुशीला विधवा

उचक्की, डाकू आदि रूप में प्रगट हुए हैं। समाज में नारी चरित्रहीन तथा व्यभिचारी छल के रूप में भी प्रस्तुत है। ऐसी छल नारी कुल की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाती है। किशोरी लाल गोस्वामी उपन्यास के "माधवी माधव वा मदन मोहिनी" की कमला ऐसी ही व्यभिचारिणी स्त्री है जो कुल की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाती है। क्रूर स्वभाव की स्त्री के रूप में भी छल नारी के उदाहरण उपलब्ध है। नारी छल जितना आघात हृदय पर करती है उतना शरीर पर नहीं। ऐसे उदाहरण भी उपलब्ध हैं जब अभिलाषा की अप्राप्त स्थिति में नारी छल का रूप हिंसात्मक १ और भयंकर हो गया है।

छलना के साधारण शस्त्र-झूठ, छल, कपट, धोखा, दुराव, षड्यंत्र, विश्वासघात, दोषारोपण, हत्या आदि उभय वर्ग के छल प्रयोग में लाते हैं। ये ही छलना के आधार है। इनके अभाव में छलना जन्म ही नहीं ग्रहण करती। अतः ये दोष नर एवं नारी दोनो वर्ग के छलो में विद्यमान है। नर के साथ में इनका क्रियात्मक तथा व्यवहारिक रूप भिन्न है, नारी के साथ भिन्न भिन्न। हत्या एवं यातना जैसे छलना के घातक शस्त्रों का प्रयोग भी कदा कदा छल नारी द्वारा किया गया है। क्षोभ, निराशा, एवं असफलता की स्थिति में ही उसने ऐसे भयंकर शस्त्रों का उपयोग किया है।

नारी छल द्वारा की गई दुष्टता व्यक्ति अथवा परिवार तक ही सीमित रही है। वह व्यक्ति विशेष का अवसर विशेष पर तथा कारण विशेष से ही अहित करती है। नारी छल की छलना अधिकतर परिवार में ही कठिनाइयाँ एवं अशान्ति उत्पन्न करती है। सामाजिक-राजनैतिक, औद्योगिक समस्याओं में उसकी क्रियाशीलता विरल रूप से पाई जाती है। वह व्यक्ति के लिये अथवा परिवार के लिये विपत्ति बनती है, शासन के लिये नहीं, देश के लिये नहीं। स्त्री छल घर में, शिक्षा के अभाव में एवं कुसंस्कारों की कमी से वह परिवार के सदस्यों को पीड़ा पहुंचाती

---

१. गोविन्द वल्लभ पंत के "मदारी" उपन्यास की डाकू बेचने वाली जिप्सी कन्या कृपाल से कपटपूर्ण प्रेम भी करती है और उसकी हत्या का प्रयत्न भी।

है । वह तिरस्कृत अनादृत अथवा असफल प्रेमिका या पत्नी भी है । उसकी खलता एक व्यक्ति से या अधिक से अधिक एक परिवार से परे नहीं जाती । उसकी खलता का कारण डाह, ईर्ष्या, प्रतिशोध, प्रतिहिंसा आदि इस प्रकार की भावनायें होती है । लोक इच्छा, वित्तइच्छा, अथवा अधिकार इच्छा उसकी खलता का कारण प्राय: नहीं होता । क स्वभाव से ही खल प्रवृत्ति की स्त्री अकारण ही दूसरे से द्वेष रखती है और दूसरों के सर्वनाश के प्रयत्न में अपनी सम्पूर्ण शक्ति व्यय करती हुई स्वयं नष्ट एवं पतित हो जाती है । कृष्णनन्दन सहाय के 'लालचीन" उपन्यास की खलपात्री 'कुलसुम' स्वभाव से ही दुष्ट है । अपने राजा गयासुद्दीन के सर्वनाश के प्रयत्न में अपनी सारी बुद्धि लगा देती है अन्त में उसके हाथ कुछ नहीं लगता; अपनी बेटी या पति से विमुख हो वह आत्महत्या कर लेती है ।

कभी कभी नारी खल किसी की प्रत्यक्ष हानि नहीं करती प्रत्युत अपनी सहज मानव दुर्बलता द्वारा कुल की मर्यादा को भंग कर देती है । ऐसी खल न तो किसी से शत्रुता करती है न घृणा । वह न किसी अधिकार के लिये किसी से बैर मोल लेती है और न ही संघर्ष करती है । यथेष्ट मनोबल के अभाव में ही वह दैहिक सुख के लिये उचित अनुचित का विचार खो देती है । किशोरी लाल गोस्वामी के " माधवी माधव " उपन्यास की 'जमुना' ऐसी ही खल स्त्री है जो " दीवान हरिहर " प्रसाद के प्रेम में फँस कर कुल की मर्यादा को भंग कर देती है । उसकी खलता का प्रमुख कारण दैहिक सुख की प्राप्ति ही है जो उसे सत्-असत् का निर्णय करने की विवेकात्मक बुद्धि से वंचित कर देता है ।

खलता के कारण की दृष्टि से नारी खल प्रमुख और सहायक पात्र की भूमिका में प्राप्त है । प्रतिनायिका की कोटि में आने वाली खल नारियाँ भी उपलब्ध है । ये नायक के मार्ग में बाधा उपस्थित करती है परन्तु उनसे संघर्ष नहीं करती, संघर्ष वे करती है नायिका के साथ । नायक उन्हें अप्रिय नहीं, उन्हें अप्रिय है नायिका । नायिका के स्थान को स्वयं प्राप्त करने के लिये वे उसे अपने मार्ग से हटाना चाहती है । ऐसे अवसरों पर उन्होंने खलता के अतीव जघन्य रूप हत्या तक का अवलम्ब लिया है । वृन्दावनलाल वर्मा ~~[illegible]~~ के " प्रेम की भेंट' उपन्यास की खलपात्री '[illegible]कुमारी' इसी प्रकार की प्रतिनायिका है । वह अपनी प्रतिद्वन्द्विनी सरस्वती को नायक

के मार्ग से हटाने के लिये उसे विषपूर्ण खीर खिला कर मार डालना चाहती है पर वह विषपूर्ण खीर नायिका सरस्वती न खाकर नायक धीरज खा लेता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है इससे खलपात्री उजियारी की इच्छापूर्ण नहीं हो पाती । स्त्री या तो खलता करती है प्रायः अंधविश्वासवश एवं रूढ़िवादितावश, और कहीं कहीं कामप्रवृत्तिवश भी । परन्तु पुरुष की खलता के कारण असंख्या होते है । वह पेशे से भी खल होते है, अपने वर्ग के प्रभाव से और गलत सिद्धांतों के आधार पर भी । नारी खल घूसखोरी, कालाबाजारी, धोखाधड़ी, ठगी आदि के आरोपों से अधिक सीमा तक मुक्त दिखाई देती है । वे स्त्रियाँ जो अपने यौवन काल में ही विधवा हो जाती है । वैधव्य की दारुण यातना भोगने पर भी जब समाज या कुटुम्ब के लोग उसका अपमान या तिरस्कार करते है । दरिद्रता एवं यौवन के उद्दाम वेग का उत्पीड़न उन्हें सताता है तब कर्तव्या कर्तव्य के ज्ञान से रहित जीविको पार्जन की आवश्यकताओं से मजबूर होकर भी ये स्त्री पतन का मार्ग चुन लेती है और वह खल बन जाती है ।

अतः हम कह सकते है कि उनका व्यवहार असामाजिक होता है तथा समाज की व्यवस्था और संगठन पर आघात करता है एवं संस्कृति की श्रेष्ठ परम्पराओं को खंडित करता है । इस प्रकार ये लोग समाज के तिरस्कार, अवमानना के भागी होकर खल की कोटि में गिने जाते है ।

स्थानक, चरित्र, क्षेत्र, वय, क्रिया, अपराध, मान्यता और कारण आदि की दृष्टि से खलपात्रों का वर्गीकरण कर चुकने के पश्चात् जीवन में खल के निर्धा-रण का क्रम स्पष्ट हो जाता है । अब हम उन्हीं खल पात्रों का उपन्यासके आधार पर विस्तार से विश्लेषण करेंगे जो जीवन के क्षेत्र में अधिक क्रिया शील दिखाई देते हैं और जिनका विश्लेषण ही हमारे शोध कार्य का विषय है । अतः अब हम सामाजिक खल, धार्मिक खल, राजनैतिक खल और मनोवैज्ञानिक खलों को ही ले रहे हैं वर्गीकरण में आये हुए सभी खल प्रमुख चार शीर्षकों में समाहित हो जाते है । उदाहरणार्थ: जब हम सामाजिक खल को लेंगे तो हम यह भी देख लेंगे कि वह प्रमुख है या सहायक है, स्थिर है अथवा गतिशील है, वह परोक्ष है कि अपरोक्ष है, शिक्षित है या अशिक्षित है, एक मुखी है या बहुमुखी है । इन्हीं खलपात्रों का हम पृथक अध्याय में ही अध्ययन करेंगे । जहाँ तक ऐतिहासिक खलपात्रों का प्रश्न है वे अधिकतर राजनैतिक पात्रों में पाये जाते हैं ।

अध्याय - ६

सामाजिक अन्याय

अध्याय ५

सामाजिक खल

जब हम सामाजिक दृष्टि से खलपात्रों के चरित्र का विश्लेषण करते हैं तो खलता के कारणों को दृष्टि में रखकर हम उन्हें विभिन्न वर्गों में विभाजित करने की चेष्टा करेंगे। इससे खल पात्रों की खलता का स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से सम्मुख आ पायेगा इसकी सम्भावना है। ये कारण हैं कुसंग, कुशिक्षा, वंशानुक्रमवृत्ति (पेशेवर खल) कामलोलुपता, प्रतिद्वंद्विता, धनलोलुपता (धनलोलुपता में दो प्रकार के खल आते हैं एक प्रवृत्तितः खल दूसरे संकोच पीड़ खल)तृष्णा, महत्वाकांक्षा आदि। अब हम इन कारणों को दृष्टि में रखकर उनका अलग अलग विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे। पर यह सम्भव न हो सकेगा कि हम उन्हें पूर्ण रूप से अलग कर सकें, क्योंकि एक ही व्यक्ति में एक साथ महत्वाकांक्षा, धनलोलुपता और कामेच्छा मिलने की सम्भावना रहती है। वस्तुतः खलता के व्यक्तिनिष्ठ आर्थिक या पारिवारिक आदि मूल कारणों का उद्घाटन करने की चेष्टा कम से कम १९ वीं शताब्दी के उपन्यासकारों ने तो नहीं की। वे अधिकांशतः खल के क्रियाकलाप और उसकी व्यापार शैली का ही वर्णन करते हैं उसके पारिवारिक परिवेश अथवा आर्थिक कारण आदि का विश्लेषण करने की चेष्टा तो आगे चलकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हुई जिसे हम यथा स्थान देखेंगे।

कुसंग

कुसंग :

श्री निवास के परीक्षा गुरु " उपन्यास में रईस व्यापारी के कुसंग से बिगड़े बेटे का वर्णन किया गया है । लाला श्री निवास दास इस वर्ग और उनकी प्रवृत्तियों से भली भाँति परिचित थे वे स्वतः व्यापारी वर्ग से सम्बद्ध थे और लक्ष्मण दास के मैनेजर भी रहे थे ।

" परीक्षागुरु " उपन्यास में " लाला मदन मोहन " खलपात्र के रूप में आये है, मदनमोहन की खलता का सर्व प्रमुख कारण था दुष्ट मित्रों का संग । कुसंग के कारण ही वह शराबी, जुआरी, व्यसनी और पत्नी विमुख हो जाते है । दुष्ट मित्रों मुंशी चुन्नीलाल, मास्टर शिंभुदयाल, बाबू बैजनाथ, पंडित पुरुषोत्तम दास आदि की संगत में पड़ कर लाला मदनमोहन अपनी बुद्धि खो बैठते हैं और उनके हाथ की कठपुतली बन जाते है । ये दुष्ट मित्र उन्हें आठो पहर कैवाँच की तरह घेरे रहते थे जैसा चाहते थे वही काम उनसे करा लेते थे । यही कारण था कि मदनमोहन ब्रज किशोर जैसे सत् मित्र की भी अवहेलना करने लगता है । मुंशी चुन्नीलाल, मास्टर शिंभुदयाल अपनी स्वार्थ पूर्ति में ब्रजकिशोर को बाधा स्वरूप समझ हमेशा मदनमोहन को उनके विरुद्ध भड़काता है । मदनमोहन दुर्बल है, अस्थिर चित है, खुशामद पसंद है, फिजूलखर्चीं है, अदूरदर्शी है और वेश्यागामी है ।

ब्रजकिशोर लाला मदन मोहन के चरित्र पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं - " बुरे कामों के प्रसंग मात्र से मनुष्य के मन में पाप की ग्लानि घटती जाती है । पहले लाला साहब को नाच रंग अच्छा नहीं लगता था पर अब देखते देखते व्यसन हो गया, फिर जिन लोगों की सोहबत से यह व्यसन हुआ उनको में लाला साहब का मित्र कैसे समझूं ? मित्रता का नाम करके वह मित्र समझा जाता है अपने मतलब के लिये हाँजी हाँजी बातें बनाने से कोई मित्र नहीं हो सकता । [१]

लोभी, स्वार्थी, मतलबी, खुशामदी, चापलूस, व्यसनी मित्रों की

---

१. श्री निवास दास - परीक्षा गुरु पृ० ९३

संगत के कारण वह दिनोंदिन पतन की ओर अग्रसर होते जाते थे । वृंद कवि का[1]
कहना है -

> " सज्जनता न मिलै किये कान करो किन कोय
> ज्यों कर फार निहारियो लोचन बड़ो न होय ।"

दुष्ट मित्रों की संगत से मनुष्य कभी भला नहीं बनता यही कारण था कि मदन मोहन अपने ऐसे स्वार्थी मतलबी मित्रों की कुसंगत के कारण पथभ्रष्ट हो रहे थे यहाँ तक कि सुशील पत्नी या बच्चों की ओर से भी अपना ध्यान हटाने लगे। धीरे धीरे मदन मोहन के मतलबी दोस्त अपना मतलब हल करके उनका समस्त धन हथिया लेते है अन्त में उन्हें जेल तक जाना पड़ता है । मुसीबत के समय उनके स्वार्थी मित्र उनकी सहायता नहीं करते । हर किशोर के नालिश कर देने पर जब वह अपने मित्रों से रुपयें की सहायता माँगता है तो सब बहाना बनाकर चल देते हैं कोई उसकी मदद नहीं करता । ब्रज किशोर जो उनका सच्चा हितैषी था जिसको उन्होंने अपने दुष्ट मित्रों के बहकावे में आकर शत्रु समझ लिया था वही उनकी मदद करता है और उन्हें दुःख से छुटकारा दिलाता है । कहा गया है कि कठिन समय में ही शुभ मित्र की पहचान होती है ।

लाला मदन मोहन कथानक की दृष्टि से प्रमुख खलपात्र है । उनके जीवन में कोई स्थिरता नहीं है । वह बैंगनी के लोटा हैं । इसलिये उनका चरित्र गतिशील है परिस्थितियों के अनुसार मोड़ लेता रहता है । उसके स्वार्थी मित्र धन के लोभ में ही उसके मित्रता करते है उसे दुर्व्यसनों में फँसा कर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति हड़प जाते है । ये दुष्ट मित्र समाज में रहकर ही उसे नाना प्रकार के दुःख पहुँचाते हैं पत्नी से विमुख कर देते है , यहाँ तक कि वह कर्ज से लद जाता है ।

~~१—वृंदावन-विनोद-सतसई~~

१- वृंद कवि - वृंदावन विनोद सतसई से

ब्रजकिशोर के आदर्श चरित्र को उभारने के लिए ही लेखक ने मुंशी चुन्नी लाल ,मास्टर शिंभूदयाल ,पं० पुरुषोत्तम दास,बाबू बैजनाथ,हकीम अहमद हुसैन और मदनमोहन जैसे अनेकों खल पात्रों की रचना की है । इनके खलता पूर्ण कार्यों का उद्घाटन और खलपात्रों की कुसंगति से उत्पन्न होने वाली बुराइयों का दिग्दर्शन ही लेखक का मुख्य उद्देश्य है । लेखक यह दिखाना चाहता है कि लोभी,स्वार्थी,मतलबी, चापलूस,व्यसनी मित्रों की संगत में पड़कर किस प्रकार सत्पात्र भी विवेक बुद्धि से हीन हो अधिकाधिक बुराई की ओर अग्रसर होता जाता है । भले-बुरे की पहचान उसे नहीं रह जाती । सदुपदेश भी उसे बुरे प्रतीत होते हैं । क्रिया की दृष्टि से वह परोक्ष है । अपराध की दृष्टि से वह अनभिज्ञ है । उससे जो भी अपराध बन पड़ता है वह अनजान में ही होता है । मान्यता की दृष्टि से वह [illegible] अनिश्चित एवं एकमुखी खल है । अनजान में ही दुष्ट मित्रों के चंगुल में फँस कर मनुष्य का कितना नैतिक पतन हो सकता है मदन मोहन इसका प्रमाण है । सच्चे मित्र दुनियाँ में बहुत कम होते हैं । समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत है जो अपने दुश्चरित्र द्वारा दूसरे का जीवन नष्ट कर देते हैं । उसकी खलता आकस्मिक है,परिस्थिति वश है । दुष्ट मित्रों के छूट जाने पर उसे ग्लानि और पश्चाताप होता है । सुसंगति पाने पर वह सुधर जाता है । उसके चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता थी उसका झूठा दंभ । तरुण अवस्था दुष्ट मित्रों का संग और प्रशंसा की इच्छा ही उसके पतन का कारण बनते हैं ।

बालकृष्ण भट्ट के सौ अजान एक सुजान उपन्यास के सेठ हीरालाल के पौत्र 'ऋद्धिनाथ' और 'निधिनाथ' खल के रूप में आए हैं । उनकी खलता का कारण है कुसंग । अज्ञानी मूर्ख,दुर्व्यसनी,स्वार्थी,मतलबी,धनलोलुप मित्रों की संगति में पड़कर वे अपनी विवेक बुद्धि खो देते हैं । चन्द्रशेखर जैसे सत् पात्र के सदुपदेश उन्हें विष के समान प्रतीत होते थे । अपने दुष्ट मित्रों को ही वह अपना सबसे बड़ा हितैषी समझ बैठे थे । उनके मित्र सेठ की दौलत पर गीध के समान ताक लगाये बैठे थे । वे घूसखोर,कुकर्मी,अविश्वास थे । वे मित्र दोनों बाबुओं को व्यसनों में फँसा कर अपना स्वार्थसिद्ध करते थे । उनके दुष्ट मित्र हमेशा दोनों बाबुओं को चन्द्रशेखर से दूर रखते थे ताकि वह किसी प्रकार सुधरने न पाये । दोनों बाबू हमेशा [illegible]र को

नये नये ढंग से बनाने, दूसरों से अपने को बड़ा कहलाने की धुन में मनमाना धन खर्च कर रहे थे । वे अपने मित्रों की चापलूसी पर फूल उठते थे जिसने जो कुछ कहा तत्काल उसे मंजूर कर लेते थे । नाच रंग का शौक बढ़ गया था । यह सत्य है कि "किमकार्यं कदर्याणाम्" दुष्ट तथा नीच के लिए कोई ऐसा बुरा काम नहीं है जिसे वे न कर सकें ।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।

मनुः

अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता जैसा पृथ्वी में बीज बो देने से उसका फल बोने वाले को थोड़े ही दिन के उपरान्त मिलने लगता है, किन्तु अधर्म का परिपाक धीरे धीरे पलटा खाय जड़ पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है । कलिनाथ और निधिनाथ भी पाप के परिणाम को भूल अपने दुष्ट मित्रों की इच्छानुसार धन खर्च कर रहे थे ।

लेखक का कथन है कि कुसंगत से ही अच्छे गुण जाते हैं । बुरे लोगों की संगत के में पड़कर कोई सद् व्यक्ति नहीं होता जैसे -

संगत ही गुन ऊपजै संगत ही गुन जाय ।
बाँसफाँस मिसरी सभी एक भाव बिकाय ॥

कुसंगति के कारण और दुःख पर दुःख पड़ते हैं "छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति" । लेखक का मत है कि संगत का असर जरूर पड़ता है । बुरे लोगों की संगत में पड़ कर बुराई जल्द ही अपना ली जाती है जब कि अच्छे गुणों को सीखने के लिए अनेकों कष्ट सहने पड़ते हैं । अन्त में विजय सद् की ही होती है । चन्द्रशेखर जैसा सद्भाव ही उनके समस्त दुःखों को दूर कर सद् मार्ग पर ले जाता है ।

कलिनाथ और निधिनाथ का चारित्रिक विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि कथानक की दृष्टि से वह सहायक खल पात्र है अपने दुष्ट मित्रों के कुसंग के कारण ही वह गलत मार्ग अपना लेते हैं । उनमें विवेक बुद्धि का अभाव था इसलिए वह उचित-अनुचित का निर्णय न कर 'लकीर के फकीर' की भाँति अपने दुष्ट मित्रों की बात मान लेते थे । चरित्र की दृष्टि से वह गतिशील है । उनका चरित्र

एक विशेष परिस्थिति में मोड़ देता है । दुष्ट मित्रों की संगति से बुराकाम करने लगते हैं पर जब धन खत्म हो जाता है मित्र साथ छोड़ देते हैं तो वह चन्द्रशेखर जैसे सद् पात्र के संसर्ग से सुधर भी जाते हैं उन्हें अपने बुरे कर्मों के प्रति पश्चाताप या ग्लानि होती है । संस्कार से दुष्ट प्रवृत्ति का न होने के कारण ही लेखक उनके चरित्र को परिवर्तित होता हुआ चित्रित करता है । क्षेत्र की दृष्टि से वह सामाजिक है । उनकी खलता का क्षेत्र समाज है । समाज में रह कर ही वह पत्नी या बच्चों को दुख पहुँचाता है । रूप की दृष्टि से यथार्थवादी खल है । क्रिया की दृष्टि से ये परोक्ष खल है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से यह किसी की भी हानि नहीं करते । अपराध की दृष्टि से अनभिज्ञ है क्योंकि यह जो भी अपराध करते हैं वह अनजान में बिना सोचे समझे बिना परिणाम का विचार किये कुसंग के कारण करते हैं । नाम्यता की दृष्टि से ये अनिश्चित खल है क्योंकि नाम,रूप एवं गुण से ये माने हुये खल नहीं है । ये कथा में एक उच्च कुल के परिवार से संबंधित है । इनकी खलता अनजान में ही पनपती है । कारण की दृष्टि से ये एक दुखी खल है । इनकी खलता का कारण है दुर्बल विवेक । ये जानबूझ कर किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न नहीं करते । दुर्बल विवेक के कारण इन्हें सद् असद् कार्य की पहचान नहीं रहती इसलिए ये दुष्ट मित्रों की बात को ब्रह्मवाक्य जैसा मानकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति से हाथ धो देते हैं;पत्नी बच्चों को भी कष्ट पहुँचाते हैं ।

लज्जाराम शर्मा मेहता के धूर्त रसिक लाल उपन्यास का खल पात्र मोहन लाल कुसंग के कारण खल बन जाता है । अपने मित्र रसिक लाल की कुसंगति में पड़कर वह शराबी,वेश्यागामी,व्यभिचारी और जुआरी हो जाता है । मोहन लाल उदासक खल के रूप में कथा में प्रवेश करता है । संस्कार से खल न होने के कारण भी दुर्बल विवेक के कारण वह खल बन जाता है अपने दुष्ट मित्र रसिक लाल की प्रत्येक बुरी बात को बिना किसी प्रतिवाद के स्वीकार कर लेता है उसमें सद् असद् की निर्णयात्मक बुद्धि का अभाव है फिर भी उसका चरित्र गतिशील है । भूलवश वह पतन का मार्ग अपना लेता है पर ज्ञान प्राप्त होने पर उसे अपने कर्मों पर ग्लानि होती है । लेखक खल के सुधारवादी रूप को दृष्टि में रखकर ही मोहन लाल के चरित्र परिवर्तन की बात सोचता है । मोहन लाल सामाजिक एवं यथार्थवादी खल है । उसका

प्रत्येक क्रियाकलाप परीक्षा है । वह जान बूझ कर किसी का अहित नहीं करता । उससे जो कुछ भी अपराध होता है वह अनजान में धूर्त मित्र के बहकावे , या मूढ़ बुद्धि के कारण । इसलिए अपराध की दृष्टि से हम उसे अनभिज्ञ खल कह सकते हैं क्योंकि वह अपने खलता पूर्ण कार्य एवं परिणाम से अनभिज्ञ रहता है । मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित खल एवं कारण की दृष्टि से एक मुखी खल है । उसकी खलता के कम्पनम्ब प्रभाव से उसकी स्त्री ही दुखित होती है,अन्य कोई नहीं। अज्ञान के कारण ही वह अपने दुष्ट मित्र के जाल में फँस कर अपनी मानसिक शारीरिक,बौद्धिक एवं आर्थिक हानि करता है ।

मूढ़ बुद्धि सोहनलाल धूर्त मित्र रसिकलाल की कुसंगति में पड़कर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति से हाथ धोता है । कुसंग से उत्पन्न बुराई या दुष्परिणाम को दिखाने के लिए ही सोहनलाल की रचना की है । दुष्ट मनुष्य की संगत से मनुष्य का कितना नैतिक पतन हो जाता है,सोहनलाल इसका प्रमाण है ।

चापलूस रसिक लाल की कुसंगति से वह मांसाहारी बन जाता है । सोहनलाल के दुःख प्रगट करने पर वह अपनी तर्कपूर्ण दलीलों से उन्हें शान्त कर देता है जैसे - " मित्र दुःख करने की कोई बात नहीं है । जब आप महादेव का झूठा मद पी चुके है फिर मांस खाने में क्या चिन्ता है ? आप कुछ विचार न करो । इन कंकटों में कुछ सार नहीं है ।[१]

रसिक लाल की संगत में पड़ कर वह अपनी विवेक बुद्धि खो देता है इसलिए धीरे धीरे उनका सम्पूर्ण धन धूर्त रसिकलाल अपने नाम करवा लेता है और फिर उससे सीधे मुँह बात भी नहीं करता । अपनी मूर्खता के कारण ही सोहनलाल बेघरबार हो जाता है ।

विश्वनाथ शर्मा कौशिक के 'मां ' उपन्यास का श्यामबाबू भी खल है । उसकी खलता का भी कारण कुसंग है । अपने दुष्ट,कांइयाँ,मतलबी,मित्र

१- कन्याराम शर्मा - धूर्त रसिकलाल पृ० ३२

विश्वनाथ दास की संगत में पड़कर ही वह वेश्यागामी, शराबी, जुआरी और व्यभिचारी बन जाता है। अपनी कुप्रवृत्तियों के दोष का उसे ज्ञान है अत: मनबढ़ वह माँ-बाप से भेद रखता है। घर का धन वेश्या को दे जाता है। न चाहते हुये भी अनजान में ही वह अनेक दुर्गुणों का शिकार हो जाता है जिसके कारण वह अपनी माँ की दृष्टि में गिर जाता है।

इस उपन्यास में लेखक ने इस बात पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है कि दो भाई अलग अलग परिवेश में पल कर दोनों अलग अलग स्वभाव के बनते हैं। धन और सम्पन्नता, दुर्गुणों को प्रेरणा देती है जब कि निर्धनता में भी श्रेष्ठ गुणों का विकास होता है। माँ का लाड़, माँ जो कि कुशिक्षा का ही स्वरूप है, श्यामबाबू के दुर्गुणों को बढ़ावा देता है। संस्कार से श्रेष्ठ होने के कारण प्रारम्भ में उसे प्रत्येक अनुचित काम करने में भय प्रतीत होता है वह हमेशा असद् कर्म करने से बचना चाहता है पर उसके दुष्ट मित्र नित्य नये नये प्रलोभन देकर उसे पथभ्रष्ट करते रहते हैं। बाल मनोविज्ञान के अनुसार किशोरावस्था में बालक अपराध की ओर शीघ्र प्रवृत्त हो जाते हैं। श्यामबाबू भी किशोरावस्था के कारण दुष्ट मित्रों के बहकावे में आकर अनेक अनुचित काम करने लगते हैं।

बाबू ब्रजनन्दन सहाय के 'राधाकान्त' उपन्यास का 'कुलदेव' खलपात्र है जो कुसंग के कारण दुष्ट मित्रों की संगति में पड़ कर खल बन जाता है। कुलदेव मित्र के रूप में खल है। अपनी स्त्री लवरानी (जिसे वह काशी से भगा कर लाया है) को अपने मित्र हरेन्द्र पर आसक्त देख उसकी हत्या कर देता है और खून से भरी कटारी हरेन्द्र के पास छोड़ जाता है। हरेन्द्र पर लवरानी की हत्या का मुकदमा पेश करता है। हरेन्द्र को फाँसी की सजा होती है तभी राधाकान्त द्वारा नियुक्त वकील वास्तविक अपराधी कुलदेव को पकड़ लेता है। हरेन्द्र मुक्त हो जाता है।

कुलदेव हरेन्द्र के व्यक्तिगत संबंध क्षेत्र में ही खलता करता है क्योंकि इससे सिर्फ हरेन्द्र ही पीड़ित होता है, न कि परिवार। दुष्ट कुलदेव स्वयं भी दुष्टों की संगत में पड़कर बिगड़ जाता है अपने मित्र हरेन्द्र के साथ भी विश्वासघात करता है। अपराध की दृष्टि से वह अभिन्न है। अपितु मित्र के साथ वह जो भी खलता करता है वह जानबूझ कर सोच समझ कर और योजना बनाकर

करता है । वह अपराध के परिणाम से भी भिन्न है । मान्यता की दृष्टि से अनिश्चित है क्योंकि नाम, रूप एवं गुण से वह खल नहीं है उसका व्यापार उसे खल सिद्ध कर देता है ।

श्री पं० गोविन्द वल्लभ पंत के "प्रतिमा" उपन्यास का पात्र समुद्री डाकू हेराउन कुसंग के कारण ही डाकू वृत्ति अपना कर खल की कोटि में आता है । उसकी खलता का कारण है कुसंग और पदलिप्सा की तीव्र इच्छा । समुद्र तट पर रहने वाले कुछ लुटेरों की संगत में पड़ कर वह उनके दुर्गुणों को अपना लेता है । समुद्र तट से व्यापार करने वाले लोगों को लूट मार कर समुद्र में फेंक देता था । हेराउन की खलता का क्षेत्र देश प्रदेश था, वह देश देशान्तरों में घूम घूम कर लोगों को परेशान करता था । स्थिरता उसके जीवन में थी ही नहीं । वह प्रमुख खलपात्र है। उसमें मानव सुलभ कोमलता भी थी और पैशाचिक कठोरता भी । कुशल शासक, निर्भीक सेनापति, निष्पक्ष विचारक और गणितज्ञ तथा ज्योतिषी होने पर भी उसकी शक्ति अंधकार में नियंत्रणकर्त्री थी जैसा कि प्राय: सभी खल में होती है । उसमें सद्प्रवृत्तियाँ भी थी परन्तु उनके जागृत होने का अवसर ही नहीं मिला इसलिए अन्त तक वह खल ही बना रहा । अपनी दुष्प्रवृत्ति पर कभी उसे पश्चाताप नहीं होता। यह बात भिन्न है कि वह हमेशा अपना मार्ग बदल देने की कोशिश करता है पर दुष्टता, क्रूरता तथा स्वार्थ के गोह अंधकार में वह इतना अधिक लिप्त होजाता है कि चाह कर भी सन्मार्ग नहीं अपना पाता । अत्याचार, धोखा, छल, हिंसा आदि उसके जीवन के मुख्य अंग हो जाते हैं । वह दुहरी मनोदशा का व्यक्ति है ।

हेराउन के प्रति लेखक का विचार है - हेराउन क्या था ? पृथ्वी में शैतान की छाया थी । तन में हरक्यूलीज की जीती जागती प्रतिमा थी । उसके एक एक रोम में मानों एक-एक राक्षस बसा हुआ था । लंबी, डरावनी शारीरिक गठन, कठोर मूँछों युक्त वाणी और इन सबके ऊपर राज्य करने वाला एक दृढ़ मन तथा उस मन में रहने वाली एक पैशाचिक प्रवृत्ति थी । उसकी आँखों में एक बड़ी अद्भुत शक्ति थी । किसी का साहस न होता था कि उसकी ओर दृष्टि स्थिर रख सके । प्रकार प्राणी उसके [illegible] पर नाच करते थे, नाच के [illegible] उसी का भय करते।[१]

१- पं० गोविन्द वल्लभ पंत - प्रतिमा पृ० ५१

दस्यु   एकमुखी डाकू हैराउन को लेखक ने यथार्थ वाद की दृष्टि से रखा है । एक तो वह नाम से ही खल है दूसरे दस्यु इसी प्रकार के अत्याचारी होते हैं, उनके जीवन का उद्देश्य ही लूटमार होता है । हैराउन के चरित्र से एक विशेष प्रकार की सफलता करने का ढंग पता चलता है । हैराउन छल बल से, बुद्धि कौशल से, बिना मारकाट के, किस प्रकार पद्मरागपुर पर शासन कर लेता है वहाँ के राजा या प्रजा को विद्रोह करने का अवसर ही नहीं प्रदान करता । उसमें मानव सुलभ दुर्बलता एवं मृदुलता भी थी इसीलिए वह पद्मराग के राजा जयमणि उनकी रानी तथा पुत्री का वध न कर उन्हें सभी सुविधायें प्रदान करता है । इसका सबसे प्रमुखकारण यह है कि वह संस्कार से और एक उच्च घराने का है । हैराउन क्रिया की दृष्टि से अगोचर खल है । अपराध की दृष्टि से शमित है क्योंकि वह जो कुछ भी करता करता है वह जानबूझ कर सोच समझ कर योजना बना कर करता है और उसके परिणाम से भी भिज्ञ रहता है । मान्यता की दृष्टि से वह निश्चित खल है । कारण की दृष्टि से वह निश्चित एकमुखी क्योंकि वह कभी किसी का माल लूट कर उसको दुःख पहुँचाता है कभी दूसरे का ।

पं० चन्द्रशेखर पाठक के अमरवती ठग उपन्यास का पात्र 'अमरवती' खल के रूप में आता है । प्रारम्भ में वह एक धनवान व्यवसायी पिता का पुत्र था । एक बार वह अपने माता पिता के साथ विदेश को जा रहा था कि एक धार्मिक वेशधारी ठग हैबतखान उसे दूध की मिठाई खिला कर कहता है कि कुछ दिन बाद तुम भी अपने पिता की भाँति घोड़ों पर चढ़ने लगोगे । मेरी तरह तुम्हारी कमर में भी तलवार लटका करेगी । दुष्ट हैबतखान अमरवती के माँ-बाप को धोखा देकर छल से एक सुनसान रास्ते से चलने और शीघ्र ही अम्बीर पहुँचने की सलाह देता है । बीच रास्ते में उन दोनों को मार कर सब धन छीन लेता है । अमरवती माँ-बाप की चीत्कार सुनकर घोड़े से गिर जाता है, उसका सर फट जाता है और वह बेहोश हो जाता है । ठग हैबतखान अमरवती को अपने पास रखता है देखभाल अच्छी तरह करता है फिर भी अमरवती की सुरत सब पर से समाप्त न हुई । ठगों के सरदार के पास रहते रहते केवल अमरवती भी उनकी कुसंगति के कारण ठगी को अपना लेता है । संस्कार से बहु प्रभावशाली, पराक्रमी एवं बुद्धिमान होने पर भी ठगों के संगठन में आकर उनकी कुसंगति में पड़ कर वह नर हत्या जैसा जघन्य पाप करने लगता है । इसलिए वह सत्कार

कर लाये हुए एक जौहरी की रूमाल खींच कर निर्दयतापूर्वक हत्या कर देता है और उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति लूट लेता है । कुसंग के कारण 'नर हत्या पाप है, यह भाव क्रमशः चित्त से दूर होने लगा । '[१]

लेखक ने अमर अली को यथार्थवाद की दृष्टि से रखा है क्योंकि कहा गया है 'काजर की कोठरी में कैसहुं सियानो जाय एक लीक काजर की लागी है पै लागी है' उसी तरह बचपन से ठगों की संगति में पड़ कर वह पाप करने से विरत नहीं रह सकता ।

अमरअली ठग के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि कुसंग में पड़ कर मनुष्य कितना बुरे से बुरा काम करने लगता है । सद्प्रवृत्तियाँ भले ही उसे विचलित करें परन्तु पापपूर्ण वातावरण में रहते रहते उसके समस्त सद्विचार पानी में उठे बुलबुले की भाँति नष्ट हो जाते हैं, उसका हृदय कठोर, हिंसक एवं पापी हो जाता है । अमीर अली के चरित्र से यह भी प्रतीत होता है कि समाज में कैसे कैसे विचित्र मनुष्य निवास करते हैं जिनसे अव्यवस्था अशान्ति एवं हत्या दिनोंदिन बढ़ती रहती है और ठग किस प्रकार मनुष्यों को अपना कपटपूर्ण जाल में फँसा कर उन्हें लूटते हैं और निर्दयता पूर्वक उनकी हत्या कर देते हैं । अमीर अली साधु वेश धारण कर शहर में घूमता है और शिकार खोजता है । हत्या जैसे जघन्य पाप को धर्म समझता है । ब्रिटिश डाकुओं के चंगुल में आजाने से वह जेल भी जाता है पर बाद में वह अपना पेशा छोड़ देता है और राष्ट्रहित तथा स्वयं के जीवन के लिए ठगों को पकड़वा कर कम्पनी की रक्षा करता है और देश के मनुष्यों की ठगों से रक्षा करता है । उसकी चारित्रिक हीनता, धोखेबाजी साथियों को पकड़वाना आदि का दूसरा अर्थ यह भी है कि वह अनिच्छा से ठग बना था इसलिए उसे ठगों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रहती । प्रायश्चित स्वरूप वह ठगों

१- पं० चन्द्रशेखर पाठक - अमरअली ठग पृ० ६६

को पकड़वा देता है । कुसंग के कारण उच्च कुल का लड़का भी दुष्प्रवृत्तियों से भर जाता है और असामाजिक कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है हिंसा द्वेष आदि उसकी चारित्रिक विशेषतायें हो जाती हैं । वृंद कवि का कथन है -

दुर्जन के संसर्ग से सज्जन लहत कलेस ।

ज्यों दसमुख अपराध ते बन्धन लह्यौ जलेस ।।

अमरवती की खलता का दोष समाज था । समाज में रहकर ही वह व्यक्तियों को बहका कर उन्हें लूटता,ठगता या हत्या करता था । इस युग के लेखकों की प्रवृत्ति खलता के कारणों में धनिक वर्ग से विशेष सम्बद्ध है । धन जिनके लिए दुर्बुद्धि और खलों की अनमट का कारण हो जाता है । इन उपन्यासों की दृष्टि सुधारवादी है जो इस प्रकार के खलों को प्रस्तुत करते हैं एक दुर्जन,दूसरे जो कुसंग से प्रभावित होते हैं । अंतिम दो उदाहरण विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें बालक को सही परिवेश न मिलने के कारण वह कुसंग की धारा में बह जाता है । किशोरावस्था में कुसंगति का विशेष असर होता है जब कि बालक के चरित्र का निर्माण काल होता है,यह आधुनिक मनोविज्ञान मानता है ।

जिस प्रकार बार बार चोट करने से पत्थर भी टूट जाता है उसी प्रकार दिनरात बुरे लोगों की संगत में रहने से मनुष्य बुराई से बिलग नहीं रह पाता वरन् उसे अपना लेता है । तुलसी दास ने ठीक ही कहा है -

को न कुसंगति पाई नसाई । रहै न नीच मते चतुराई ।[1]

कुशिक्षा :

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के 'अलका' उपन्यास का पात्र 'मुरलीधर' खल है । उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण है कुशिक्षा । अपने गुरु

१- तुलसी दास - रामचरित मानस अयोध्याकांड पृ० ३२१

मोहन लाल की कुशिक्षा एवं कुसंग के कारण ही उसमें अनैतिक भावना का प्रादुर्भाव होता है । फल स्वरूप अनेक कामोत्तेजक पशुतापूर्ण कार्यों में प्रवृत्ति का बढ़ना, कुशिक्षा के कारण उसकी वृत्ति का अधिकाधिक तामसी होना, वातावरण का सहायता प्रदान करना , परिस्थितियों का मनोनुकूल होना, समाज और परिवार का सहयोग आदि अनेक कारण थे, जिसके कारण मुख्य मुरलीधर खल पात्र की श्रेणी में आता है ।

मुरलीधर का शिक्षक मोहनलाल जो बाद में उसका सिक्रेटरी बन जाता है धनलोलुपता के कारण मुरलीधर में अनेकों अवगुण उत्पन्न कर देता है । माता के लाड़-प्यार और मोहन लाल के गलत प्रोत्साहन देने से वह अशिक्षित रह जाता है । मोहन लाल शिक्षा के क्षेत्र में छलना करता है । बिना परिश्रम के ही धन प्राप्ति के लोभ से वह मुरलीधर को पास कर देता था पर प्रवेशिका में फेल हो जाने के कारण वह मुरली धर की झूठी प्रशंसा करता हुआ कहता है - "लड़के की अक्ल तो बड़ी तेज है, पर परीक्षक लोग शराब पी कर पर्चे देखते हैं , जिससे अच्छे के लिए बुरा और बुरे के लिए अच्छा नतीजा हासिल हो जाता है । और लड़के को नौकरी तो करनी नहीं, बिना डिग्री के हल नहीं रुकेंगे, यों इल्म के लिहाज से लड़का किसी ग्रेजुएट से कम नहीं ।"[1]

बुद्धिहीन मुरलीधर भी अपनी प्रशंसा सुनकर सोचता है कि मेरी प्रतिभा का ज्ञान सिर्फ मास्टर साहब को ही है। जब कि मोहनलाल उसे काठ का उल्लू समझते हैं । धन के लोभ में उसकी झूठी प्रशंसा करता है ।

पिता की मृत्यु के पश्चात् मुरलीधर पुनः मोहनलाल को अपना प्राइवेट सिक्रेटरी बना लेता है - "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी " मोहनलाल को मुँह माँगी मुराद मिलती है। अब शिष्य की उन्नति के लिए विभिन्न ढंग से दत्तचित्त हो जाते हैं । उसे अधिक से अधिक व्यसनी बनाने के लिए मुरलीधर के सबसे बड़े हितैषी मोहनलाल मुरलीधर को -"पहले छुरी चम्मच, काँटा पकड़ाकर पाश्चात्य ठाट से भोजन भोजन करना सिखलाया । फिर धीरे धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का मुरब्बा रखा।[2]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अलका पृ० २२ नवां सं० १९६०

२- निराला - अलका पृ० २३

फिर वेश्यागामी, फिजूलखर्ची की शिक्षा देने लगे । पदवी एवं प्रतिष्ठा का लालच देकर वह बड़ी बड़ी दावतें करने नाच रंग का प्रोग्राम रखने का प्रस्ताव रखा । दुष्ट मोहनलाल देहात की सुन्दर सुन्दर विधवाओं को भ्रष्ट करने की सलाह देता हुआ कहता है - "गृहस्थों के घर की, बहुत मिलेंगी एक से एक खूबसूरत पड़ी हैं, अच्छा चाहिए अपने पास इसकी कमी नहीं । "[१]

विधवाएं, निर्धन अविवाहित लड़कियां, लगान की छूट, छूटनियों के बहकावे आदि में आकर जमींदार मुरली धर के जीवन में रस घोलने लगी ।

प्रभुता भी मनुष्य के चरित्र को दूषित कर देती है । इसी प्रभुता के कारण मुरलीधर सोचते हैं - " एक साधारण स्त्री है । मर्दों के खिलाफ भी वह जाई जा सकती है । सब सरकारी कर्मचारी उन्हीं की तरफ है । विपक्ष से शिकायत करने वाला कोई नहीं है । वह न हो, नहीं रख ही जायगी । "[२]उसके यह विचार उसकी दुष्प्रवृत्ति के द्योतक है । शक्ति के बल पर वह अनैतिक कार्य करने से घबड़ाता नहीं । वास्तव में शोभा को पकड़ लाने के पीछे दुष्ट मोहनलाल की ही बुद्धि काम करती है मुरली धर तो सिर्फ निमित्त मात्र है ।

नीच, कपटी मोहनलाल मुरलीधर में हर सम्भव दुर्बलता भर देना चाहता है । उसका आर्थिक उत्थान कर उसे नष्ट कर देता है । समाज की दुर्बलता अथवा चरित्र की दुर्बलता की शिकार स्त्रियों का उपयोग करने की सलाह देने में उसका कुत्सित स्वार्थ भी सिद्ध होता था । अपने शिष्य मुरलीधर को वह जितने भी ढंग से कुमार्ग पर ला सकता था लाता था और उसे सदा अपनी मुट्ठी में रखता था ।

मोहनलाल के चरित्र के द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि धन का लोभ मनुष्य को कैसे पशु बना देता है । स्वार्थ पूर्ति के लिए वह कितना घृणित से घृणित कार्य करवाने से बाज नहीं आता । साथ ही ऐसे शिकार का रूप प्रस्तुत करने के लिए भी जो धन के लोभ में अपने शिष्य का जीवन नष्ट कर देता है । यदि यदि लेखक ऐसे चरित्र का उद्घाटन न करें तो समाज में विद्यमान बुराइयों या अमानवीय

१- निराला - अलका पृ० २४

२- निराला - अलका पृ० २७

तत्वों का यथार्थ रूप सम्मुख न आये । समाज के यथार्थ रूप और उसमें विद्यमान खल पात्रों के विविध रूपों को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने मोहन लाल जैसे खल को कथानक में स्थान प्रदान किया है । यदि मोहनलाल की धन पिपासा इतनी तीव्र न होती कि वह किसी भी प्रकार का अनैतिक कर्म करके उसे प्राप्त करें तो शायद मुरलीधर के खल बनने की सम्भावना भी कम होती । संगत का असर व्यक्ति पर न पड़े यह असम्भव है । फिर उस संगत का जिस पर व्यक्ति का चरित्र निर्भर करता है ।

मोहनलाल की कुशिक्षा के कारण ही मुरलीधर का नैतिक पतन होता है । समाज में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है । खल की कोटि में रखा जाता है । भावना दूषित हो जाती है । अविद्या और अज्ञान के कारण वह प्रत्येक गर्हित काम को अच्छा समझता ह ।

मुरलीधर के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि उचित शिक्षा के अभाव और अत्याधिक धन सम्पन्नता के कारण व्यक्ति गंदी आदतों का शिकार हो जाता है । कुशिक्षा और कुसंग व्यक्ति के विवेक को आच्छादित कर उसकी बुद्धि को कुंठित कर देते हैं । कुशिक्षा और कुसंग के कारण व्यक्ति का जीवन कितना पतित भ्रष्ट और अमानवीय हो जाता है । मानव मन में दुर्बलतायें रहती हैं उसको सही दिशा की ओर निर्दिष्ट न करने से क्या परिणाम निकलता है आदि का यथार्थ रूप मुरलीधर का चरित्र प्रस्तुत करता है ।

मुरलीधर समाज में खलता करता है । समाज में अव्यवस्था,अशांति एवं अनाचार फैलाता है जिसके कारण कितनी ही निस्सहाय रमणियों , विधवाओं और कुलललनाओं का सतीत्व नष्ट हो जाता है । उसका विचार था धन के बल पर सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है । अपने इसी विचार के कारण वह मृत्यु को प्राप्त होता है ।

मुरलीधर का चरित्र गतिशील है । उसके कोमल मस्तिष्क में गुरु मोहनलाल जिस प्रकार की रेखायें अंकित करते जाते हैं उसी प्रकार उसका रूप बदलता जाता है । मुरलीधर का क्रिया कलाप अपरोक्ष है वह प्रकट रूप से अपनी खलता को व्यक्त करता है उसे समाज या राज्य का भय नहीं रहता । उपेन्द्र जी इन बातों को दृष्टि में रखकर ही लेखक मुरलीधर जैसे खल की रचना करते हैं जो धन के घमंड में समाज

में प्रतिष्ठा के बल पर मनमानी पाप करते हैं और समाज में पूजे जाते हैं। अपराधी दृष्टि से वह अविक्ष खल है। उसकी खलता यौवनावस्था से मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित खल है। कारण की दृष्टि से वह बहुमुखी खल है क्योंकि अपने स्वार्थ के लिये वह कभी किसी स्त्री को सताता है उसका सतीत्व नष्ट करता है कभी दूसरे की। उसकी खलता का संबंध मुख्य रूप से काम प्रवृत्ति से है। उसकी खलता अपराध की कोटि का स्पर्श करती है।

प्रेम चन्द्र के " वरदान " उपन्यास का खलपात्र " कमला चरण " यथार्थवादी खल है। उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण हैं अत्यधिक अनुचित लाड़ प्यार[1] और दुष्ट मित्रों का संग जिसके कारण वह चरित्रहीन सामाजिक खल की कोटि में आता है।

अशिक्षित दुर्व्यसनी, दुराचारी, कुचरित्र होने पर भी उसे अपनी स्त्री विरजन से सच्ची प्रीति थी। विरजन के मधुर सम्पर्क से वह अपनी पुरानी सभी गंदी आदतों को छोड़ देने की कोशिश करता है पर बचपन की लम्पटता उसमें बनी रहती है जो समयानुसार पुनः प्रगट हो जाती है। माली की लड़की सरजूदेवी के साथ किये गये अनुचित व्यवहार के भय से भगने के लिये जब वह भाग रहा था रेल से कूदने से देहान्त हो जाता है। पाप के आगे मनुष्य के विमल समस्त गुण विलीन हो जाते हैं। लेखक का कथन है कि " पाप अग्नि का वह कुण्ड है जो आदर और मान-सम्मान और धैर्य को क्षण भर में जला कर भस्म कर देता है। [2]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि संस्कार से खल न होने पर भी परिस्थिति एवं वातावरण ने उसे खल बना दिया। यदि उसे उचित वातावरण और अच्छी संगत मिलती तो वह कभी भी इस प्रकार का अनुचित कार्य न करता जो कि वह समय समय पर करता है।

१- इस अनुचित लाड़ प्यार ने उसे पतंग,कबूतर बाज, और इसी प्रकार के अन्य कुव्यसनों का प्रेमी बना दिया था।सबेरा हुआ कबूतर उड़ाये जाने लगे बटेरों के जोड़ छूटने लगे संध्या हुई और पतंग के लम्बे लम्बे पेच होने लगे। कुछ दिनों में जुए का भी चस्का पड़ गया था। दर्पण, कंघी और इत्र में तो मानों उसके प्राण बसते थे वरदान पृ० २३-२६।

२- प्रेम चन्द्र - वरदान पृ० ८४

कमलाचरण के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि अनुचित लाड़ प्यार भी मनुष्य का किस सीमा तक पतन कर देते है । बुद्धि के अभाव में सात्विक भाव दब जाते है और असत् प्रवृत्ति का उग्र रूप धारण कर उससे अनुचित कार्य कराती है । न चाहते हुये भी वह अकुल से ऐसे अनुचित अशोभनीय कार्य करता है जिससे उसे स्वयं तो ग्लानि होती ही है दूसरों की दृष्टि में भी वह बुरा व्यक्ति साबित होता है । अपने उद्देश्य प्राप्ति में वह झूठ, कपट, दुराव, ढोंग, दिखावा, मिथ्या वाक्य आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है ।

वंशानुक्रमवृत्ति (पेशेवर खल)

(मैत्रेक खल)

बालकृष्ण भट्ट के नूतन ब्रह्मचारी उपन्यास का " डाकू सरदार परिस्थितिवश खल है । इसीलिये बालकविनायक के सद्व्यवहार सच्चाई का निष्कपटतापूर्ण व्यवहार से उसके मन में निहित कोमल भावनाये जाग्रत हो जाती है और वह डाकू वृत्ति को छोड़ देता है । उसका दुर्बल मन एक सात्विक बालक की सच्चाई से परिचालित हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यों तो वंशानुक्रम से और पेशे से डाकू है यद्यपि उसके मन में विवेक का अभाव नहीं है अच्छे संस्कार का भी अभाव नहीं । बालक विनायक के सम्पर्क में आने के पश्चात् वह अपने वंश के परम्परागत पेशे के दुर्गुणों को पहचान कर उसे छोड़ देता है ।

खलनायकों के चरित्र में रूपान्तर होने के दृष्टिकोण को सम्मुख रख कर ही लेखक डाकू सरदार के हृदय परिवर्तन की बात सोचता है । असत् के स्थान पर हमेशा सत् की विजयी होता है इसलिये डाकू सरदार का असत् चरित्र बालक विनायक के सद्व्यवहार एवं विचार से परिचालित हो जाता है । आदर्शवादी लेखक सुधारवादी दृष्टि को सम्मुख रख कर ही हृदय परिवर्तन की बात करते है ।

डाकू सरदार प्रमुख खल के रूप में कथा में प्रवेश करता है उसका चरित्र गतिशील है । इसीलिये बालक के सत् चरित्र का उस पर प्रभाव पड़ता है । उसकी

खलता का तीव्र अभाव है वह अभाव में ही रहकर अपनी अमनी डाकूवृत्ति द्वारा दूसरों को दुःख पहुँचाता है। रूप की दृष्टि से वह यथार्थवादी खल है। क्रिया की दृष्टि से वह परोक्ष है। अपने उद्देश्य की पूर्ति में उसे समाज का और व्यक्ति का भय नहीं है। वह जो कुछ भी खलता करता है वह प्रत्यक्ष है। अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ खल है। वह जानबूझ कर पेशेवर खल की भाँति खलता करता है। वह अपने दुष्टतापूर्ण कार्य के परिणाम से भिज्ञ है। मान्यता की दृष्टि से वह निश्चित खल है क्योंकि प्रारम्भ में ही लेखक उसे एक डाकू के रूप में चित्रित करता है। कारण की दृष्टि से वह स्वमुखी खल है।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो संस्कार से खल नहीं होते उनका परिस्थिति या कुसंग से शीघ्र ही हृदय परिवर्तन हो जाता है। डाकू सरदार ऐसा ही खल है जिसे लेखक सत्संगति से सुधरता हुआ चित्रित करता है। इसमें लेखक की सुधारवादी दृष्टि झलकती है। लेखक यह दिखाना चाहता है कि निकृष्ट से निकृष्ट मनुष्य का भी हृदय परिवर्तित हो सकता है क्योंकि उसके अन्दर असत् के साथ सत् भाव भी बीज रूप में निहित रहते हैं। असत् विचारों के बाहुल्य और परिस्थिति की विडंबना के कारण वह खलता पूर्ण कार्य करता रहता है।

साहित्यकार और न्यायसूत्रों के निर्माताओं में एक मूलभूत अन्तर होता है। न्याय जिस अपराधी के लिये कैद, शारीरिक दंड, फाँसी या निष्कासन का विधान करके ही सीख पाता है अधिक से अधिक आधुनिकतम विचारधारा में (Reformation) सुधार की कल्पना की है वहाँ साहित्यकार अधिक मानवीय दृष्टि से अपने खलपात्र को देखता है। भारत की धार्मिक विचारधारा में सत्संग का विशेष माहात्म्य बताया गया है।

सज्जन जन के संग में, रहवे ही सुखदाय।
जैसे कुच छापे अवर, लेत जमो बन जाय।[1]

---

१. वृंद कवि – वृंद सतसई पृ० १६

हमारा उपन्यासकार उसी परम्परा में मन के परिवर्तन के लिये ऐसे अवसर निकाल लेता है और अपने खलपात्र को खलता से विमुख होता हुआ देखकर एक सुख और शान्तिमय समाज की कल्पना करता है । यह विचार निश्चय ही साहित्यकार के मानव स्वभाव के देवत्व में अटूट विश्वास का सूचक है ।

किशोरीलाल गोस्वामी के तिलिस्मी उपन्यास "कटेमूड़ की दो दो बातें" का खलपात्र "कल्लूखाँ" डाकू है । कल्लूखाँ चोरी डकैती करने में माहिर है । वह डाकुओं का सरदार है । उसका चरित्र उसके विश्वासपात्र नौकर घनारू के शब्दों में प्रगट हो जाता है - "बड़े धूम से कहीं किसी अमीर के घर डाका डालना, सरदार काफले का लूटना, अमीरों के लड़के लड़कियों और नौजवानों को हिकमत से फँसा लाना और मनमाना नजराना लेकर उन्हें आजाद करना ही मेरे सरदार का शुरू से काम रहा है । खूबसूरत लड़कियाँ जहाँ से पाता है लाता और उनकी परवरिश कर पढ़ने लिखने और गाने बजाने की तालीम देता और फिर उन्हें किसी अमीर खानदान या "सरदार रंडी" के हाथ मुँहमाँगी कीमत पर बेच देता है ।"[1] उसके अपराध का क्षेत्र न केवल आर्थिक है वरन् काम भी है । कल्लूखाँ स्वभाव से दुष्ट है । नूरजहाँ और हसीना को कैद करके रखता है । नूरजहाँ को तो स्वयं अपनी रंडी बनाकर रखने और हसीना को हैदराबाद के एक ताल्लुकेदार के हाथ बेच देने की बात सोचता है । नूरजहाँ के सौन्दर्य के आगे वह अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है और उसका गुलाम बन जाता है । नूरजहाँ सभी डाकुओं को शराब पिलाकर कैद कर स्वयं मुक्त हो जाती है। होश आने पर कल्लूखाँ या अन्य डाकू शराब की कोठरी में न जाकर मैगजीन की कोठरी में घुस जाते हैं । बारूद में आग लगने से सब मर जाते हैं । उसकी क्रूरता, कठोरता, हृदयहीनता, स्वभावजन्य प्रवृत्ति है ।

लेखक ने कल्लूखाँ को यथार्थवाद की दृष्टि से एक पेशेवर खल के रूप में चित्रित किया है । यथार्थ में समाज में ऐसे पेशेवर खल हैं जो अपने दुष्ट स्वभाव के

१- किशोरी लाल गोस्वामी - कटे मूड़ की दो दो बातें पृ० ४६ ना० प्रा० स०प्र०सं०

कारण समस्त-मे लड़कियों का क्रय विक्रय करते हैं और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं । उसके नाम से ही लेखक उसके खल होने का प्रमाण दे देता है । कलुआ डाकू होने के कारण किसी व्यक्तिगत मनुष्य के साथ खलता नहीं करता । उसकी खलता का मुख्य कारण है धनलोलुपता जिसके कारण वह लड़कियों के विक्रय जैसा जघन्य पाप करता है । उसकी खलता का क्षेत्र बड़ा व्याप्त है । वह संस्कार से ही खल है । पापी को अपने पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है, यही दिखाने के लिये किशोरी लाल गोस्वामी के प्रत्येक खलपात्र अन्त में दु:ख, भर्त्सना, मृत्यु आदि के शिकार होते हैं। पश्चाताप या सुधार की भावना किशोरीलाल गोस्वामी के खलपात्रों में नहीं दिखाई पड़ती क्योंकि उनकी दृष्टि में खलपात्र त्याज्य , हेय, घृणित एवं निंदनीय है उसका उदात्तीकरण करके उसमें सुधार या पश्चाताप की भावना का आना असम्भव है । जैसा कि आगे प्रसाद, प्रेमचन्द के उपन्यासों में दृष्टिगत होता है । इसका प्रमुख कारण है लेखक की सनातन हिन्दू धर्म पर दृढ़ आस्था । धर्म की रक्षा हेतु उन्होंने मानव कल्याण के लिये पुराणों, स्मृति ग्रन्थों से उद्धरण भी प्रस्तुत किया है । धर्म और पाप के रूपों का चित्रण कर अन्त में पाप पर पुण्य की विजय उनके सामाजिक, ऐतिहासिक और तिलिस्मी सभी उपन्यासों में दृष्टिगत होती है[१] । धर्म की रक्षा पर जोर देते हुये बार बार कहते हैं -

धर्म एव हतो:हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित: । १

फलं कर्मानुरूपं हि, प्राप्नोत्यत्र नर: सदा । २

धर्मात् अर्थस्य कामस्य मोक्षस्यैवस्य संश्रयत्

तस्मात् मनुजन्मान् धर्म पर सुखी भव । ३

यथा करोति कर्माणि तथैव फलमश्नुते । ४

हिंस्त्र: स्वपापेन विहिंसित: खल : । ५

हिन्दू धर्म में अटूट आस्था एवं विश्वास के कारण ही धर्म के विपरीत आचरण करने वाले को उन्होंने खलता जामा पहना दिया । मुसलमान पात्रों को ही अधिकतर खल के रूप में चित्रित किया है ।

श्री युत गोपाल चन्द्र चक्रवर्ती शास्त्री के बहुरे उपन्यास " खूनी पत्र

(जासूसी उपन्यास) का खलपात्र " मगनलाल " है । मगनलाल को एक बार बैंक लूटने के अपराध में फाँसी की सजा होती है पर भाग्यवश उसकी जान नहीं जाती वह भाग जाता है । सब लोग यही सोचते हैं कि वह मर गया । मगनलाल वहाँ से भाग कर अपना नाम बदल कर सोमन जी जासूस के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है जो हत्या चोरी और जुल्म से लोगोंको परेशान करता है, भले भले आदमियों के बीच में जासूस के नाम से प्रसिद्ध होकर मनमाना लूट हत्या आदि करता रहता है और अपने को भला आदमी कहता है पर अन्त में जासूस महावीर प्रसाद की जासूसी से मगनलाल उर्फ सोमन जी का भेद न्यायालय ~~की अदालत के रूप में~~ ~~कोर्ट के सामने~~ खुल जाता है । महावीर प्रसाद की माँ उर्फ मालती देवी इस भेद को खोलती है ।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि खल पात्र एक बार पाप से छुटकारा पा जाने पर फिर अधिक पाप की ओर अग्रसर होता जाता है क्योंकि उसकी मनोवृत्ति ही दूषित हो जाती है । दुष्टता ही उसका स्वभाव बन जाता है जैसा कि मगनलाल ने किया । फाँसी के तख्ते से छूटकर वह दूसरे रूप में खलता करने लगता है । सभ्य समाज में जासूस के नाम से प्रसिद्ध होकर वह नाना प्रकार से व्यक्तियों को कष्ट पहुँचाना शुरू कर देता है । अदम्य साहस और बुद्धि कौशल के बल पर ही वह ऐसा कर पाता है । इसमें लेखक ने खलता के नये रूप को सामने रखा है ।

गोपालराम गहमरी के डबल बटोरा " उपन्यास का खलपात्र " डाकू कंडासिंह " और " डाकू रमीद " है जो " डिक्सन और कांट " के रूप में सम्मुख आते हैं । एडिसन साहब के परममित्र असिस्टेंट डिक्सन और उसके मंत्री कांट पच्चीस हजार डालर लेकर बम्बई के रामलखन मिस्त्री से डबल बटोरा खरीदने के लिए आते हैं । रास्ते में गाड़ी भिड़ जाने से दोनों की मृत्यु हो जाती है उन्हीं के स्थान पर कंडासिंह और रमीद नामक डाकू डिक्सन और कांट बनकर मिस्त्री के पास जाते हैं ।

लेखक यह दिखाना चाहता है कि डाकू वेश परिवर्तन में माहिर होते हैं । एक स्थान से दूसरे स्थान पर भाग कर लोगों का नाना प्रकार से ठगते हैं या हत्यायें करते हैं । कंडासिंह मेरठ में खून करके बम्बई भागता है । कलकत्ते जाते समय

उसे यह सुनहरा मौका मिल जाता है अपने रूप का फायदा उठाकर वह नकली डिक्सन बन जाता है अपने असली चरित्र को छिपाने के लिये वह बार बार झूठ बोलता है जैसे सुजान सिंह के कहने पर कि 'हमने आपको कहीं देखा है वह लापरवाही से जवाब दे देता है कि मुझे तो याद नहीं, हो सकता है मेरी शक्ल के किसी दूसरे आदमी को देखा हो। मेरे देश में भी मेरी शक्ल के कई आदमी हैं।' इन शब्दों से उसका झूठ बोलना स्पष्ट प्रतीत होता यद्यपि उसके मन में भय समाया हुआ है कि कहीं भेद खुल न जाये फिर भी वह झूठ बोलता है। साहस का अभाव होने पर भी हमीद के उकसाने या धन का लालच देने के कारण वह डिक्सन का रूप धारण कर लेता है। लेखक आत्मा के नये रूप को सामने रखता है कि धन के मोह में जन किस किस प्रकार का आचरण करता है।

डाकू हमीद सर्वप्रथम ग्रांट साहब के रूप में सम्मुख आता है वह वाक्पटु, व्यवहारकुशल एवं चालाक है। कांइयाँपन, धोखाधड़ी, बदमाशी एवं लालच उसके चरित्र की विशेषता है। वही झंडासिंह को धन का लालच देकर डिक्सन बनने को तैयार देता है। झंडा को और अपनी पोशाक बदला कर ग्रांट की पोशाक पहन लेता है। जाली दस्तखत बनाता है। झंडा को अपने अनुशासन में रखता है।

झंडासिंह के मर जाने से हमीद का सारा काम बिगड़ जाता है। झंडासिंह को डिक्सन बनाकर स्वयं उसका सेक्रेटरी बन कर सब धन हथियाने का स्वप्न अधूरा रह जाता है। फिर भी वह डिक्सन की मृत्यु की खबर फैलने से पहले ही पटने जाकर बैंक से जाली चेक द्वारा रुपया निकाल कर भाग जाता है। सुजान सिंह उसका पीछा करता है पर एक आदमी के बीच में आ जाने से वह गड्ढे में गिर जाता है। यह देख ग्रांट उर्फ हमीद गाड़ी से कूद कर सुजानसिंह को गड्ढे से निकाल उसकी जान बचाता है और एक चिट्ठी में अमेरिकन डिक्सन और ग्रांट के रेल दुर्घटना में मरने तथा उनकी जगह स्वयं लेने की बात लिख देता है।

वहाँ से भागने के बाद हमीद पटने में अपने दोस्तों के पास जाता है और अबदुलैन के नाम से मशहूर हो जाता है। जुये के अड्डे में अबदुलैन बहुत से जुआरियों की तिजोरियाँ कई बार खाली कर देता है। वह पक्का जुआड़ी नकली दाढ़ी मूँछ लगाकर स्वच्छन्दता पूर्वक घूमता है। वह रूप बदलने में निपुण था कड़ी

बड़ी संगीन वारदात करने पर भी जासूस उसे पकड़ नहीं पाते थे ।

लेखक का कथन है कि -" अब उनकी समझ में आने लगा कि अधर्म और पाप के रास्ते में कैसे कैसे विषधर सर्प पड़े रहते हैं और कैसे कैसे कदम कदम पर कांटे चुभा करते हैं । [१]

लेखक का मत है कि पाप एवं अनैतिकता का मार्ग बुरा है उस पर चलने से मनुष्य को अन्त में पछताना ही पड़ता है - " धर्म के रास्ते में शान्ति हो सकती है । लेकिन सुख नहीं । पाप के रास्ते में तो शान्ति भी नहीं है सुख की कौन पूछे ? बल्कि सैकड़ों अज्ञात विपदाओं की छाया प्रेत की तरह चारों और से नाच रही है ।[२]

उपरोक्त कथानक की रचना में लेखक का मुख्य उद्देश्य यह दिखलाना है कि खल मनुष्य किस प्रकार अपनी चतुराई से बड़े से बड़े जासूस सुजान सिंह को भ्रम में रख सकता है । दूसरे उसकी खलता का क्षेत्र कितना विविध है । नाम और रूप बदल कर वह लोगों को कष्ट पहुँचाता है । फिर भी उसके चरित्र में एक विशेषता है, स्वार्थ सिद्धि चाहते हुये भी उसके हृदय में थोड़ी मानवता है वह निरा शैतान नहीं इसीलिए वह घायल सुजानसिंह को नाले से निकाल कर उसकी जान बचाता है । यथार्थ में वह जो है उसका भान कराता है जिससे उसका अदम्य साहस प्रगट होता है लेखक का मत है कि खल चाहे जितनी भी चालाकी या बुद्धिमानी से कार्य क्यों न करे उसके मन में शान्ति नहीं रहती है । अपने स्वार्थसिद्धि के लिये वह झूठ, छल कपट, दुराव, आडम्बर, छल, धोखा आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है । उपरोक्त कथानक की दृष्टि से प्रमुख खल, चरित्र की दृष्टि से यथार्थवादी, क्रिया की दृष्टि से अपरोक्ष, अपराध की दृष्टि वैधानिक मान्यता की दृष्टि से निश्चित एवं बहुमुखी खल है ।

गोपालराम गहमरी के " अद्भुत खून " उपन्यास में हैक्टर और मार्था खल के रूप में आये हैं । हैक्टर परिस्थितिवश खल है पर मार्था नारी स्वभाव से ही खल है।

१- गोपालराम गहमरी- उठ़न छटौला पृ० ६७

२- गोपालराम गहमरी- उठ़न छटौला पृ० ६८

वृंदावन लाल वर्मा के " संगम " उपन्यास का पात्र लालमन ब्राह्मण "डाकू " खल है । उसकी खलता का कारण है गलत विचार धारा । उसका विश्वास था कि डाकूवृत्ति अपनाने से धन अधिक प्राप्त होगा और परिश्रम कम करना होगा इसलिये वह डाका डालना शुरू कर देता है ।

उसमें अदम्य साहस है । जेल का ताला तोड़कर निकल भागता है । उसके साहस को देखकर किसान और ग्रामीण सभी सोचते हैं कि उसे भवानी सिद्ध है इसलिये वह मनमाना अत्याचार करता है डाकू होने पर भी लालमन की विशेषता थी कि वह वृद्ध, बच्चों तथा स्त्रियों को कभी कष्ट नहीं पहुँचाता था । इस बात का प्रमाण उसके इन शब्दों से मिल जाता है - औरतों को हटा दो । हम लालमन हैं, औरतों पर हाथ नहीं डालते । [1] इतना होने पर भी वह किसी गरीब की मदद नहीं करता । धन का लोभी और स्वभाव का उग्र डाकू किसी की मदद कर भी कैसे सकता है परन्तु न्याय करने में वह दक्ष है इसीलिये सुखलाल से कहता है -" पंडित की चिट्ठा कुछ दिनों बाद ठिकानेभी पहुँच जायेगा ।" [2]

खल प्रवृत्ति का होने पर भी उसे दो व्यक्तियों से विशेष स्नेह है । एक तो जानकी जिसका वह मामा लगता था दूसरा सुखलाल जो उसका संबंधी था । जानकी की शादी में वह गुप्त रूप से मदद करता है । अपने पेशे के कारण उसमें हिंसात्मक वृत्ति का होना स्वाभाविक है । समय आने पर वह किसी की भी हत्या करने में नहीं घबड़ाता । डकैती ने उसके हृदय को कठोर बना दिया था । जानकी की शादी में रामचरण द्वारा अपने साथियों पर प्रहार होते देख वह रामचरण पर व्याघ्र के समान टूट पड़ता है और उसे मार डालने की कोशिश करता है । उसका यह हिंसात्मक प्रहार वस्तुतः जानकी के प्रति अतिशय भावुक प्रेम का ही परिणाम है , हैवलाक ने बताया है कि अधिकांश अपराधियों की जिंदगी दुहरी होती है । क्योंकि उनके व्यक्तित्व में एक ओर क्रूरता डाकापनी केसत्वहोते हैं तो दूसरी ओर बड़े भावुक

१- वृंदावन लाल वर्मा - संगम पृ० ११ पंचमावृत्ति सं० २०१५ वि०

२- वृंदावन लाल वर्मा - संगम पृ० १३

और कोमल वस्तु भी दिखाई पड़ती हैं। [1]

साहसी तो वह इतना अधिक है कि पुलिस या थाने की परवाह नहीं करता। उसका साहस इन शब्दों में प्रगट होता है -" अदालत के ताले को राख कर दो। [2] गंगा द्वारा यह जान कर भी कि रामचरण सुखलाल का आदमी है उसका क्रोध शान्त नहीं होता। गंगा के बीच में आ जाने पर भी वह गंगा की परवाह न कर रामचरण पर प्रहार करता है। जिससे उसकी क्रूरता और पशुता झलकती है।

लालमन के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि अपने गलत विचार के कारण भी मनुष्य खल बन जाता है। धन के मोह एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने की इच्छा से डाकूवृत्ति को अपना लेता है और हिंसा, अत्याचार, डाका, लूट आदि द्वारा समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करता है। लालमन प्रमुख खल के रूप में कथा में गति प्रदान करता है उसका चरित्र स्थिर है। क्रिया की दृष्टि से वह अपरोक्ष खल है वह निर्भीक रूप से डाका डालता है। अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है वह अपराध के परिणाम से भिज्ञ है। उसका अपराध जानबूझ कर होता है। वह निश्चित खल है क्योंकि लेखक प्रारम्भ में ही उसे एक डाकू के रूप में प्रस्तुत करता है वह बहुमुखी खल है। समाज में वह एक के बाद दूसरे का, फिर तीसरे का अहित करता है। उसकी खलता से सम्पूर्ण वातावरण प्रभावित रहता है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के "विदा" उपन्यास का जन्मजात खल-रूपक-सं पात्र 'डिक' डाकू के रूप में कथा में प्रवेश करता है। डिक जन्मजात खल है। संस्कार से ही उसकी प्रवृत्ति दूषित है। डिक इंग्लैण्ड का मशहूर डाकू है जो इलाहाबाद में आकर विलसन के नाम से मशहूर हो जाता है और जगह जगह डाका डालता है।

डाकू के समस्त गुण उसमें विद्यमान है। वह चतुर है। मनुष्य के कोमल भावों को जाग्रत करने और फिर उसकी दुष्प्रवृत्तियों या कमजोरी का पता लगा

1- हैवलाक एलिस - द क्रिमिनल पृ० १८८

2- वृंदावन लाल वर्मा - संगम पृ० २२१

कर अपना मतलब हल करने की कला में प्रवीण है । डिक को यह मालूम था कि कैंट को मिस्टर वर्मा ने ही जहाज से ढकेला था इसलिये जब पुरी में कैंट से भेंट होती है तो मिस्टर वर्मा का पता लगाते लगाते वह इलाहाबाद पहुँच जाता है । अपना नाम बदल कर विलसन रख लेता है । मिस्टर वर्मा को उसके पापों की याद दिला कर पुलिस का भय दिखा कर वह उससे रूपये ऐंठता है । मिस्टर वर्मा जब उससे १५ हजार रूपये लेकर इंग्लैंड लौट जाने को कहते है तो वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि हिन्दुस्तानमेंउसे अपने काम को करने में सुविधा होगी क्योंकि यहाँ पुलिस का डर नहीं है । हिन्दुस्तानी अंग्रेजों से डरते है आदि आदि ।

उसमें मानवी तत्वों का अभाव नहीं है । मानव धर्म का ख्याल करके ही वह मिस ट्रेसम की सहायता करता है । वह एक आदर्शवादी डाकू है । मिसट्रेसम से कहता है - " तुमसे मैं एक पैसा भी नहीं चाहता । यदि जरूरत हो तो सौ -दो सौ रूपए मैं तुम्हें दे सकता हूं । मैं रूपया वसूल करूंगा उस बदमाश से, जिसने तुम्हारे साथ दगा की है ।" [१]

चूंकि वह डाकू है इसलिये पैसे के प्रति मोह होना स्वाभाविक है पर उसमें सद्प्रवृत्तियाँ भी है जिसकी वजह से वह अपने मन से मिस ट्रेसम को सहायता देने की बात कहता है । यह बात भिन्न है कि उससे उसकी भी स्वार्थपूर्ति होगी ।

मिसट्रेसम जब बदला लेने की बात कहती है तो उसके विचार उसके स्वभाव के द्योतक है -" मिस ट्रेसम यह ठीक है, बदला मैं भी चाहता हूँ, यह भी तो बदला है । उसको घुला-घुला कर डरा डरा कर सुख की नींद न सोने दो । यही बदला है ।" [२]

१- प्रतापनारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० २४३ चतुर्थ खंड

२- प्रतापनारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० २४४ ,, ,,

डिक कैंट के दिल की गहराई नापने के लिये ही ऐसी बात कहता है। वह स्वयं कहता है -" ठीक है, मैंने तुम्हें जाँचना चाहा था कि तुम्हारा मन कैसा है। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।"[1] उसके इन शब्दों से उसकी सज्जनता झलकती है।

जातीय भावना भी उसमें तीव्र है। मिस्टर वर्मा जब रुपये के बल पर कैंट की पुन: हत्या करने का प्रस्ताव रखते हैं तो वह उसे स्वीकार तो कर लेता है पर उसकी हत्या नहीं करता। मिस्टर वर्मा के यह कहने पर कि तुमने अपना काम नहीं किया। मुझसे रुपया लेकर मुझे धोखा दिया तो वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि " थोड़े से धन के लोभ में मैं अपने देश की स्त्री की हत्या नहीं कर सकता।"[2] उसके यह वाक्य उसकी मनुष्यता के द्योतक है अपने इन विचारों द्वारा वह एक आदर्श उपस्थित करता है कि डाकू होने पर भी वह सर्वथा हृदयहीन नहीं है। अपने देश की एक असहाय नारी से उसे सहानुभूति है। आपस की लड़ाई में डिक पिस्तौल से मिस्टर वर्मा की हत्या कर देता है।

उसकी आकृति ही उसके साहसी होने का प्रमाण है जैसे -" लम्बा ६ फुट, आंखे छोटी और नीली, चेहरा साफ और लम्बा, गाल में एक बड़ा सा दाग।

वह छद्मवेशी, मिथ्याभाषी है। अपने असली रूप को छिपाने के लिये वह हमेशा झूठ बोलता है। कभी अपने को अमेरिकन और शिकागो के फर्म का मैनेजर बताता है और अपना नाम कांक, प्रोप्राइटर बाहरन - वर्क्स-शिकागो, कहता है और अपने को बहुत बड़ा आदमी बताता है।"[3]

वह चतुर, मिष्टभाषी एवं वाक्य चातुर्य में प्रवीण है। भ्रमण करते समय डिक का हुलिया बताते समय वह उसके गाल में चिन्ह होने की बात छुपा जाता है जिससे कोई उसके गाल में चिन्ह देखकर संदेह न करें। जब कि वह स्वयं डिक होता है।

'पाप का घड़ा कच्ची मिट्टी सा होता है। भरने के पहले ही टूट

१- प्रताप नारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० २५६ चतुर्थ खंड
२- प्रताप नारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० २६० ,, ,,
३- प्रताप नारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० ३३२ ,, ,,

जाता है ।"[1] जब पुलिस एक एक को गिरफ्तार करने लगती है तब वह अपने प्राण बचाने के लिये लंदन से पेरिस, पेरिस से इटली, और फिर भारत आ जाता है। पूने में डाका डालने के बाद वह मसूरी चला जाता है और वहाँ बीन तालमाँ के नाम से मशहूर हो जाता है। वह रोज बड़ी बड़ी पार्टियाँ करता है जिससे सभी खुश होते है।

मनुष्य, समय चक्र का खिलौना है। समय सब कुछ करा लेता है। कुछ घड़ी और कुछ क्षण ऐसे हुआ करते है, जो अवश्यमेव मनुष्य से ऐसा काम कराते है जो उसके लिये घातक हो जाता है। जिस घड़ी बीन तालमाँ का परिचय मिस्टर जानसन से हुआ था, वह घड़ी उनके लिये घातक थी। कौन जानता था कि मिस्टर जानसन का परिचय बीन तालमाँ के भंडाफोड़ का कारण होगा। तभी तो कहते है मनुष्य भाग्य चक्र का खिलौना है।"[2]

मिस्टर टैगार्ट पुलिस कमिश्नर दावत में आते है और बीनतालमाँ को पहचान जाते है। बातों ही बातों में डिक की चर्चा छेड़ देते है जिसे सुन बीनतालमाँ का पापी हृदय बार बार चौंक उठता है। मिस स्मिथ भी उस दावत में आती है। जब बीनतालमाँ और मिस स्मिथ मिलते है तो उनके दिल का भेद उनके हाव भाव से प्रगट हो जाता है। मिस स्मिथ टैगार्ट को बीन तालमाँ का भेद बताकर उसे गिरफ्तार करवा देती है।

डिक अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये झूठ, छल, कपट धोखा, दुराव, आडम्बर हत्या जैसे शस्त्रों का प्रयोग करता है। डाकू होते हुये भी वह सर्वथा हृदय हीन नहीं है। मिस ट्रूमन की सहायता करने में कटिबद्ध है। डिक सहायक खल के रूप में कथा को गति प्रदान करता है। मिस्टर बर्मा के उग्र एवं हिंसक रूप को प्रकाश में लाने के लिये डिक जैसे डाकू की सृष्टि की गई। डाकू के यथार्थ रूप को चित्रित करने के लिये लेखक ने डिक की कल्पना की। डिक पेशे से खल होने के कारण विचार से और कार्य से भी खल है।

१- प्रताप नारायण श्रीवास्तव-विदा पृ० ३७० पंचम खंड

२- प्रताप नारायण श्रीवास्तव-विदा पृ० ३७५ ,, ,,

~~कामिनी मोहन~~
कामलोलुपता -

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के " अधखिला फूल " उपन्यास का कामिनी मोहन संस्कार से खल है। उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण है उसकी कामान्धता जिसके वशीभूत वह अनेकों पाप करता है। उपन्यास के प्रारम्भ में वासमती से वार्तालाप के दौरान में ही उसकी कामुक प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है -" क्या सब ठीक हो गया ? क्या अबकी बार तुम मोहन माला लेही लोगी ? मैं सच कहता हूँ वासमती। जो मेरा काम हो गया, तो मैं तुमको मोहन माला ही न दूंगा, उसके संग एक सोने का कंठा भी दूँगा।"[१] प्रथम परिचय में यद्यपि यह ज्ञात नहीं होता कि कामिनी मोहन कौन से काम के पूरे होने की खुशी में फूला नहीं समाता और मुँह मांगा इनाम देने को तैयार है पर उसकी उत्सुकता से ही कुछ उसकी दुष्प्रवृत्ति का आभास होने लगता है।

वासमती की बात सुन कर फूला न समाना, हँस हँस कर बोलना किसी गूढ़ किन्तु खोटे उद्देश्य की पूर्ति का संकेत करता है। कामिनी मोहन अपनी इच्छापूर्ति के लिये वासमती नामकी मालिन को रुपये का लालच दे कर देवहूती को अपने बगीचे में नित्य फूल तोड़ने आने के लिये राजी करवा लेता है जिससे उसकी इच्छा सहज ही पूर्ण हो जाये। कामी कामिनी मोहन की रूप लोलुप दृष्टि देवहूती पर लगी रहती है वह उसे जाल में फँसा कर अपने घर ले जाता है और पैंतालीस सौ रुपये के गहने का लालच देकर देवहूती को वश में करना चाहता है पर देवहूती अपनी चतुराई से उस मूर्ख के फन्दे से भाग जाती है। कामुक कामिनी मोहन गहनों से भी हाथ धोता है और इच्छा भी पूरी नहीं होती जिससे खिसिया कर वह और गहरी चाल चलने की सोचता है। उसे अपने धन की भी परवाह नहीं है।"[२]

१- पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० ५६
२- पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १३२

दुष्ट कामिनी मोहन को इस बात का घमंड है कि कोई भी उसकी दुश्मनी करने का साहस नहीं कर सकता इसीलिए बासमती के पूछने पर कि आप उसको खोजवाया था ? वह लापरवाही से जवाब दे देता है -"खोजवा कर क्या करूँगा ? ऐसी बात पर धूल डालना ही अच्छा है, फिर मुझसे बैर करके कोई इस गाँव में ठहर सकता है ।" [१]

धैर्य की सीमा उसमें तभी तक है जब तक मतलब हल नहीं होता । मतलब हल हो जाने के बाद उसका उग्र रूप प्रगट हो जाता है । उसे किसी की परवाह नहीं क्योंकि अपने कुविचार को छिपाने के लिये दूसरों को दोषी ठहराना उसके चरित्र की विशेषता है । इसीलिए कहता है -" न छिपे , काम निकल जाने पर कोई जान कर ही क्या करेगा । मैं देवहूती से ही ऐसी बात कहलाऊँगा जिसको सुन कर सभी हाथ मलते रह जायेंगे ।" [२]

दुराचारी कामिनी मोहन अपनी कामनापूर्ति होते न देख धोखे से बासमती के माध्यम से वह फिर देवहूती को वन में एक खण्डहर में कैद कर लेता है और नाना प्रकार से देवहूती को अपने वश में करने के लिए साम,दाम,दंड,भेद सब नीति का प्रयोग करता है पर देवहूती उसकी बात नहीं मानती । कामी को अपनी कामतृप्ति के सिवाय दुनियाँ में और कुछ अच्छा नहीं लगता यहाँ तक कि उसे दीन दुनियाँ ईश्वर किसी का भी भय नहीं इसलिए वह देवहूती से कहता है -" नरक सरग कहीं कुछ नहीं है । परमेसर भी एक धोखे की टट्टी है तुम्हारा न मिलना ही मेरे लिये नरक है । तुम्हारे मिलने पर मैं इसी देह से सरग में पहुँच जाऊँगा ।" [३]

दुष्ट कामिनी मोहन देवहूती को अपने धन, जन और वैभव का लालच दिखाता है पर देवहूती देवस्वरूप नामक व्यक्ति की सहायता से उस खण्डहर से बच कर निकल जाती है । कामिनी मोहन इसके पहले ही घोड़े से गिर कर बुरी तरह से घायल हो जाता है । दुष्ट कामिनी मोहन घायल अवस्था में भी देवहूती के बारे में सोचता

१- पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १३०

२- पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १४३

३- पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १४७ उन्नीसवीं पंखुड़ी

है। पापी चरित्र की प्रतिक्रिया स्वरूप लेखक उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण करता हुआ कहता है -" कामिनी मोहन की भी आज ठीक यही दशा है, वह खाते पीते सोते जागते भोले भाले मुखड़े का ध्यान करता जहाँ रसीली बड़ी बड़ी आँखें देखता वहीं लट्टू होता, गोरे गोरे हाथों में पतली पतली चूड़ियाँ उसको बावला बनाती, सुरीली कंठ की बोल सुन कर वह अपनी देह तक भूल जाता, गदराया हुआ जोबन उसके कलेजे में पीर उठाता - उसकी इन्हीं बातों ने उसको नई नई अजान इस्तिरियों का रसिया बनाया। कितनी इस्तिरियों का सत उसके हाथों खोया गया, कितनी स्त्रियाँ उसके हाथों मिट्टी में मिली पर उसकी चाह न घटी, आजकल वह देवहूतीपर मर रहा था, बिना देवहूती चारों ओर उसकी आँखों के सामने अंधेरा था। पर काल ने उसकी इन बातों को न सोचा आज वह काल के हाथों पड़ा है, काल को उसकी तनिक पीर नहीं है, आज वह उसको धरती से उठा लेना चाहता है।" १

मृत्यु शैय्या पर पड़ा उसका पापी मन घबड़ा उठता है उसके समस्त पाप एक के बाद एक उसकी आँखों के सम्मुख आने लगते हैं। उसका मन बेचैन हो उठता है। अपने पापों को स्वीकार करता हुआ वह स्वयं ही कहने लगता है -" अपने पापों का मुझको क्या फल मिलेगा, यह सोच कर मेरा रोआं रोआं कलप रहा है, गले में काटे पड़ रहे हैं, जीभ सूख रही है, तालू जल रहा है - मैं राम राम कहूँ भी तो कैसे कहूँ।" २

इसके अतिरिक्त उसका पाप अनेकों रूप धारण कर उसे भयभीत करता है। यमदूत के पंजे से छूटने के लिये वह चिल्ला उठता है। उसका एक एक अंग पीड़ा ग्रस्त हो जाता है।

इसके उपरोक्त कथन से कामिनी मोहन के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। प्रारम्भ में पापी मनुष्य चाहे जितना पाप करे पर अन्त में उसका पाप भीषण रूप धारण करके स्वयं उसे ही खा जाता है। यही हाल कामिनी मोहन का है। संस्कार से ही असत्प्रवृत्ति का होने के कारण उसका अन्तःकरण उसे कभी सद् मार्ग पर आने के के लिये प्रेरित नहीं करता। शठ नायक के सभी लक्षण इसमें दिखाई पड़ते हैं क्योंकि

१- पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १६५-६६
२- पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १७२

देवकूती से यह कहने सेभी बाज नहीं आता कि " भला हो, छल टूट पड़े तुम्हारे संग मरने में भी सुख है ।" १

धृष्टता, निर्लज्जता, चापलूसी , दुराव, छल कपट आदि तो उसके चरित्र की विशेषता है ।क्र

लेखक उसके पाप कर्मों का दंड दिला कर अन्त में पश्चाताप और ग्लानि के माध्यम से उसके जीवन में सुधार ला देते हैं । कामान्ध कामिनी मोहन को अपने कुकर्मों पर पश्चाताप होता है वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपनी पत्नी -फूल-फूल कुँवर और देवकूती के नाम लिख देता है । एक गाँव पं० रामस्वरूप के नाम लिखता है इससे उसकी दया शीलता का पता चलता है । देवकूती के आदर्श चरित्र को उभारने के लिये लेखक ने कामिनी मोहन जैसे खल की सृष्टि की ।

कामिनी मोहन का चारित्रिक विश्लेषण करने पर हम कह सकते हैं कि कथानक की दृष्टि से प्रमुख खल पात्र , चरित्र की दृष्टि से स्थिर, क्षेत्र की दृष्टि से सामाजिक,रूप की दृष्टि से यथार्थवादी , क्रिया की दृष्टि से अपरोक्ष,अपराध की दृष्टि से अभिज्ञ,मान्यता की दृष्टि से अनिश्चित कारण की दृष्टि से एकमुखी । अपनी कामतृष्णा की पूर्ति के लिये वह अनेकों स्त्रियों का जीवन नष्ट कर देता है । वासना पूर्ति ही उसके जीवन का मुख्य ध्येय है ।

कामिनी मोहन की खलता का क्षेत्र समाज का परिवार दोनों है । समाज में रहकर वह देवकूती जैसी अनेक स्त्रियों को अपनी वासना पूर्ति का शिकार बनाता है । दूसरे परिवार में स्त्री के रहते हुये वह कुत्ते की भाँति इधर उधर शिकार की तलाश में घूमता है । धन दौलत का दुरुपयोग करता है । स्त्री की परवाह नहीं करता ।

"वास्तव में मानव स्वभाव सच्चाई का आग्रह रखता है । उसे कृत्रिमता, झूठ और पाप से घुटन होती है मुक्त, सांस लेने के लिये वह मन को विशुद्ध रखना आवश्यक मानता है । उसकी मानसिक विद्रूपता और कलुषता साकार हो उसे डराने

१- पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय - अधखिला फूल पृ० १५८ उन्नीसवीं पंखुड़ी

लगती है । वह अधिक समय आत्मा की अवगणना नहीं कर सकता , पश्चाताप कर अपने अपराधों को स्वीकार करने में उसे आत्मिक शांति और आनन्द मिलते है ।[१]

किशोरीलाल गोस्वामी के " चपला " चार भाग उपन्यास में कमल किशोर " और बटुक प्रसाद " खलपात्र के रूप में आये हैं । इनकी खलता का सर्वप्रमुख कारण है कामुकता । कमल किशोर की अवतरणा ही लेखक उसके खल चरित्र को दिखाने के लिये करता है । सर्वप्रथम मदन से वार्तालाप करते हुये भी (शिकार की ताक में) वह अपने दुष्ट व्यक्तित्व का परिचय दे देता है । श्रीनाथ और कमल किशोर दोनों का सौदामिनी के मकान के नीचे ताक झांक करना उनकी कामुक प्रवृत्ति का प्रतीक है ।

चमेली को धोखे से पानी के बहाने शराब पिला कर बेहोश करना और फिर उसका सतीत्व नष्ट कर देना खलता की चरम सीमा है । अपना मतलब हल करने, झूठ बोलने धोखा देने, बहलाने, फुसलाने, सब्जबाग दिखाने आदि की कला में वह माहिर है । अपनी इच्छा पूर्ति के लिये वह जोर जबरदस्ती भी करता है । मनुष्यता नाम की चीज उसके चरित्र में है ही नहीं ।

बटुक प्रसाद की खलता का व्यवहारिक कारण कामुकता ही है ।'काम के केवल नारि - वाली कहावत उसके चरित्र में चरितार्थ होती है । कामुक बटुक सौदामिनी को भ्रष्ट करने की इच्छा से ही कामिनी, मालती, चपला आदि के घर अपनी झूठी सहानुभूति दिखाने जाता है और अपनी मीठी मीठी बातों से सब पर अपना विश्वास जमा लेता है । सौदामिनी को धोखे से अपने घर ले जाकर उसका सतीत्व नष्ट करना चाहता है पर इच्छा पूरी न होने से वह खिसियाने कुत्ते की तरह उसे बदनाम करना शुरू कर देता है । बटुक का व्यक्तित्व लेखक के शब्दों में स्पष्ट हो जाता है -" ये उम्र में लगभग चालीस पैंतालिस बरस के होंगे, परकिसी गुप्त कारण से पचपन बरस से कम के नहीं जंचते थे । इनका शरीर दुबला पतला, मुंह लम्बा, आँखें बैठी हुई, बाल खिचड़ी दो ती दाँत गायब और रंग सांवला था । इनको भरपूर निरखने से यही जान पड़ता था कि मानो इनके रोम रोम में बदमाशी पाजीपन और कुकर्म की छींट कूट कूट कर भरी हुई हो

१- आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान- डा० ऋषि ज हरती पृ० २८२

नेकनामी या बदनामी भी इनकी इतनी मशहूर थी कि एक राह चलती बुढ़ियाँ भी इनसे अपने आपको तईबचा कर निकल जाती थी, फिर जवान औरतों की तो बात ही न्यारी है।"[1]

गुंडो बदमाशो और पुलिसमैनों से पिटने पर भी ये औरतों के स्नानाघाटो, औरतों के मेले, त्योहारों में जाना नहीं छोड़ते थे इनकी जितनी अधिक पिटाई होती उतना ही ये उन स्थानों पर अधिक जाते थे। ये अभागे अमीरों के लड़को को बहका बहका कर वेश्या के कोठे पर ले जाते थे और उनसे पैसा चूसते थे।" इस प्रकार अपनी गाँठ का बिना एक पैसा खर्च किए वेश्याओं की दलाली करके दो चार रूपया पैदा कर लेना ही इनका व्यवसाय था।" लेखक के इस कथन से प्रतीत होता है कि बटुक के चरित्र में शठनायक के समस्त गुण विद्यमान थे। धृष्टता, बेशर्मी, कांइयापन, बदमाशी या वेश्यागामी जैसे उसका स्वभाव ही था। वह स्वभाव से ही खल है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विदा' उपन्यास का मिस्टर 'देवदत्त वर्मा' सामाजिक खल है। उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण है कामुकता; जिसकी वजह से वह अपनी विवाहित पत्नी केट से छुटकारा पाने के लिये उसे समुन्द्र में ढकेल देते हैं। और निर्भय होकर संसार में विचरण करते हैं। पर इंग्लैंड के मशहूर डाकू जिम मारी विलसन से केट के जिंदा रहने का समाचार मिलता है तो पहले तो उन्हें विश्वास नहीं होता। यहाँ तक कि वह विलसन की गर्दन पकड़ कर क्रोध में कहता है।" चुप बदमाश केट मर गई।[2] उसकी दृष्टि में प्राण की कोई कीमत नहीं। अपने पाप को छिपाने के लिये वह केट को पुनः मार डालने के लिये विलसन को पहले दस,फिर पन्द्रह हजार रूपये तक देने को तैयार हो जाता है। जब उसे विश्वास हो जाता है कि केट जिंदा है और उसके इस नव निर्मित संसार में बाधा पहुँचायेगी तो वह विलसन से कहता है। -" हाँ मैं २५ हजार रूपया दूँगा तुम केट को साफ कर दो"।[3] वह पाशविकता की चरम सीमा तक पहुँच जाता है वह पति के रूप में खल है। उसके च

१- किशोरी लाल गोस्वामी - चपला पृ० ३७

२- प्रतापनारायण श्रीवास्तव -विदा पृ० २३७

३- ,, ,, -विदा पृ० २३६

चरित्र का विश्लेषण करता हुआ लेखक कहता है -" पापी का जीवन निरन्तर भय का जीवन है जहाँ भय है, जहाँ हर समय फाँसी का झूलता हुआ फंदा आँखों के सामने रहता है , विशाल और उच्च दिवारों से घिरी हुई काल कोठरी का भयंकर दृश्य दिखाई पड़ता है, वहाँ शान्ति, और सुख कदापि नहीं रह सकते । भय और सुख में नकुल सर्प का वैर है । पापी सदैव शंकित रहता है । उसका विश्वास अपने प्रिय से प्रिय मनुष्य के ऊपर से उठ जाता है । लेकिन मनुष्य इतना धोखे बाज है, इतना वगुलाभगत है कि अपने मुख पर आनन्द और सुख का भाव धारण करता है, पर उसकी अन्तरात्मा में वे बिच्छू की भाँति डंक मारा करते है ।"[1] ठीक यही हालत मिस्टर वर्मा की थी । केट के जिंदा रहने का समाचार पा वह भयभीत रहने लगते है,सबपर से उनका विश्वास उठ जाता है । उन्हें यह डर बना रहता है कि कहीं डिक हमसे छल न करे । अपनी शंका का समाधान करने के लिये पुरी तक जाते है,अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये बनारसी गुंडों को भी साथ ले जाते हैं ।

उसकी दुष्प्रवृत्ति का परिचय समय समय पर उसके विचारों और व्यवहारों से मिलता रहता है । माधव बाबू की पुत्री कुमुदनी पर आसक्त हो उसे वश में करने का असफल प्रयत्न करते है पर कुमुदनी की ओर से उपेक्षित और अपमानित होने पर उनका पापी मन स्वयं उनके वास्तविक रूप को प्रगट कर देता है - गर्विणी । तेरा गर्व मैं अवश्य चूर करूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी । उफ्। यह अपमान । असह्य है सबसे पहले मैं तुम्हें वशीभूत करूँगा और फिर तुम्हें उसी तरह ठुकरा दूँगा , जिस प्रकार पुराना जूता ठुकरा दिया जाता है ।"[2]

नारी की तरफ से उसका विचार बहुत ही नीच है ।ओंठो को विचित्र तरह से मरोड़ कर बात कहना उसकी दुष्प्रवृत्ति का द्योतक है । दुष्ट,नीच, असहनशील, निर्दय एवं हत्यारा मिस्टर केशव वर्मा इलाहाबाद में ज्वाइंट मजिस्ट्रेट

१- प्रतापनारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० २८६ चतुर्थ खंड
२- प्रतापनारायण श्रीवास्तव - विदा पृ० १७७ तृतीय खंड

के पद में रहते हुये भी छलना करता है । अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह धोखा, दुराव, झूठ, हत्या आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है ।

डा० त्रिभुवनसिंह का विचार है" मिस्टर वर्मा युवती वधिक, मजबूर मक्कार और विषरस भरे कनक घट है । जान ठक को पंद्रह हजार रूपया देकर वे केट ट्रैसम की कत्ल-हत्या कराना चाहते है पर वह पाप उन्हीं को ले डूबता है । उपन्यासकार ने ऐसे अद्यतन (Up-to-date) बगुला भक्तों का खूब भंडाफोड़ किया है ।" १

लेखक ने मिस्टर वर्मा को यथार्थवाद की दृष्टि से रखा है । अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिये कामुक मिस्टर वर्मा केट को समुन्द्र में ढकेल कर कुमुदनी से पुनः प्रेमाभिनय करते है चपला से तो शादी तक करने को तैयार हो जाते है । अपनी कमजोरी के प्रति सचेत रहते है, कभी भी कोई ऐसा काम नहीं करता जिससे उसके मन में छिपे पाप का पता सरलता से लग जाये । मिस्टर वर्मा का प्रेम कामुकता जन्य, वासना से सम-जनक जन्य एवं विनाशकारी है । उसके समस्तकार्य अनैतिक है ।

लेखक का विचार है" संसार असीम और विस्तृत कार्यक्षेत्र है । समस्त चराचर इसके खिलाड़ी है , पर यहाँ कौन सफल होता है ? बहुत कम । जीवन के विश्वव्यापी संग्राम सबके हृदय स्थल में घोर रूप धारण करते है, पर कौन विजयी होकर अपना मस्तक ऊँचा करता है ? सभी के जीवन में, सभी के चरित्र में, एक न एक दोष, एक न एक न्यूनता होती है । यदि मनुष्य में न्यूनता न हो तो वह देवता है - नहीं ईश्वर है ।" १

प्रत्येक मनुष्य में कमजोरी होती है जिसके कारण वह अनैतिक कार्य करता है । मिस्टर वर्मा के चरित्र में भी हमें इस प्रकार की कमजोरी दृष्टिगत होती है । स्वार्थ उन्हें अंधाधुंध पाप करने के लिये प्रोत्साहित करता है ।

१- डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद- पृ०४८६ चतुर्थसंस्करण

वृंदावन लाल वर्मा के " लगन " उपन्यास का खलपात्र " पन्नालाल " है । उसकी खलता का प्रमुख कारण कामुकता का अशिक्षा थी । पन्नालाल रंग रूप में सुन्दर न होने पर भी स्वच्छता प्रिय था । बादल की लड़की रामा और शिबू के लड़के देवीसिंह के पारस्परिक प्रेम को जान कर भी वह देवीसिंह का अपमान करने की इच्छा से उसे अपने यहाँ नौकरी करने के लिये बुलाता है ।

आँख का कोना दबा कर मुस्कराना , जेब से आरसी निकाल कर मुँह देखना , साफा को जरा तिरछा करना आदि उसकी खलता, आंतरिक व्यग्रता एवं लम्पटता का द्योतक है।बादल जू के यहाँ बारात में जाते समय भी उसकी व्यग्रता प्रगट होती है । बादल जू के यहाँ देर से पहुँचने पर वह जानबूझ कर कह देता है " अतिकाल हो जायेगा तो यहीं सो जाऊँगा घर तो है ' कहते ही किसी गुप्त प्रेरणा से किसी नवीन शीघ्र घटित होने वाले आनन्दमय अनुभव की अभिलाषा से उसका हृदय फड़क गया ।" १

उपरोक्त कथन से उसके कुत्सित विचार का आभास मिलता है । वास्तव में वह बादल जू की लड़की रामा को देखने वा उससे एकान्त में मिलने की इच्छा से ही बादल जू के बार बार जाने का आग्रह करने पर भी वह रात रुकने की योजना बनाता है । बेतासी के कहने पर कि आते जाते रहा करो स्नेह बढ़ता है वह तुरन्त उन लोगों के साथ उठने बैठने का संगत से मर्दानों का मैल धुल जाने जैसी असंगत और चापलूसी पूर्ण बात कहता है ।

" आज नहीं तो कल सही, चेष्टा तो आज ही करूँगा " २ इन शब्दों से उसकी कामुक प्रवृत्ति का आभास मिलता है । रामा को प्राप्त करने के लिये वह चोरों की तरह आधी रात को उसके पास जाता है -अब ज्यादा शरम की जरूरत नहीं है । तुम्हारे लिये बहुत दिनों से मेरा कलेजा खाक हुआ जा रहा है" जैसे वाक्यों का प्रयोग करता है जिसमें उसकी कामुकता, धृष्टता, दुष्टता एवं खलता छिपी है ।

१- वृंदावन लाल वर्मा- लगन पृ० ५८ पृ० सं० ५८ प्र०सं० १९८५

२- वृंदावन लाल वर्मा- लगन पृ० ८२

देवी सिंह के साथ लड़ाई होने पर रामा को खोजने से बढ़कर रंज उसे अपने कपड़ों के खराब होने या देह में हो रही पीड़ा का अधिक था क्योंकि उसका प्रेम वासना जन्य था ।

लेखक यह दिखाना चाहता है कि यथार्थ में खल को हमेशा अपने स्वार्थ या हानि लाभ की अधिक चिंता रहती है । दूसरे के हानि लाभ की वह जरा भी परवाह नहीं करता । यही कारण था कि पन्नालाल को रामा के बजाय अपने कपड़ों या देह में हो रही पीड़ा का ही अधिक ख्याल रहता है । पन्नालाल स्वभाव से ही खल है । कथानक की दृष्टि से वह प्रमुख खल पात्र है उसका चरित्र स्थिर है उसके जीवन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता वह शुरू से अन्त तक खलता करता है । उसकी खलता अपरोक्ष रूप से प्रगट होती है । अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है । वह जानबूझ कर और योजना बनाकर खलता करता है । मूढ़ बुद्धि का होने के कारण परिणाम की चिन्ता नहीं करता । मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित खल है । उपन्यास में उसका खल का रूप माना हुआ नहीं है उसका व्यवहार ही उसे खल सिद्ध करता है । कारण की दृष्टि से वह एक मुखी खल है ।

अनूप लाल मंडल के 'निर्वासिता' उपन्यास का 'श्यामचरण' भी खल है उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण है कामान्धता, जिसके कारण वह अन्नपूर्णा जैसी विधवा के साथ छल कर उसका सतीत्व नष्ट कर देता है उसके चरित्र के बारे में लेखक का कथन है कि "विषय वासनाओं में उसके अन्तर्वेदनाओं की कौन कहे, वात्सल्य मैत्री पर भी आवरण डाल रखा था फिर ज्ञान विवेक का प्रकाश इस अभेद्य मेघ राशि से उसके हृदय पर क्यों ही कैसा सकता था ?" [१]

श्यामाचरण कामी, इन्द्रियलोलुप, लालची पर, स्त्री पर कुदृष्टि रखने वाला था। उसकी स्थिति उस कुत्ते के समान है जो घर अकेला देखकर हाड़ी में मुँह डाल देता है वह हर समय अन्नपूर्णा से एकान्त वास वार्तालाप के लिये व्यग्र

१- अनूप लाल मंडल - निर्वासिता - पृ० १०० तेरहवां परिच्छेद

रहता है क्योंकि ऐसे ही समय में उसकी काम वासना तृप्त हो सकती थी अन्यथा भेद खुल जाने का भय था अन्नपूर्णा के सौन्दर्य तृप्ति की तीव्र लालसा ही उसे यहाँ खींच लाई ।" [२]

कामी, चुलबुले स्वभाव का श्यामाचरण कितने ही घरों का सत्यानाश कर कई कुचिड़ियाँ फँसाने के लिये अन्नपूर्णा के घर आ जाता है ।

वाक्यपटुता, चापलूसी, दुराव आदि की क्रिया में प्रवीण है । इसलिए अन्नपूर्णा की प्रशंसा करने, तारा के अस्वस्थ्य रहने और तारा को लाना एक बोझ ही होता आदि कहने से बाज नहीं आता जब कि वह तारा को जानबूझ कर नहीं लाता ।

प्रमदा के शब्दों में श्यामा का चरित्र और भी स्पष्ट हो जाता है- "मैं इस नरक के कीड़े को, गलीज के पुतले को, अपनी छाया का भी स्पर्श नहीं करा सकती । मैं उसके मन पर थूकती हूँ ।" [३]

श्यामाचरण व्यवहार कुशल तो इतना था कि कोई भी उसके कार्यों द्वारा मन के पाप को नहीं देख पाता था। श्यामाचरण का चरित्र द्वंद्व प्रधान है । अन्नपूर्णा का सतीत्व नष्ट कर उसके मन में कु० और सु० विचारों का द्वंद्व चलता है । कभी तो वह अन्नपूर्णा को निस्सहाय छोड़ कर भाग जाने की सोचता है, कभी उसकी दयनीय दशा पर तरस खा कर उसे अपनाने की बात सोचता है ।

पाप करके भी वह साधु बनने का ढोंग रचता है । वह अन्नपूर्णा को गर्भपात कराने की सलाह देता है पर जब वह राजी नहीं होती तो पापी उसे निस्सहाय, एकाकी छोड़ कर भाग जाता है ।

~~१- अनूप लाल मंडल - निर्वासिता पृ० १०० तेरहवां परिच्छेद~~

२- अनूप लाल मंडल - निर्वासिता पृ० १०२ तेरहवाँ परिच्छेद

३- अनूप लाल मंडल - निर्वासिता पृ० १५३ सत्रहवाँ परिच्छेद

दुर्व्यसनी श्यामाचरण की कामतृष्णा दिनों दिन बढ़ती जाती थी जिससे वह अन्य का जीवन बरबाद करने की सोचने लगता है । व्यभिचार में इतना लिप्त हो जाता है कि उसे अपने कारोबार की सुध नहीं रहती । जमींदारी नीलाम हो जाती है, कर्ज लेना शुरू हो जाता है । यहाँ तक कि वेश्या के घर रहने लगता है । वेश्या के साथ दुर्व्यवहार करने पर पकड़ा जाता है । लेखक का विचार है -'पापियों की यही दुर्दशा हुआ करती है । पाप का फल एक न एक दिन भोगना ही पड़ता है'।

जेल से छूटने के बाद वह कौशल किशोर के आश्रम में आता है। उसकी आकृति बहुत भयावह लगती है यहीं पर अन्नपूर्णा या तारा से मुलाकात होती है उसे अपने विगत जीवन पर ग्लानि होती है । लेखक ने यथार्थवाद की दृष्टि से श्यामाचरण जैसे खल की रचना की है । धन सब ऐबों, दुर्गुणों की खान है । धन की प्रचुरता ही श्यामाचरण को दुर्व्यसनी बना देती है ।

कृष्णगोपाल , श्यामलाल, कुंजनाथ निर्भयनाथ, मदनमोहन जैसे वेश्यागामी पुरुषों के पापपूर्ण व्यवहार और उसके व्यक्तिगत तथा सामाजिक दुष्परिणामों को ही दृष्टि में रखकर गांधी जी ने कहा था - पुरुष जाति ने अपने को जिन जिन पापों के लिये उत्तरदायी बनाया है उनमें और कोई भी पाप इतना नीचे गिराने वाला, दिल दहलाने वाला और बर्बर नहीं है जितना उसके द्वारा स्त्री जाति का दुरुपयोग है ।" [1]

भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'प्रेम निर्वाह' उपन्यास का "राधिकाकान्त" खल के रूप में आया है । उसकी खलता का कारण भी कामुकता ही है । वह रसिक विनोदी या चंचल चित्त का है । अपने मित्र रामशरण की बहन मल्लिका पर कुदृष्टि रखता है ।

१- महात्मा गांधी - यंग इंडिया १५ सितम्बर १९२१ स्त्रियों के विविध प्रश्नों का विवेचन और समाधान पृ० २७६

उसकी रसिक प्रवृत्ति का परिचय इन शब्दों से मिल जाता है " पर मेरे ओंठ तो जानते ही है - मधुका बहन हार हैं ।"[१]

अन्य पात्रों के द्वारा भी राधिकाकान्त के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है -" और वह तो कह रहा है कि राधिका कान्त विवेकशील बनने का पाखण्ड भले ही रचे, पर है वह पहले दर्जे का नीच और कमीना । वह विवाहित होकर भी दूसरों की बहू बेटियों की ओर लपकता है । और अपने इस जघन्य कार्य में वह दार्शनिकता का पुट देता है । क्या वह मनुष्य है ? नहीं वह तो कुत्तों से भी बदतर है ।"[२]

मल्लिका को देखकर राधाकान्त की कामुकता पैशाचिकता का रूप धारण कर लेती है । इसलिये कहा गया है -" राधिकाकान्त के मन के भीतर एक पिशाच सा बैठ गया था । उसकी पशु वृत्तियाँ पूर्ण रूप से सजग हो उठी थी ।"[३]

कामुक, इंद्रियलोलुप, स्वार्थी राधिकाकान्त भी अन्त में सुधर जाता है । मल्लिका की शादी उसके छोटे भाई रमनी कान्त से हो जाती है । स्त्री उमा के मर जाने से वह अपनी पुत्री तारा को मल्लिका को देकर घर से निकल जाता है ।

भगवती प्रसाद बाजपेयी के 'प्रेमपथ' का खलपात्र नीलकंठ, त्यागमयी का " नाहरसिंह" और पतिता की साधना का " कृष्ण गोपाल' खल है । कृष्णगोपाल वेश्या भक्त होने के कारण अपने बच्चों और स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार करता है, उन्हें मारता है ।

भगवती प्रसाद बाजपेयी के 'लालिमा' उपन्यास का त्रिवेणी सामाजिक खल है । कामुक त्रिवेणी भुवन की संध्या से प्रेम करता हुआ जान कर ही उसके प्रतिद्वंद्वी

१- भगवती प्रसाद बाजपेयी - प्रेम निर्वाह पृ० १६

२- भगवती प्रसाद बाजपेयी - प्रेम निर्वाह पृ० १६

३- भगवती प्रसाद बाजपेयी - प्रेम निर्वाह पृ० ४१

स्वरूप ललता करता है । जान पड़ता है, द्वेष की ही अग्नि आज उसके भीतर सुलग रही थी । बंगले से बाहर आकर उसने संतोष की वैसी ही सांस ली, जैसी किसी समय चील किसी के भरे हुये जलेबियों के थाल पर झपट्टा मार कर लिया करती है । अपनी इस पशु प्रवृत्ति के प्रथम उपयोग पर त्रिवेणी आज वैसा ही प्रसन्न है जैसा किसी महिषी के थन को काटकर विषधर प्रसन्न होता है ।"[1] अपनी दुष्प्रवृत्ति को छिपाने के लिये वह झूठ भी बोलता है ।

पार्टी में जाने के लिये समय से जल्दी तैयार होना, आवश्यकता से अधिक अपने को सजा सवाँर कर सुन्दर दिखाई पड़ने की प्रवृत्ति उसकी आन्तरिक व्याकुलता को प्रगट करती है । -" पार्टी का समय शाम के सात बजे से है किन्तु त्रिवेणी ३ बजे से ही बेचैन है । क्राँप का रेजर निकाल कर उसने क्लीन शेव किया, गोल्डेन ग्लोरी सोप से स्नान किया, रेट फिन्सन के स्वीट पी से केशों में स्वर्गीय सुगन्धि उत्पन्न की, फिर पंपिया की शीशी लेकर वस्त्रों का चुनाव करने बैठा ।" इसके अतिरिक्त सस्ते सीरीज की किताब पढ़ना भी उसकी निम्न प्रवृत्ति का द्योतक है ।

संध्या से शादी हो जाने के बाद उसकी सहेली कौशल्या के रूप सौन्दर्य को देखकर वह उसकी ओर आकृष्ट होता है । विलासी त्रिवेणी को कौशल्या के सौन्दर्य के आगे सन्ध्या एकदम नगण्य, तुच्छ और कुरूप दिखाई पड़ती है । संध्या से शादी कर कौशल्या को अपनाने की लालसा एक पैशाचिक हँसी हँस कर प्रगट होता है । उसके यह शब्द " तुम्हारे लिये ही मैंने संध्या से शादी की है "[2], भीरुता की हद कर देते है । उसका प्रेम सच्चा न होकर वासना जन्य है । रूप का लोभी त्रिवेणी एक पत्नी से संतुष्ट न होकर अनेक को प्राप्त करने का अनाधिकार प्रयत्न करता है ।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि खल की मनोवृत्ति बहुत चंचल होती है । वासना की तृप्ति के लिये वह बुरा से बुरा मार्ग अपना लेता है । लज्जा, अपमान, तिरस्कार,

---

१- भगवती प्रसाद वाजपेयी - लालिमा पृ० ५२

२- भगवती प्रसाद वाजपेयी - लालिमा पृ० १५८

घृणा, प्रताड़ना, आदि की परवाह न कर वह खूब मनमानी करता है।

कुसुम चरण जैन के "मंदिर दीप" उपन्यास का पात्र "नागर दास" संस्कार से खल है। उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण चरित्र हीनता या कामुकता है रानी के भीतर दयाधाम और प्रेमी जनक दोनों को रानी के प्रति भड़काता है उसे बदचलन कहता है जैसे "मुझे आप दोनों साहबों को यह इत्तला देना है कि मिस रानी एक जलील और फाहिशा लड़की है। और हरगिज इस काबिल नहीं कि कोई भला आदमी उससे मुहब्बत करें।"[१] रानी से भी इन दोनों की बुराई कर उसका सर्वनाश कर देता है। दोनों में वैमनस्य उत्पन्न कर वह रानी पर अपना जाल फैलाता है।

रानी की सहेली रोज को शराब पिला कर उसे अपनी उद्दाम काम वासना का शिकार बनाता है और उसका जीवन बरबाद कर देता है। अपनी प्रशंसा स्वयं करता हुआ कहता है -" लेकिन आप सच मानें मेरा यकीन है कि बहुत से ऐसे लोग है जो मेरी पैर की धूल के बराबर नहीं जिनका चाल चलन निहायत गंदा है, मगर अपने पाखण्ड की वजह से वैसे उनके माथे पर ताज सेहरा बंधा हुआ है मिसाल के लिये -----।'[२] घमंडी नागरदास चापलूसी करने में सिद्ध हस्त है इसी प्रकार की झूठी सच्ची बातें कह कर वह रानी को अपने जाल में फँसा लेता है।

नागरदास झूठमूठ सारे कालेज में खबर कर देता है कि जनक ने रोज से शादी कर ली जबकि वास्तविकता यह नहीं रहती। एक दिन जनक और रोज गाँव चले जाते हैं। नागरदास रानी को भड़काता है और अपनी मीठी मीठी बातों में फँसा कर रानी को भगा ले जाता है। हरसमय उसकी पाशविक वृत्ति प्रगट होती रहती है पर वह उसे कुशलतापूर्वक दबा देता है जिससे कोई उसके मन में छिपे पाप को समझ न पाये। अपनी व्यस्ता स्त्री के यह कहने पर कि उसका पिता या दयाधाम जिंदा है तुम्हें खोज रहे हैं वह उसकी हत्या कर देता है और रानी को कैद कर लेता है। जब जनक, दयाधाम तथा पिता विवश भाव उसे लेने आते हैं. तब वह रानी को जलील करता है और अन्त

१- कुसुम चरण जैन - मंदिर दीप पृ० ५३
२- कुसुम चरण जैन - मंदिर दीप पृ० ७८

में स्वयं गोलीमार कर मर जाता है।

उसका चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक खलता मय है। संस्कार से ही खल होने के कारण सद् प्रवृत्ति एक क्षण के लिये उसके मन में नहीं उत्पन्न होती। पाप करके उसे हमेशा छिपाने की कोशिश करता है उसे किसी का परवाह नहीं। आँख मार कर हँसना, सवाँरना, सिगार पीना, औठ मोड़ कर सीटी बजाना, अपने को सबसे योग्य समझना आदि उसकी खल प्रवृत्ति का द्योतक है। वह विलासी प्रवृत्ति का व्यक्ति है।[1] शराबी वेश्यागामी नागरदास औरत और दो बच्चों के होने पर भी अपने को कुँवारा बताता है। स्कूल में वह पढ़ने की नियत से नहीं जाता वरन् लड़कियों से छेड़छाड़ करने उन्हें पथभ्रष्ट करके जबरदस्ती अपनाने की इच्छा से ही वह अट्ठतीस वर्ष की आयु में भी स्कूल जाता है। वह जानबूझ कर हर साल फेल होता है। शराब के नशे में वह स्वयं अपनी खल प्रवृत्ति का परिचय दे देता है जैसे - "छः साल मुझे इंटर का नाला लाँघने में लगे और इससे ज्यादे बी०ए० में बस उसके बाद से अब तक एम०ए० की सीढ़ियाँ गिन रहा हूँ और जब तक बनेगा गिनता जाऊँगा। मुझे यह जिन्दगी बहुत प्यारी लगती है प्रोफेसर और मैं, अपने इसकाम को छोड़ूँगा नहीं।"[2]

लेखक ने यथार्थवाद की दृष्टि से नागरदास जैसे खल की रचना की है जो अपनीदुष्ट प्रवृत्ति के द्वारा दो सज्जन पुरुष के मन में द्वेष उत्पन्न कर देता है और रानी को भड़का कर झूठे सब्ज बाग दिखा कर, छलपूर्वक भगा ले जाता है। पत्नी और बच्चों के रहते हुये भी वह अन्य लड़कियों को अपने झूठे प्रेमजाल में फँसाता है। निर्दयी तो इतना अधिक है पत्नी की हत्या करने में भी उसका पापी मन भयभीत नहीं होता। लेखक जैन ने खल के उस रूप को दिखाया है जो खलता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है।

१- कृष्णभ चरण जैन - "घिसके हुये फ्रेम वाली ऐनक, लाल कॉलर और पठानी वाली बड़ी कुल्ला पगड़ी पहने लेख और इस में बसा, यह नौजवान हमेशा किताबों का पूरा बोझ लेकर कालेज जाता है।" ---- मंदिर दीप पृ० ६२

२- कृष्णभ चरण जैन- मंदिर दीप पृ० १०८ प्र०सं०१९६१-१९६२

अपनी इच्छा पूर्ति के लिये वह कोई भी जघन्य से जघन्य पाप कर सकता है । अपनी वासना पूर्ति के लिये वह झूठ, छल कपट , दुराव, धोखा, चापलूसी, आडम्बर और हत्या जैसे शस्त्रों का प्रयोग करता है ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'अप्सरा' उपन्यास का 'कुँवर प्रताप सिंह' खल पात्र है । उसकी खलता का कारण है अत्यधिक सम्पन्नता और चरित्रहीनता जिसके कारण वह कामुक , दुर्व्यसनी , शराबी वैश्यागामी हो जाता है । कुंवर साहब की आकृति से ही उनके चरित्र का परिचय मिल जाता है । जैसे - " कुँवरसाहब दुबले पतले २१ वर्ष की उम्र में ही सूखी डाल की तरह हांथ पैर , मुंह सीप की तरह पतला हो गया था । आँखों के लाल डोरे अत्यधिक अत्याचार का परिचय दे रहे थे ।"[१]

कुँवर साहब के सभी मित्र व्यसनी थे इसलिये कुँवर साहब के राज्यतिलक में आई हुई कनक को देखकर वे भूखे भेड़िये की तरह तृष्णापूर्ण नेत्रों से उसे देखते है । कुंवर साहब के अत्याचार से राज्य के सभी व्यक्ति दु:खी थे थे । तृष्णा ने उनकी आकृति को विकृत कर दिया था । दुष्ट कुँवर साहब अकेली कनक को अपने बहुत से दुष्ट रसिक व्यसनी मित्रों के साथ शैतानी आँखों से देखता है । माँ से अलग कर देता है । जब वह क्रूर उद्दंड चरित्रहीन मित्रों सहित कनक को अपनी कामवासना का शिकार बनाना चाहता है तभी चंदन नामक व्यक्ति की सहायता से वह उस पापी के चंगुल से निकल जाती है । इच्छा पूरी न होने से वह बहुत क्रोधित होता है और सारे शहर में उसे पकड़वाने के लिये आदमी छोड़ देता है ।

राज घराने के व्यक्तियों की स्वाभाविक एवं यथार्थ स्थिति से परिचित कराने के लिये ही लेखक ने कुँवर प्रताप सिंह जैसे खल की रचना की है । बहुधा देखा जाता है कि राजघराने के व्यक्ति धन की प्रचुरता के कारण शराबी, कामुक, व्यसनी एवं दुराचारी हो जाते है, कुँवर साहब में ये सभी बुराइयाँ स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है । अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है, मान्यता की दृष्टि से अनिश्चित खल है , कारण की

१- निराला - अप्सरा पृ० १२६ आठवां संस्करण

दृष्टिसे बहुमुखी । अपनी कामुक प्रवृत्ति के कारण वह अनेकों का जीवन बर्बाद कर देते हैं ।

जयशंकर प्रसाद के " तितली " उपन्यास का 'श्यामलाल' खल पात्र है उसकी खलता का कारण है कामलोलुपता । अत्यधिक धन सम्पन्नता ही उसे कामुक बना देती है जिससे वह शराबी, परस्त्रीगामी, अहमी आदि अनेकों ऐसे दुर्गुणों का शिकार हो जाता है औ उसे खल बना देते हैं । श्यामलाल अपनी पत्नी व बच्चों की परवाह भी नहीं करता । बेशर्म कामुक, श्यामलाल की खलता और अधिक स्पष्ट हो जाती है जब वह कुमारी मलिया पर बलात्कार करने से बाज नहीं आते । अपनी स्त्री माधुरी की सहेली मिस अनवरी को तो कलकत्ते में तुम्हारी डाक्टरी खूब चमकेगी का लालच देकर भगा ले जाते हैं ; नीचता की हद कर देता है । पत्नी के रहते हुये मुसलमान लड़की से स्नेह का स्वाँग रचना उसकी निर्लज्ज प्रवृत्ति का द्योतक है । वेश्या तो वह पहले सिरे का है उसे अपनी इज्जत का ख्याल नहीं है इसीलिये वह कहता है - मैं भण्डाफोड़ होने से नहीं डरता । अनवरी ! मैंने अपने जीवन में तुम्हीं को तो ऐसा पाया है, जिसमें मेरे मन की सब बातें मिलती हैं । मैं किसी की परवाह नहीं करता, मैं किसी का दिया हुआ नहीं खाता, जो डरता रहूं । [१]

मिथ्या अहं के कारण वह अपने से अधिक योग्य किसी को समझता ही नहीं । जब उसका पहलवान मधुबन द्वारा पिट जाता है तो उसे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ता है । उसका चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक खलता मय है । प्रसाद ने खलपात्रों के साथ सहानुभूति, पश्चाताप एवं आत्मग्लानि के द्वारा सुधार आदि के सिद्धान्तों को नहीं अपनाया है । धन सम्पन्नता भी मनुष्य को किस तरह खल बना देती है श्यामलाल का चरित्र इसका प्रमाण है ।

सुखदेव चौबे भी धूर्त और कामुक है । अपनी विधवा साली राजकुमारी की क्षुब्ध कामवासना को जगाने और पथभ्रष्ट करने में वह कोई कसर नहीं रखता ।

१- जयशंकर प्रसाद - तितली पृ० १४६

कृष्णचरण जैन कुमार के 'तपोभूमि' उपन्यास का खल पात्र 'सनकवत सुन्दरलाल ३५ वर्ष के व्यवहार -दक्ष पुरुष थे। सुन्दर स्वस्थ, गम्भीर जिले हुये मितभाषी, कमाल के सहिष्णु, सभी कुई बात के मुँह से निकालने वाले, पुरानी परिपाटियों के शिष्टाचार पक्षपाती। बात करते, उठते बैठते, हँसते और अभिवादन करते, सदा अपना ख्याल रखते थे।"[1] उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओं से उनकी खल प्रवृत्ति का परिचय नहीं मिलता फिर भी उनके क्रिया कलाप उनकी कामुक प्रवृत्ति के द्योतक है। दुष्ट सुन्दर लाल अपने मृत भाई की विधवा पत्नी से अवैध संबंध स्थापित कर उसे अपनी कामुकता का शिकार बनाते हैं। वह स्त्रियों की चपल कटाक्ष की प्रशंसा करते थे। बीमार धारिणी की सेवा शुश्रूषा के पीछे भी उनका काम भाव ही निहित था। धारिणी को खींच कर आलिंगनबद्ध करने में उसकी धृष्टता प्रगट होती है।

चापलूस सुन्दरलाल धारिणी के पूछने पर कि क्या मैं कलमुँही हूँ वह लापरवाही से जवाब दे देता है कि "मुख तो नहीं दीखता। तुम्हारा तो बड़ा गोरा मुख है। ------ तुम चांद से भी ज्यादे गोरी हो।"[2] पापी सुन्दर लाल धरिणी का जीवन नष्ट कर उसे व्यंग्यबाणों से बेधता रहता है। सुन्दर लाल की राक्षसी हँसी स्थान स्थान पर उसके कुटिल मनोभावों का द्योतक है। वेश्या वह प्रथम श्रेणी का था, धरिणी को दुःखी देखकर भी वह सुख का अनुभव करता है।

नीच हत्यारा सुन्दरलाल धरिणी के साथ अनुचित संबंध स्थापित कर अपने को पाप से मुक्त करने के लिये भ्रूण-हत्या जैसा पाप करने की सलाह देता है जब धरिणी उसके लिये तैयार नहीं होती तो वह डा० को दो हजार रुपये का लालच देकर अपना काम पूरा करने का विचार प्रगट करता है। कामी सुन्दर लाल अपने को समाज में सभ्य कहलाने और धरिणी के साथ मनमाना पापाचरण करने के विचार से ही भ्रूणहत्या की बात कहता है। डाक्टर जब उसे घर से बाहर निकाल देने की बात कहता है तो उसका पापी मन कह उठता है - मैं उसे अलग्या कर देना नहीं चाहता। मैंने अभी पाया ही क्या

~~१- जैनेन्द्र कुमार~~ ऋषभचरण जैन - तपोभूमि पृ० १६ (१९६१)

२- ~~जैनेन्द्र कुमार~~ " " - तपोभूमि पृ० १२३

है - यही गुनाह बे-लज्जत । पर यहाँ तो गुनाह भी न हो पाया, कि बे-लज्जती शुरू हो गई ।" [1]

वेहया सुन्दरलाल अपने स्वार्थ के लिये धरिणी का खुशामद करता है उसकी सभी बातों को चुपचाप सुन लेता है । पर जब धरिणी सुन्दरलाल के दवा पीने के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती तो वह अपना पाप निर्दोष डाक्टर पर लाद कर अपने को पापमुक्त करने के विचार से ही कहता है " । तुम जानते हो, मैं जानता हूँ - मैं दोषी हूँ । पर दुनिया नहीं जानती । वह जानना भी नहीं चाहती । मैं दोषी हूँ । ख्वामखाह ? तुम दोषी हो - सुनते हो , सबूत तुम्हें दोषी बनाकर छोड़ेगा । (चिट्ठी दिखाकर) देखते हो, यह क्या है ? मेरा लिखा- नामा है तुम्हारे खिलाफ चार्ज शीट (Chargesheet) है । और देखते हो, यह किसके पास है ? सुन्दरलाल के । बोलो - रुपये दे सकते हो , और मेरा काम कर देने की हामी भरते हो ? - तो मैं तुम्हें यह लौटा सकता हूँ । वर्ना तो , तुम जानते हो कि यह कितने काम की चीज है ।" [2]

उसके इस कथन से उसकी कुटिलता का पता चलता है । दुष्ट सुन्दर लाल धरिणी के किसी प्रकार दबासाने पर राजी न होने से वह अपने को सदाचारी सिद्ध करने की फ़ौक मे उसे मैके भेज देता है और उस पर दुराचारिणी होने का आरोप लगाता है । उसे सदा यह भय लगा रहता है कि कहीं धरिणी मेरा नाम प्रगट न कर दे इसलिये वह उसके पिता से कहता है -" इतना कुरेद - कुरेद उसे आप न पूछे । उसे इससे दुःख होता है ।" [3]

सुन्दर लाल के पाप के कारण ही धरिणी को समाज की क्रूर दृष्टि से बचने के लिये गंगा की गोद मे जाना पड़ता है वहाँ से बच कर उसे वेश्या वृत्ति अपनानी पड़ती है । सुन्दरलाल की कामवासना उसके जीवन का पतन कर देती है।

ऋषभ-चरण जैन

१- जैनेन्द्र - तपोभूमि पृ० १३३

२- जैनेन्द्र - तपोभूमि पृ० १५१

३- जैनेन्द्र - तपोभूमि पृ० ३७

कामलोलुपता :

हम देखते है कि आलोच्य उपन्यासों में कामुकता से प्रेरित पाप करने वाले खलपात्रों की संख्या प्रचुर है वस्तुतः यहाँ पर लेखकों का एक समाज शास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी उद्घटित होता है । हिन्दू समाज में कुछ ऐसी प्रथाये और व्यवस्थाये भी रही है जो इस प्रकार के दुष्कर्मों को प्रेरणा देती है । इसमें सबसे ऊपर तो नाम वेश्यावृत्ति का है जिसके उन्मूलन के लिये इधर बार बार प्रयास में है और गाँधी जी ने भी इस दिशा में सुधार की एक प्रेरणा दी थी । इसके अतिरिक्त बहुविवाह प्रथा, समाज में स्त्री की नगण्यता, स्त्री को काममूला समझना और इसके अतिरिक्त मध्यकालीन विलासी वातावरण की परम्परा के अवशेष, इन सबने मिल कर जो कुछ भारतीय समाज में छोड़ा था और पुरुष स्त्री संबंधों को काम के धरातल पर निबद्ध किया था उसकी अवतारणा उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में की । ऐसा करते हुये निश्चय ही उनका उद्देश्य एक सुधारवादी दृष्टि ही था । व्यक्ति और समाज के पतन की ओर लोगों के दृष्टि को आकर्षित करना था ।

प्रतिद्वन्द्विता और स्पर्धा :

देवकी नन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास का खलपात्र क्रूर सिंह प्रतिनायक के रूप में आया है। क्रूर सिंह' के नाम से ही लेखक उसके खल होने का आभास दे देता है । क्रूर सिंह की प्रतिद्वन्द्विता का कारण है चन्द्रकान्ता । नायक वीरेन्द्र सिंह को चन्द्र कान्ता पर आसक्त देख वह वीरेन्द्र सिंह का प्रतिद्वंद्वी बन जाता है । क्रूर सिंह स्वार्थी, निर्दयी , मतलबी, चालबाजी , झूठा, दुष्ट, कपटी, धोखेबाज, एवं कुटिल भक्त आदि रूपों में चित्रित किया गया है । वह हमेशा वीरेन्द्र सिंह को पराजित कर चन्द्र कान्ता को प्राप्त करने की योजना बनाता है । इसलिये अपने ऐयारों को चारों ओर छोड़े रखता है । मंत्रीपद प्राप्त करने की इच्छा से अपने पिता को विष देकर मरवा डालता है ।

वीरेन्द्र सिंह और तेजसिंह के महल में आने की बात सुनकर -" क्रूरसिंह की आँखो के आगे अंधेरा छा गया, दुनियाँ उदास मालूम होने लगी , कहाँ तो बाप के आखिरी गम में सर मुड़ाये बरसाती मेढक बना बैठा था , तेरह रोज कहीं बाहर जाना हो ही नहीं सकता था , मगर इस खबर ने उसको अपने आपे में न रहने दिया, फौरन उठ खड़ा हुआ और उसी तरह नंग धड़ंग औंधी हाँड़ी सा सिर लिये महराज जयसिंह के पास पहुँचा ।" [१]

ऐसी स्थिति में महाराज के पास पहुँचना उसकी बुजदिली , ईर्ष्या एवं कायरता का प्रमाण है । निजाम के कहने पर वीरेन्द्र सिंह को गिरफ्तार करवाने के चक्कर में जब वह जयसिंह से पचास कोड़े की सजा पाता है तो अपनी तकलीफ या दीवान पद प्राप्त न होने की लालसा पर खेद प्रगट करता है । उसे अपने दुःख एवं तकलीफ का तो ख्याल है पर दूसरे की तकलीफ की जरा भी चिन्ता नहीं करता । इतना मार खाने पर भी वह वीरेन्द्र सिंह को गिरफ्तार करने की योजना बनाता है । जवाहरात लेकर चुनारगढ़ के पंडितों से मिलने के लिये जाना और राजा से बिमारी का बहाना करना झूठी प्रवृत्ति का द्योतक है । चुनार गढ़ के राजा शिव दत्त से महराज जय सिंह की लड़की चन्द्र कान्ता को प्राप्त करने या विजयगढ़ को फतह करने की बात कह कर वह वीरेन्द्र सिंह को फँसाना चाहता है । बहुवेशी क्रूरसिंह वीरेन्द्र सिंह का रूप धारण कर तेजसिंह को पकड़ लेता है । चुनारगढ़ का राजा शिवदत्त भी खल के रूप में आया है क्योंकि वह चपला या चन्द्रकान्ता का शिर कटवा देता है । सम्पूर्ण कथा तिलिस्मी कारनामों से भरी है ।

खलनायक क्रूर सिंह का चरित्र यथार्थवाद की दृष्टि से रखा गया है । नाटक, कहानी, उपन्यास तथा सभी में प्रतिनायक उसी रूप में चित्रित किये गये हैं। क्रूरसिंह के पिता कुपथसिंह का नाम ही अपने राजा को गलत मार्ग के निर्देश का संकेत दे देता है ।

१- देवकी नन्दन खत्री - चन्द्र कान्ता पृ० २५

चन्द्र कान्ता संतति के खलपात्र भूतनाथ , माया रानी और दरोगा है इनके नाम से ही इनके चरित्र की कमजोरी का आभास मिल जाता है । खलपात्र दरोगा अपने साधु भेष के द्वारा ही सबको ठगता है उसका चरित्र उसी प्रकार है जिसप्रकार 'नीम न मीठी होय सींचू गुड़ घिउसे' ।

लेखक यह दिखाना चाहता है कि धन के मोह में व्यक्ति कितना अनर्थ कर बैठता है । जैसे क्रूर सिंह अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये वीरेन्द्र सिंह , तेजसिंह, महराज जयसिंह यहाँ तक कि अपने बाप तक को मार डालने की सोचता है । अपने जासूस निजाम के कहने पर वह मुसलमान धर्म अपनाने को तैयार हो जाता है । पदलिप्सा वा चन्द्रकान्ता को प्राप्त करने में उसे धर्म परिवर्तन की भी परवाह नहीं रहती । उसमें बुद्धि विवेक जरा भी नहीं है । अपनी काम वासना की पूर्ति के लिये वह हर प्रकार के कुकर्म करने को तैयार रहता है । ढोंगी है ।

खत्री जी के खलपात्र अनुकूल परिस्थिति में तो अदम्य साहस एवं चातुर्य का परिचय देते हैं पर भयंकर या कठिन स्थिति में पड़ जाने में वह भाग्य को या मित्रों को दोषी ठहराते हैं । यहाँ तक कि शत्रुओं से क्षमा याचना तथा गिड़गिड़ाने से भी बाज नहीं आते । प्रलोभन में पड़ कर वे बुरे से बुरे कामों को करने में नहीं हिचकिचाते इसलिये लेखक ने घटनाओं का अच्छा चित्र उपस्थित किया है । खत्री जी अपने खलपात्रों की निंदा कथोपकथन के द्वारा, अन्य पात्रों के द्वारा और स्वयं बीच बीच में करते चलते हैं, तब उनके कुकृत्यों की निंदा एवं चरित्र में संदेह नहीं रह जाता ।

बाबू देवकी नन्दन खत्री के ' कुसुम कुमारी ' उपन्यास का खलपात्र बालेसिंह और जसवंतसिंह है । बालेसिंह प्रतिनायक के रूप में आया है । उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण है कुसुम कुमारी को प्राप्त करना । कुसुम के प्रेमी रनबीर को अपने रास्ते से हटाने के लिये ही वह रनबीर को कैद कर लेता है प्रतिद्वन्द्विता की भावना से वह रनबीर को कुसुम कुमारी तक पहुँचने नहीं देता ।

जसवंत सिंह रनबीर का मित्र है । रनबीर के गायब हो जाने पर वह उसे खोजने निकलता है पर रनबीर को न पाकर वह कुसुम कुमारी के पास पहुँच जाता

है । कुसुम के रूप सौन्दर्य को देख उसका मन अपने मित्र की ओर से फिर जाता है वह रनवीर के प्रतिद्वंद्वी- बाले सिंह से मिल कर रनवीर को मरवा डालने और कुसुम को प्राप्त करने की योजना बनाता है । बालेसिंह उसकी दुष्टता समझ जाता है और रनवीर सिंह से फिर दोस्ती करना चाहता है, पर रनवीर उसे नहीं अपनाता। बाले सिंह से मिलकर विश्वासघाती जसवंत सिंह स्वार्थवश फिर अपने मित्र रनवीर को धोखे से घायल कर देता है । और कुसुम के जिंदा रहने का संदेश देता है । कुसुम की दासी कालिन्दी के जसवंत सिंह से प्रेम करने के कारण जसवंत सिंह का काम आसान हो जाता है । कालिन्दी के द्वारा किले का रास्ता मालूम हो जाने से दुष्ट जसवंत सिंह किले पर चढ़ाई करता है, घमासान युद्ध होता है जसवंत सिंह और बालेसिंह दोनों मारे जाते हैं । कालिंदी को भी अपने पाप का फल मिलता है ।

जसवंत सिंह परिस्थिति वश खल है । उसकी खलता का कारण है कुसुम कुमारी का रूप सौन्दर्य जिसके वशीभूत होकर वह अपने मित्र के साथ खलता करता है। परिस्थितियाँ मनुष्य के चरित्र को किस प्रकार उठाती गिराती हैं । मनुष्य किस प्रकार परिस्थितियों का दास बन अपने चरित्र के उत्थान-पतन का कारण बनता है । यही दिखाने के लिये लेखक ने जसवंत सिंह जैसे खल की रचना की है । प्रारम्भ में खल न होते हुये भी वह अंत में खल बन जाता है, अपनी इच्छा तृप्ति के लिये मनुष्य बड़ा से बड़ा पाप कर सकता है । जसवंत सिंह मित्र के रूप में खल है । परिस्थितियों का मनुष्य के चरित्र में बहुत बड़ा हाथ रहता है ।

बाबू राम जी दास वैश्य के उपन्यास " धोखे की टट्टी का " खलपात्र नगेन्द्र ईर्ष्या और घृणा जैसे दुर्गुणों का शिकार है । उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण ईर्ष्या एवं प्रतिशोध है जिसने उसे खल बना दिया । नगेन्द्र स्वभाव से ही खल है। दूसरों के उन्नतिशील चरित्र को देखकर उसे ईर्ष्या होती है। यही कारण है कि मैच में हार जाने, रेसिटेशन में तमगा न प्राप्त होने के कारण वह अपने प्रतिद्वंद्वी कैलाश से दुश्मनी करने लगता है । कैलाश से बदला लेने, उसे नीचा दिखाने, दुःख पहुँचाने की भावना प्रबल हो उठती है ।

दुष्ट नगेन्द्र कैलाश से अकारण ही दुश्मनी करने लगता है । कैलाश के

मित्र मदनमोहन को मित्रता का ढोंग रच अपने यहाँ चाय पर बुला उसे बेहोशी की दवा चाय में मिला कर बेहोश कर देता है ।

दुष्ट दुर्बुद्धि , धूर्त, चालबाज नगेन्द्र जुए में अँगूठी , घड़ी, पेन आदि हार जाने के कारण आत्म हत्या करने लगता है कि कैलाश उसे बचा लेता है, पर नगेन्द्र उसका उल्टा ही अर्थ लगाता है । सच है दुष्ट मनुष्य भलाई करने वाले को भी शंका की दृष्टि से देखता है ।

प्रो० बुकवर्म के पास किताब लेने के लिये जाने पर जब वह इम्तहान का पर्चा देख लेता है तो उसकी जो मानसिक स्थिति होती है उसका लेखक ने कितना सफल चित्रण किया है जैसे किताब का हाथ से गिर जाना , चेहरे का सुर्ख पड़ जाना, हाथ पैर काँपना, कभी दरवाजे की ओर देखना, कभी किताब उठाना या फिर जोर जोर से गुनगुनाना आदि उसकी शंकित या भयभीत स्थिति का प्रतीक है । कैलाश जब उसकी वास्तविक स्थिति को न बताकर उसका पता लेता है तब भी पापी को उसमें कोई चाल नजर आती है । तुलसी दास ने ठीक ही कहा है -

जाकी रही भावना जैसी
तिन मूरत देखी प्रभु तैसी

और चोर हमेशा दूसरों को चोर ही समझता है उसी प्रकार दुष्ट नगेन्द्र कैलाश के सद् व्यवहार को भी कुटिलता पूर्ण ही समझता है । चाणक्य का यह दोहा उसके चरित्र को और भी स्पष्ट कर देता है । -

खलहु सर्प इन दुहुन में भलो सर्प खल नाहिं ।
सर्प डसत है काल में, खल जन पग पग माहिं ।।

चाणक्य[1]

चाणक्य तो खल को सर्प से भी बुरा समझता है क्योंकि सर्प तो किसी एक ही समय डसता है परन्तु खल पग पग पर पीड़ा पहुँचाता है । नगेन्द्र उसी प्रकार का खल है जो अपना भला करने वाले कैलाश को हमेशा दुःख पहुँचाता है ।

इस संसार में सब तरह की प्रकृति के मनुष्य परमेश्वर ने पैदा किये हैं । कोई तो बेचारे ऐसे हैं जो बुराई का बदला भलाई में देने में उत्सुक रहते हैं और कोई ऐसे हैं जो अपने साथ भलाई करने वालों पर ही कुठार चलाने की तलाश में रहते

है । इन्हीं को सांसारिक शब्दों में भला और बुरा कहते हैं ।

अंग्रेज लेखक सेनेका का यह मत है कि भलाई के बदले भलाई न करना मानवता है परन्तु भलाई के बदले में बुराई करना पैशाचिकता है ।

'Not to return one good office for another is inhuman but to return evil for good is diabolical.' Seneca

नगेन्द्र ऐसा ही पैशाचिक प्रवृत्ति का मनुष्य है। कैलाश हमेशा नगेन्द्र की सहायता करता है उसके दुर्गुणों को छिपाने के लिये झूठ भी बोलता है पर वही नगेन्द्र परीक्षा के दिन कैलाश के कमरे और खिड़की का दरवाजा बाहर से बन्द कर देता है ताकि कैलाश इम्तहान न दे सके और उसकी आशा लता फलने के पूर्व ही मुरझा कर धराशायी हो जाये ।

गवर्नमेन्ट कैलाश को जापान भेजती है । जब कैलाश चन्द्र जापान से लौटते हैं, जब नरेन्द्र उनकी प्रतिष्ठा यश और योग्यता की बात सुनता है तो ईर्ष्या के कारण उसका मुँह पीला पड़ जाता है । कैलाश का अहित करने की नियत से वह (काला साँप) अपनी आर्थिक स्थिति का रोना रोकर कैलाश का प्राइवेट सेक्रेटरी बन जाता है और कैलाश की सभी बातों को जान लेता है । कैलाश और सरस्वती के प्रेम को जानकर वह सरस्वती को कैलाश के प्रति भड़काकर स्वयं शादी करना चाहता है पर जब सरस्वती उसे फटकारती है तो उसे दुष्ट दूसरी तरकीब लगाता है । वह कैलाश के जापान गये दोस्त की विधवा बहन के साथ कैलाश का प्रेम होने की झूठी बात कहकर सरस्वती को एक चिट्ठी भी लिख देता है " सरस्वती, मैं तुम्हें एक बड़ी भारी आपदा से बचाता हूँ जिस कैलाश को तुम साधु समझे हो वह बड़ा धूर्त है । उसके जाल से तुम बच सकी इसलिये मैंने यह चिट्ठी तुम्हें दी छोड़ रहा है " ।'[१]

१- श्री रामनाथ जी वैश्य - धोखे की टट्टी पृ० ६२ चौदहवाँ परिच्छेद ।

वह इतना निर्लज्ज है कि सरस्वती के बार बार फटकारने पर भी बाज नहीं आता। कैलाश की डायरी में मलाई वाले ४५ रुपया उधार दिखा कर तथा कैलाश के तारा के यहां जाने की बात कह कर सरस्वती को दु:खी करता है और सोचता है कि कैलाश को तो चौपट कर ही दिया। उसका विचार था कि अब सरस्वती कैलाश से नहीं मिलेगी। उसे "यह मालूम ही न था कि पाप का घड़ा कभी न कभी फूट ही जाता है"।[१]

कैलाश को सता कर नगेन्द्र जापान गया, रुपया उड़ा, रुपया पास न रहने पर चोरी की, जेल गये। छूटने पर रुपये की जरूरत हुई कैलाश के पास चिट्ठी भेजी कैलाश ने ५००) भेजा जिससे वह पुन: भारत आकर १००) महीने पर एक लोहे के कारखाने में नौकरी करने लगा।

नगेन्द्र के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि दुष्ट मनुष्य अपना भला करने वाले के साथ किस हद तक खलता कर सकता है। स्वभाव से ही खल होने के कारण नगेन्द्र कैलाश के सभी अच्छे कार्यों को संदेह की दृष्टि से देखता है। अपने मित्र कैलाश की उन्नति देखकर वह ईर्ष्या से जल उठता है। उसकी ईर्ष्या से कैलाश का तो कुछ नुकसान नहीं होता वह स्वयं पतन की ओर अग्रसर होता रहता है।

बेकन का मत है -"एक व्यक्ति जिसमें स्वयं कोई गुण नहीं होते वह सदैव दूसरे के गुणों से ईर्ष्या करता है क्योंकि मनुष्य का मस्तिष्क या तो अपनी अच्छाई पर या दूसरों की बुराई पर (पलता है) पोषित होता है और जो एक को चाहता है वह दूसरे पर आक्रमण करेगा। जो दूसरों के गुणों की प्राप्ति करने की आशा नहीं करता वह दोनों हाथों से दूसरे के वैभव को दबाने की कोशिश करेगा"।

प्रतिद्वंद्वी मनुष्य अपने हानि लाभ की चिंता न कर अपने विपक्षी का अधिक से अधिक अहित करने के लिये कृत संकल्प रहते हैं। वाशिंगटन का मत है कि सबसे श्रेष्ठ लोग ही हर प्रकार का यत्न करके ही थोड़ी सी अच्छाई कर पाते हैं लेकिन ऐसा मालूम होता है कि जो अत्यंत घृणित प्रकार के व्यक्ति हैं उनके अन्दर बुराई करने की

१- श्री० राम दास जी वैश्य - पौसे की टट्टी पृ० ६३ चौदहवाँ परिच्छेद

असीम शक्ति होती है । बाबू राम जी दास वैश्य के धोखे की टट्टी का नगेन्द्र नाथ ऐसा ही खल है । स्वयं में कोई गुण न होने के कारण वह अपने मित्र कैलाशनाथ के गुणों से ईर्ष्या करने लगता है । उसे नीचा दिखाने के लिये वह उसकी प्रवृत्ति के समस्त मार्ग अवरुद्ध कर देने का असफल प्रयत्न करता है ।

कैलाशनाथ का अहित करने के लिये उसकी बुद्धि अंधकार में नियंत्रण करती है । बदले की भावना से वह कैलाश की प्रत्येक अच्छाइयों को संदेह की दृष्टि से देखता है । वह अकारण ही कैलाश पर दोषा रोपण करता है कि वह अपने स्वर्गवास गये मित्र की विधवा बहन से प्रेम करता है । ऐसा वह कैलाश की प्रेमिका सरस्वती को उखाड़ने के लिये करता है । वृंद कवि का कथन है -

" दोष धरे निर्दोष को वे नर होय सदोष ।
घटि उदारता कहें जिहि न होय संतोष ।'[१]

दुष्ट, ईर्ष्यालु नगेन्द्र मित्र के रूप में खल है वह अपने मित्र कैलाश का अहित करने में झूठ, छल, कपट, धोखा, दुराव, मिथ्या, साक्ष्य, प्रताड़ना आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है ।

कैलाश के आदर्श चरित्र को उभारने के लिये लेखक ने नगेन्द्र जैसे खल की रचना की है । नगेन्द्र की ईर्ष्या उसे ही जला कर राख कर देती है । ईर्ष्यावश न तो वह उन्नति कर पाता है और न किसी का हितैषी ही बन पाता है । नगेन्द्र कथानक की दृष्टि से प्रमुख खलपात्र है चरित्र की दृष्टि से स्थिर उसका चरित्र प्रारम्भ से अंत तक खलतापूर्ण है । क्रिया की दृष्टि से वह घरेलू है ।उसकी खलता दुराव से आच्छादित है, अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है । वह प्रत्येक अपराध जानबूझ कर, सोच समझ कर, योजना बनाकर करता है । मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित खल है क्योंकि उसके नाम एवं रूप से उसे खल नहीं कह सकते उसका कार्य ही उसके चरित्र को प्रकट कर देता है । कारण की दृष्टि से वह बहुमुखी है । उसकी खलता का प्रभाव उसके मित्र उसकी पत्नी तथा अन्य मित्रों पर भी पड़ता है ।

१- वृंद कवि - वृन्दावन विनोद सतसई पृ० २६

बाबू चतुर्भुज सहाय के 'कुमारी चन्द्रकिरण' उपन्यास का कट्टर खाँ और मसऊद खाँ खल हैं। मुगल सरदार मसऊद खाँ नायक मदनसिंह का प्रतिद्वंद्वी है। कुमारी चन्द्र किरण को प्राप्त करने के लिये ही मसऊद खाँ और कट्टर खाँ के साथ मदन सिंह का युद्ध होता है। खलता का कारण है प्रतिद्वंद्विता।

कल्याण सिंह शेखावत * के 'हेर फेर' उपन्यास का खलपात्र रंजन सर्व प्रथम एक योग्य, दयालु, चंचल एवं परोपकारी के रूप में प्रगट होता है। शिशिर की स्थिति को जान कर वह उसको सब प्रकार से सहायता करता है। मां और पत्नी से भी सहानुभूति एवं प्यार देने की ताकीद कर देता है, उसके लेखों को प्रकाशित करता है, परन्तु परिस्थिति उसे खल बना देती है। रंजन की खलता का मुख्य कारण है ईर्ष्या। अपने मित्र शिशिर को अपने से अधिक योग्य प्रतिष्ठित एवं प्रशंसित देखकर उसकी ईर्ष्या एवं प्रतिशोध की भावना जागृत हो उठती है। वह उसे हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश करता है। लेखक के विचार से -" रंजन की धारणा भिन्न थी। वह धनी का पुत्र था, धन का उसे दंभ था। उससे ऊपर उसकी आत्मा उठ ही नहीं सकती थी। उसके हृदय में गर्व भरे भाव भरे थे कि वह अपने साथी की सहायता कर रहा है। उसे अपनी समृद्धि का अभिमान था, अपने मुँह से कुछ न कहने पर भी ये भाव स्पष्ट हो जाते थे। शिशिर की सहायता भी वह इसी उद्देश्य से करता है कि उस पर विजय प्राप्त कर ले।

उसे अपने धन का घमंड था। शतपथ ब्राम्हण में कहा गया है अति अभिमान पराभाव का मूल होता है।

* पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमान:

शतपथ ब्राम्हण ५।१।१।१

यही कारण था कि शिशिर को नीचा दिखाने के प्रयत्न में वह बुरे मित्रों की संगत में पड़ शराब पीने, रण्डियों के कोठे में जाने आदि दुर्व्यसनों में फँस स्वयं पतन के गर्त में गिर जाता है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि

वह अपने से योग्य व्यक्ति से ईर्ष्या करने लगता है। ईर्ष्या में तप ही तप होता है शिशिर को नीचा दिखाने के अभिप्राय से वह अपने पत्र 'नारद' में अपने मित्र शिशिर के लेखों की जोरदार आलोचना करता है। ५०० के लिये उसे जेल भिजवाने की सोचता है पर शिशिर उसके पैसे से ही उसका रुपया अदा कर देता है।

रजत जैसे खल को रखने में लेखक का सर्वप्रमुख उद्देश्य यह दिखलाना है कि ईर्ष्याविष्ट मनुष्य अपने प्रिय से प्रिय मित्र का भी कितना और किस सीमा तक अहित कर सकता है।

एस०एन०जैनी के 'निर्मला' उपन्यास का 'सालिम सिंह' डाकू खल है जो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये विजयसिंह को मरवा डालने की योजना बनाता है पर सफल नहीं हो पाता।

धनलोलुपता :

खलता के कारण धनलोलुपता के पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो इस वर्ग में हमें दो प्रकार के खलपात्र मिलते हैं एक तो वे जिन्हें लेखक यह मान कर चलता है कि वे स्वभाव से ही खल हैं। उसका कारण लेखक न तो पर्यावरण मानता है न ब मनोविज्ञान वरन् उनके संस्कारों में ही उनके दोषों को पाता है। १९वीं शताब्दी में इस प्रकार के खल पात्र विशेष रूप से मिलते हैं। इस वर्ग में हमें एक विशेष प्रकार के खल और भी मिलते हैं जिन्हें सफेद पोश खल कहते हैं। आधुनिक अपराध मनोविज्ञान में ये अध्ययन का विषय बने हैं। ये समाज का अभिशाप हैं। आधुनिक समाज-शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि ये विकासशील सभ्यता, औद्योगीकरण और नागरिक सभ्यता की देन है। हमारे उपन्यासकारों ने इनपर प्रकाश डालते हुए हुये आधुनिक सभ्यता के अभिशाप का ही उद्घाटन किया है -

सामाजिक खलों पर दृष्टिपात करते हुये हम देखते हैं कि बहुत बड़ी संख्या इन पात्रों की है जिनके खलता के मूल में किसी न किसी रूप में अर्थ है। कभी - कभी

सी आर्थिक मजबूरियों में पात्र दुराचार का मार्ग अपनाते हुये दिखाई पड़ते हैं।
जैसे निराला के अलका उपन्यास में महादेव, जो बच्चों के पालने, बेटियों के
शादी के दहेज के दबाव से पाप की सीढ़ियाँ एक के बाद एक उतरता चला जाता है।
प्रेमचन्द के 'गबन' का नायक भी एक प्रकार से आर्थिक परिस्थितियों के दबाव के कारण
ही सरकारी धन का गबन कर बैठता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेकानेक स्थितियाँ
है जिनमें खलपात्रों में धन के लोभ में चोरी, डाका, छल, कभी अपहरण,
बलात्कार आदि जैसे नीच कृत्य किये हैं हम उनकी व्याख्या करेंगे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के "अलका" उपन्यास में "महादेव"
खल के रूप में चित्रित किये गये हैं। महादेव की खलता का सर्वप्रमुख कारण है आर्थिक
स्थिति का सुदृढ़ न होना, जिसके कारण वह खल बन जाता है। वह सर्वथा हृदयहीन
नहीं है इसीलिये शोभा की दयनीय स्थिति देखकर उसे कुछ सहानुभूति होती है। पर
पारिवारिक समस्या का ध्यान आते ही वह तुरन्त सोचने लगता है –" दुनिया इसी
तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुँची है, वह गरीब है, इसीलिये अमीरों के
तलुवे चाटता है उसके भी बच्चे हैं। उन्हें भी पालना करना है। लड़कियों की
शादी में तीन-तीन, चार चार, और पाँच-पाँच हजार का सवाल हल करना है,
इतना धर्म का रास्ता देखने पर यह संसार की मंजिल वह कैसे तय करेगा ?"[1] इससे
उसके विचारों की दुर्बलता प्रकट होती है।

बुद्धि के अभाव में, धन की आवश्यकता से मजबूर होकर उसके बीच में
वह लड़कियों को, विक्रय करने का पेशा अपना लेता है अपने इन्हीं विचारों के कारण वह शोभा की माँ की मृत्यु हो जाने पर शोभा के साथ
ऊपरी सहानुभूति दिखाता है। क्योंकि वह अंदर ही अन्दर (मन ही मन) शोभा को
किसी तरह मुरली धर के हवाले करके पाँच छः हजार की रकम प्राप्त करने की युक्ति
सोचता है।

1- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अलका पृ० १३ नवासंस्करण १९६०

शोभा को उसकी ससुराल खबर देने जाने का झूठा आश्वासन देकर वह मुरलीधर के घर खबर करने जाता है कि शोभा उसके मित्र के यहाँ है जब मुरलीधर चाहे, वह आ सकती है। शोभा को फँसाने के लिए वह मनहारिन को भेजता है पर उससे मनोरथ पूर्ण होते न देख वह रोज महादेव जी पर जल चढ़ा कर यह प्रार्थना करने लगा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाये तो आपके लिए एक पक्का चबूतरा बनवा दूँगा।"[1] स्वार्थ के लिए वह धर्म के क्षेत्र में भी ढोंग रचता है।

चतुर तो वह इतना अधिक है कि किसी काम को करने के पहले खूब सोच विचार लेता है। यही कारण था कि वह शोभा को प्यारे लाल जैसे ब्राह्मण और बाल बच्चों वाले घर में रखता है जिससे किसी को उस पर संदेह न हो। उसके षड्यंत्र का पता लग जाने पर जब शोभा को उससे अपने सतीत्व रक्षा के लिए घर छोड़ कर भाग जाना पड़ता है तो वह उसके छिनाली का लांछन धर गाँव वालों को एकत्र कर उसकी सतीत्व रक्षा का ढोंग रचता है। साथ ही साथ अपने आदमियों को सम्भावित रेलगाड़ियों में खोज निकालने के लिए भेजता है। मुरलीधर को भी खबर भेज देता है। मनहारिन के शब्दों में महादेव का चरित्र-

महाराज इस गाँव का ताल्लुकेदार, कौन नाम ले, मुँह का चार रोज खाना न मिले, पक्का बदमाश है, वही यह सब कराता है, उसी के लिए बेचारी को घर छोड़ कर भागना पड़ा।"[2]

इस युग का लेखक हिन्दू धर्म के परम्परागत विश्वास कर्मफल में पूरी आस्था रखता है। महादेव के संबंध में बताता है कि उसके पाप का फल उसे समय समय पर मिलता रहता है। एक बार वह एक वेश्या की अटारी से कूद रहा था, उसकी कमर में सख्त चोट आ जाती है। समय समय पर यह दर्द उभरता है और उसके पाप कर्म की याद दिलाता है। इस पर उसका पाप कर्म समाप्त नहीं होता। शोभा जब पुनः स्नेह शंकर जी के यहाँ दिखाई पड़ती है तो वह फिर उसे पकड़ने की युक्ति बताता है जो अन्त में असफल सिद्ध होती है।

१- निराला - अलका पृ० २६

२- निराला - अलका पृ० १४४

महादेव के चरित्र से पता चलता है कि उसकी खलता के मूल में अर्थ की समस्या ही है। अंग्रेज लेखक यूरीपीडियस का कथन है कि -"दरिद्रता के अन्दर यह रोग होता है कि आवश्यकतावश यह मनुष्य को बुराई करने की शिक्षा देती है।"[१] दरिद्रता के कारण वह सत् असत् का विचार न कर असत् कर्म को ही उत्तम और श्रेष्कर समझता है। साथ ही असत् कर्म को असत् न समझ कर आवश्यक मानता है।

निराला ने समाज की यथार्थ स्थिति को चित्रित करने के लिए ही महादेव जैसे खल की रचना की। महादेव सहायक खल पात्र है। मुरलीधर की कामवासना की तृप्ति का माध्यम है उसका चरित्र स्थिर है अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए विमस्त से विमस्त मार्ग को अपनाने समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करने, जीवन को कष्ट मय बनाने से बाज नहीं आता। उसका प्रत्येक कार्य परोक्ष है। प्रगट रूप से वह समाज में कोई गड़बड़ी नहीं करता। महादेव के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो सुन्दर सुन्दर अच्छे अच्छे घरों की लड़कियों को माँगते हैं उनमें उनके कुछ दलाल होते हैं महादेव इसी प्रकार का दलाल है। अपराध की दृष्टि से अभिज्ञ होने पर भी धन के वशीभूत हो महादेव शोभा का सतीत्व अपहरण होने, जीवन भ्रष्ट होने और नारी जाति का अपमान होने की चिन्ता न कर मुरलीधर के हाथ बेचने की योजना बनाता है। मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित खल है क्योंकि कथा में वह जिलेदार के रूप में आता है। कारण की दृष्टि से एक मुखी है उसकी खलता का कारण है धन प्राप्ति की इच्छा जिसके लिए वह छल कपट, झूठ, धोखा, आडम्बर, चापलूसी, मिथ्या साक्ष्य, ढोंग, विश्वासघात आदि अस्त्रों का प्रयोग करता है। महादेव के चरित्र द्वारा लेखक ऐसे मार्गों से बचने के लिए चेतावनी देता है। समाज

१- ह्यूमन एडवर्स - ए साइक्लोपीडिया आफ कोटेशन

समाज ही ऐसे अपराधियों का निर्माण करता है - Every society has criminals that it deserves इसे criminals by passion कहा जा सकता है।

प्रेमचन्द के गबन उपन्यास का खलपात्र रमा 'रमानाथ' यथार्थवाद की दृष्टि से कथा में रखा गया है।[१] उसकी खलता एक स्थिति में पहुँच कर अपराध की कोटि में आ जाती है। यह अपराध ही उसे खल घोषित करता है। अन्यथा वह एक सामान्य मनुष्य है। केवल इतना है कि उसके चरित्र में एक कमजोरी है दिखावे की। अपनी पत्नी के सम्मुख भी वह अपनी अमीरी की डींग हाँकता है सच्चाई को छुपाता रखता है। दूरदर्शिता और विचारों की स्थिरता के अभाव में ही वह गलत मार्ग को अपना लेता है। आर्थिक कठिनाई भी बहुत कुछ रमा के पतन का कारण थी। महत्वाकांक्षी रमा पत्नी की दृष्टि में योग्य पति साबित होने की झूठी शान में अनेकों झूठ बोलता है। रतन के कंगनों से ऊब कर वह सरकारी रकम का गबन करता है और पुलिस के डर से भाग खड़ा होता है।

कायरता और डरपोकपना तो उसकी नस नस में भरा है। उसका अपराध चोरी का है, गबन का है। आगे चलकर उसकी दुर्बलता और प्रकट हो जाती है जब जेल के भय से वह पुलिस के हाथों पर पड़कर झूठी गवाही देता है। अनेकों निरपराध लोगों को मृत्यु दंड दिलाने के लिए तैयार हो जाता है। उसमें दृढ़ मनोबल का अभाव है। चूंकि उसकी अन्तरात्मा इसके लिए तैयार नहीं होती पर जालपा के गिरफ्तार करने की धमकी के भय या प्रलोभनों से वह पुलिस की बात मान लेता है। मद्यपान करने लगता है। वेश्या तक से सम्पर्क स्थापित करता है। जालपा के सद्विवेक के प्रभाव से ही उसका विवेक लौट आता है उसका चरित्र परिवर्तित हो जाता है। संयोग के कारण वह खल बन जाता है।

रमानाथ के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाने की कोशिश करता है कि मिथ्या गौरव और धन की लालसा के मोह में दुर्बल व्यक्ति इतना अंधा हो जाता है कि नैतिक अनैतिक कार्य की निर्णयात्मक बुद्धि नहीं रह जाती अतः न

१- राम प्रकाश कपूर - हिन्दी के सात क्रान्तिकारी उपन्यास पृ० ५१

चाहते हुये भी वह पतन के गर्त मे गिर जाता है। रमानाथ की खलता व्यक्तिगत संबंधों में अधिक व्यक्त होती है। वह अपनी पत्नी को हमेशा अंधकार में रखता है। वास्तविक स्थिति न बताकर वह उसके साथ विश्वासघात करता है। झूठी प्रतिष्ठा और शान की आड़ में वह अपनी पत्नी का जीवन तो नष्ट करता ही है साथ ही स्वयं भी पतनोन्मुख होता है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह छल, कपट, झूठ, धोखा, दुराव और चोरी जैसे शस्त्रों का प्रयोग करता है।

डॉ० रामप्रकाश कपूर का कथन है कि "रमा में दुर्बलताएँ है, झूठ ही उसका भोजन है, झूठ ही ओढ़ना है और झूठ ही बिछौना है। वह झूठी कागजी फूलों की नकली संस्कृति का उपासक है।"[१]

रमानाथ के चरित्र द्वारा प्रेमचन्द ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि परिस्थितियों की लपेट में आकर मनुष्य का चरित्र किस प्रकार उठता गिरता है। रमानाथ मध्यम वर्ग का प्रतिनिधि है इसलिए उसमें इस वर्ग की दुर्बलताएँ और सबलताएँ सहज ही प्राप्त हो जाती है। अत्यधिक लाड-प्यार में पले होने के कारण उसमें कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति का अभाव है। उसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी है। रमानाथ की मानसिक दुर्बलता का भी लेखक ने सजीव चित्रण किया है।

धनलोलुपता :

क- प्रकृतितः खल

श्री निवास दास के 'परीक्षागुरु' उपन्यास में हम एक ओर उन खलों को देखते हैं जिनके संबंध में उपन्यासकार एवं पाठक एक निश्चित धारणा लेकर चलता है कि वे खल है जैसे मुंशी चुन्नीलाल, मास्टर शिंभूदयाल, बाबू बैजनाथ, पंडित पुरुषोत्तम दास, हकीम अहमद हुसैन आदि। इनकी आकृति वाणी, मन, वचन एवं व्यापार सभी खलता के घोतक है। ये स्वभाव से ही खल है। इन खलपात्रों के चरित्र का उद्घाटन करते हुये लेखक कहता है कि -"मुंशी चुन्नी लाल स्वार्थी अशिक्षित चतुर मतलबी, सूक्ष्म दृष्टि का अभाव, धोखेबाज जबानी जमाखर्च करने और कागजी घोड़े दौड़ाने में

१- राम प्रकाश कपूर - हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास पृ० ४०

बड़ा धुरंधर था ।"[१] इनमें खलपात्र के समस्त गुण मौजूद थे । शिंभूदयाल शिक्षित होते हुये भी दुर्व्यसनी था । पंडित पुरुषोत्तमदास सुन्दर थे पर अक्ल मोटी थी । इनके मन में औरों की डाह बड़ी प्रबल थी लोगों को धनवान,प्रतापवान , विद्वान,बुद्धिमान, सुन्दर,तरुण,सुखी और कृतकार्य देखकर इन्हें बड़ा खेद होता था । वह यशवान मनुष्यों से सदा कुढ़ा रहते थे,औरों को अपने सुख लाभ का उद्योग करते देखकर कुढ़ जाते थे । अपने दुखिया चित्त को धैर्य देने के लिए अच्छे अच्छे मनुष्यों के छोटे छोटे दोष ढूंढ़ा करते थे । किसी के यश में किसी तरह का कलंक लग जाने से यह बड़े प्रसन्न होते थे, पापी दुर्योधन की तरह सब संसार के विनाश में इनकी प्रसन्नता थी ।[२]

हकीम अहमद हुसैन डरपोक , खुशामदी और स्वार्थी था।अपने स्वार्थ के लिए वह चिकनी चुपड़ी बातें किया करता था । बाबू बैजनाथ शिक्षित होते हुए भी स्वार्थी वाचाल और लोभी थे ।

मुंशी चुन्नीलाल,मास्टर शिंभूदयाल,पंडित पुरुषोत्तम दास,बाबू बैजनाथ, हकीम व अहमद हुसैन आदि यथार्थवादी खल हैं ये अप्रत्यक्ष रूप से अपने मित्र का अहित करते रहते हैं । ऊपर से तो यह चिकनी चुपड़ी बातें करके मदन मोहन को अपना सबसे बड़ा हितैषी सिद्ध करते हैं पर अन्दर ही अन्दर वह उसके धन को चूसते रहते हैं,आर्थिक रूप से उसे खोखला बना कर मुसीबत के समय उसका साथ छोड़ कर चल देते हैं । अपराध की दृष्टि से ये अमित्र हैं क्योंकि यह जो कुछ भी खलता करते हैं वह जानबूझ कर, सोच समझ कर योजना बनाकर,करते हैं । उसके परिणाम से भी भिज्ञ हैं । मान्यता की दृष्टि से यह अनिश्चित हैं क्योंकि कथा में मित्र के रूप में जब उनका प्रवेश उनके नाम,रूप और गुण से खल नहीं सिद्ध करता वरन् उनके क्रिया कलाप से हम यह सिद्ध करते हैं कि यह अनिश्चित खल हैं । कारण की दृष्टि से यह एक-मुखी हैं । उनकी खलता का कारण केवल एक है और वह है धनलोलुपता । धन के लोभ में ही वह अपने मित्र का जीवन नष्ट कर समाज में उसकी प्रतिष्ठा एवं सम्मान पर आघात करते हैं और उसके घनिष्ट मित्र ब्रजकिशोर की बुराई करके उसकी ओर से

१- श्रीनिवास दास - परीक्षा गुरु पृ० ६६-७०

२- श्रीनिवास दास - परीक्षा गुरु पृ० ७२

भी उसका मन फेर देते हैं । वह ललता के शस्त्र धोखा का प्रयोग करते हैं, उनकी मीठी वाणी झूठी है, उनकी मित्रता का भाव भी खोखला है, उनका समस्त मैत्री व्यापार कृत्रिम है ।

बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास के खलपात्रों का चरित्र लेखक प्रारम्भ में ही उनका आकृति, वेशभूषा एवं चाल ढाल से दे देता है । खलपात्र बंसता के आकृति वर्णन में ही उसके खल होने का पूरा पूरा आभास मिल जाता है जैसे -" नाक फरसही , होठ मोटे, आँखें घुच्चुसी, माथा बीच में गड्ढेदार, चेहरा गोल, रंग काला मानो अंजन गिरिका एक टुकड़ा हो । पढ़ाई में काला अक्षर भैंस बराबर था ।" १

चापलूस मसखरा , खुशामदी , कपटी, बातों वाला, नटखट, धूर्त, कंजूस बंसता रईसों के लड़कों को नए नए तरीके सोच कर उन्हें फिजूल खर्ची की सलाह देने में सिद्ध हस्त था । ऋद्धि नाथ और निधिनाथ को अपने चंगुल में फँसा कर उनकी धनराशि को नष्ट करवा देता है । मंदिरों और मठों में भी अनेकों प्रकार के अत्याचार करने से बाज नहीं आता । वह अत्यंत उजड्ड और जघन्य था ।

इसी तरह अन्य बहुत से खलपात्र इस उपन्यास में आये हैं जैसे रग्घू, हकीम साहब, बुद्धा बेगम, हुलदास तथा नन्दू । नन्दू अल्प शिक्षित होते हुये भी अपने को बहुत बुद्धिमान समझता था । जैसे -" नितान्त अल्पज्ञता के कारण इतना मदांध ~~समझता था जैसे~~ और निर्विवेक था कि बहुधा अपने छिछोरपन और सिफलापन के सबब शिष्ट समाज में कईबार भरपूर दक्षिणा पा चुका था तो भी अपने छिछोरपन से बाज नहीं आता था ।" २

मिथ्याभिमान- कुरूप होते हुये भी वह अपने को सबसे अधिक सुन्दर समझता था ।[३] झूठ बोलने , अपना विश्वास जमाने व छल से काम निकालने की कला

१- बालकृष्ण भट्ट - सौ अजान एक सुजान पृ० ३४ छठा सं०१९९२ वि

२- बालकृष्ण भट्ट - सौ अजान एक सुजान पृ० ५६ दसवां प्रस्ताव

३-" आँखें धुंधी , गाल फसे, बेवकूफों सा गरदन पस्त कद किन्तु बनावट और सजावट में यह कामदेव से उतरकर दूसरा दर्जा, अपना ही कायम करता था।" पृ०५६दसवांप्र०

में सिद्ध-हस्त था अवध के नवाबों से अपना रुतबा बढ़ाने के ख्याल से वह दोनों बाबुओं को व्यसनों में फँसाकर स्वयं अमीर बनने की सोचता है । इसलिये कहा गया है कि धूर्त जगद्वञ्चयन्ते यानी धूर्त लोग संसार को ठगते है ।

मन्नू का विचार था कि दुनियाँ में सबसे बड़ी वस्तु रुपया है । मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई, शील, संतोष, कुशाग्रता सब रुपये के आधीन है, पैसे के लिये वह सब कुछ कर सकता था । उसका विचार था कि हमें केवल धन चाहिये जिस एक के बिना जितने गुण है सब तिनके के समान है जैसे-अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः: केवलं-येनैकेन विना गुणा स्तृणलवप्राया: समस्त इमे ।

धन के लोभ में ही वह बुड्ढे धनदास के दस हजार रुपये उड़ा लेता है। धनदास की वसीयत में उसके भानजे मिठ्ठूलाल के नाम के स्थान पर अपना नाम करना चाहता है । मुसीबत के समय बाबुओं को छोड़ कर भागने की सोचता है पर उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती । रुपयों को वह जिन्दगी में सबसे अधिक महत्व देता है ।

अल्पपात्र कुछ बात ढोंगी, दयाहीन, पर धन प्रेमी और मितव्ययी थे । कृपण इतने कि अपने व्यक्तिगत खर्च को भी नहीं कर सकते थे । अशिक्षित होते हुये भी दूसरों को लूट खाने में बहुत होशियार थे । घोड़े का सा लम्बा शैतानी मुँह, चुचका गाल, आँख छुछू, डील ठिगना, खिचड़ी बाल, आदि से ही उसके धूर्त होने का प्रमाण मिल जाता है ।

इन अल्पपात्रों के चरित्र से लेखक यह दिखाना चाहता है कि यथार्थ में मनुष्य धन के लिये पागल है । धन के लिये वह अनेकों पाप करता है । लेखक ने जहाँ चन्द्रशेखर जैसे सत्पात्र में उत्तम गुणों का विधान किया है वहाँ उसी कौशल के साथ बसंता, छक्कू तथा मन्नू आदि अल्पपात्रों में दुर्गुणों की सृष्टि की है जो स्वयं तो दुष्ट है ही दूसरों को भी वैसा ही व्यसनी बना कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते है । इन अल्पपात्रों के चरित्र द्वारा लेखक सत्पात्रों को चेतावनी देता हुआ उनसे बचने का उपदेश देता है

किशोरी लाल गोस्वामी के 'चन्द्रावती वा कुलटा कुतूहल' उपन्यास का पात्र " ऐंठासिंह " और चन्द्रावली " खल है । बदमाश ऐंठासिंह अपने स्वार्थ के कारण चम्पक की हत्या करवाने तथा सम्पत्ति का मालिक बनने में जरा नहीं झिझकता । पर भेद खुल जाने के कारण पकड़े जाने पर उसे फाँसी की सजा होती है । ऐंठासिंह निश्चित खल है वह जानबूझ कर ही चम्पा और चन्द्रवती के रूप सादृश्य का फायदा उठाना चाहता है । धन लोलुपता के वशीभूत हो वह चम्पा की हत्या भी कर डालता है । स्वार्थ मनुष्य को कितना अंधा बना देती है, यही दिखाने के लिये लेखक ने ऐंठासिंह की रचना की है ।

चन्द्रावली अपने व्यक्तित्व की कमजोरी के कारण ऐंठासिंह के हाथ की कठपुतली बन जाती है । सब कुछ जानते हुये भी साहस की कमी के कारण वह कुमार्ग पर चलती है जहाँ उसका कुछ भी स्वार्थ सिद्ध नहीं होता । वह कुसंग के कारण खलता करती है । यदि ऐंठासिंह उसके घर में पहले से न आता रहता तो चन्द्रावली कभी बुरा काम न करती ।

किशोरी लाल गोस्वामी के 'सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई' नामक उपन्यास में सेठ अनूलाल और रूपसिंह खल के रूप में आये हैं जो माणिकचंद सेठ के लड़के की बुराई करके उसे घर से निकलवा देते हैं पर भेद खुल जाने से उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती । वे संस्कार से ही खल हैं । सत् पात्र को दुखित करना उनका स्वभाव है ।

किशोरी लाल गोस्वामी के 'राजकुमारी' उपन्यास का खलपात्र दीवान राम लोचन बहुत ही दुष्ट, बेईमान, हृदयहीन एवं हत्यारा था । खल के स्वभाव का जो वर्णन नीतिविवेकस्य में किया गया है वह दीवान राम लोचन पर पूर्णतः लागू होता है -

> खलः सत्क्रियमाणोऽपि ददाति कलहं सताम् ।
> दुग्ध धौतोऽपि किं याति, वायसः कलह सताम् ।।[१]
>
> (नीति विवेकस्य)

१- किशोरी लाल गोस्वामी - राजकुमारी पृ० ५५

पापी दीवान ने जमीन में भी तीन कुएँ बनवा रखे थे। ऊपर से चारदीवारी थी। जिसमें भीतर वह कैदियों को रखता था। चांडाल दीवान जिस अभागे की जान लिया चाहता उसे इन्हीं कुओं में लाकर डाल देता था इसलिये इन कुओं में से दुर्गन्ध उठती थी क्योंकि उसमें सैकड़ों अभागों की ठठरियाँ पड़ी थीं। पापी दीवान मक्कार से डरता था। दया या सहानुभूति तो उसके मन में थी ही नहीं। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये वह छल कपट, झूठ, धोखा, दुराव, हत्या आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है।

यथाखलः खलत्वं स्वं न कदापि मुञ्चति ।
तथैव साधु साधुत्वं नैव त्यजति कर्हिचित् ।।

(नीति मुक्ता:)[१]

दीवान रामलोचन सर्वसिद्धि होने का स्वप्न देखकर अधिकार जमाने की होड़ में ही लगा करता है। लेखक ने यथार्थवाद की दृष्टि से दीवान रामलोचन जैसे खल की रचना की है जो स्वभाव से ही खल है। अपने स्वार्थ के लिये वह निर्दोष लोगों को पीड़ित करता है। वह आतंकित कर शासन करता है मानवता की दृष्टि से अमिश्रित खल होते हुये भी उसका व्यापार उसे खल सिद्ध कर देता है। लेखक खल के परम्परागत रूप को चित्रित करने के लिये ही दीवान को कथा में रखता है उसके चरित्र में किसी भी प्रकार का सुधार या पश्चाताप की गुंजाइश नहीं है वह शुरू से अब तक खल ही बना रहता है। क्योंकि उस युग में खल को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था।

अंगूठी का नगीना - किशोरी लाल गोस्वामी

इसमें रामचरन पांडे खलनायक है - दुष्ट रामचरन पांडे कृष्णगोविन्द

---

१ किशोरी लाल गोस्वामी - राजकुमारी पृ० ११६ चौबीसवाँ परिच्छेद

की मृत्यु के बाद इनकी भूमि उनकी पत्नी कालिन्दी और बेटी लक्ष्मी को कुछ कर्ज दिखा कर अधिकार में कर लेता है। वह चाहता था कि कालिन्दी मर जाय तो वह लक्ष्मी को अपने घर में डाल ले। उसने कन्यर्पमोहन के कानभर कर उनको इस विवाह के विरोध में कर दिया। मकान गिर जाने से रामशरन और उनकी पत्नी को गहरी चोट पहुँची, वे मर गये, मरते समय रामशरन ने अपना पाप स्वीकार किया। श्यामा और जवाहिर की विवाह से पूर्व मिल जुल कर क्रीड़ा करते दिखाकर लेखक लक्ष्मी के चरित्र की श्रेष्ठता को दिखाना चाहता है। लेखक रामशरन के पाप का दंड मृत्यु रूप में देता है।

किशोरी लाल गोस्वामी के " माधवी माधव वा मदनमोहिनी" उपन्यास का खलपात्र " दीवान हरिहर" प्रसाद है। वह संस्कार से ही खल है। उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण है धनलोलुपता एवं चरित्र हीनता। दुष्टदीवान अपने प्रभुपत्नी विधवा जमना के साथ अवैध संबंध स्थापित कर उसका जीवन नष्ट कर देता है। झूठा प्यार दिखा कर जमुना को अपने वश में करके धीरे धीरे उससे रुपया ऐंठता रहता है। कभी वा दीवान अपनी मुसीबतों को रोना रोकर, घर नीलाम होने, जायदाद मिट्टी में मिलने जैसी असत्य बात कह कर जमुना से उसका गहना तथा रुपया माँगता है रुपया न मिलने पर वह राम प्रसाद की साली सरस्वती को अपने जाल में फँसाने की बात करता है।" पापी का पापमय हृदय किसकिस ज्ञान से शून्य और अंधकारमय रहता है।" [१]

दुष्ट दीवान अपने साथ जमना को भी शराब, पिलाता है। शराब के नशे में अपने कुत्सित विचार को पूरा करने के लिये जमना से कहता है - किसी किसी ढब से मथना सौतेले को यहाँ से टाल दिया जाय, फिर राम प्रसाद के टालने में जियादह देर न लगेगी।' [२]

पापी दीवान अपने मालिक की हत्या करने की भी बात सोचता है। वह

१- किशोरी लाल गोस्वामी - माधवी माधव वा मदनमोहिनी पृ०३६ पश्चिमावाद

२- किशोरी लाल गोस्वामी - माधवी माधव वा मदनमोहिनी पृ० ५२

जिस मालिक का खाता है उसी के घर बरबाद करने की कोशिश करता है। दीवान खुदगरज, शैतान, बदमाश, नमकहराम और खूनी डाकू मुरारी तिवारी के रुपयों का लालच देकर राम प्रसाद के लड़के मदन मोहन को गायब करवा देता है। जिससे घर के सभी लोग दुःखी रहते है पर दीवान ऊपरी सहानुभूति दिखा कर मदन मोहन के गायब होने पर दुःख प्रगट करता है

अतिमलिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ।।

दीवान हरिहर अतिमलिन मन, कर्तव्य विमुख एवं कृतघ्न, दुरात्मा, पापी है। लेखक सभी पात्रों द्वारा उसके कुत्सित चरित्र की भर्त्सना करवाता है।

दुष्ट दीवान माधव को बदनाम करने की नियत से ही रंडी का चस्का लगने तथा मेहतरानी की लड़की को लेकर भागने की असत् कथा गढ़ता है, जिससे किसी को उस पर सन्देह न होने पाये जब कि वह स्वयं रुपये के लालच में उसे धोखा देकर मुरारी तिवारी के कब्जे में कैद करवा देता है।

पापी दीवान विधवा अम्मा का सतीत्व नष्ट करके काशी जाकर गर्भपात जैसा जघन्य पाप करने की सलाह देता है। जात बिरादरी का भय दिखाकर उसे आश्रय देने से साफ इन्कार कर देता है। अपने को पाप पंक से मुक्त करने के लिये वह बेकसूर माधव को फँसा देना चाहता है पर उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती। उसका पाप प्रगट हो जाता है।

राम प्रसाद के शब्दों में उसका चरित्र दर्पण में पड़े प्रतिबिम्ब की भाँति प्रगट हो जाता है जैसे -" तुम एक हरामी पिल्ले और धर्म का नाम अपने नापाक मुँह से न ले। बदमाश कुत्ते! तेरे जैसा हराम खोर इन्सान शायद इस दुनिया के पर्दे पर न होगा। जब तक हमें तुम्हारी ओछापन न था, तब तक हम तुझ पर विश्वास करते थे और दीनीतक तुझ पर हमारी श्रद्धा भी थी पर अब तेरे सारे कुचरित्र मुझ पर प्रगट हो गए हैं जिसके देखने से तू अब हमें मलवे के कीड़े से भी गया गुजरा नजर आता है। तू कैसे जानवरों में भी बढ़कर खूंखार है और दुनियाँ में ऐसा कोई भी बुरा काम नहीं है, जिसे तू आसानी से कर गुजरे। तुम रे पिशाच दीवान तुझ से बढ़ कर और

पापी राक्षस शायद रावण भी न रहा होगा , क्योंकि तू जिस पत्तल में खाता है उसी में छेद करता है ।।।[1]

उसके चरित्र का पता चलने पर बाबू राम प्रसाद दुष्ट दीवान को घर से निकाल देते हैं । कहा गया है -

देवानां च मनुष्यादयो कथा यथा रथा साधु ।

खलोनां कर्म विज्ञानुमन्ये घातापि दुर्बलः ।।

पापी दीवान बुराइयों से इतना भरा रहता है कि प्रताड़ना , लांछना के सिवा सुधार की गुंजाइश नहीं रहती है यही कारण है कि दीवान का मकान बैठ जाने से वह उसमें दब कर मर जाता है । ईंट पत्थर हटाने पर उसकी लाश एक मेहतरानी की लाश के साथ पड़ी हुई थी जिससे सभी उसे छूने से इंकार कर देते हैं ।

दीवान हरिहर प्रसाद के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि धन के मोह में व्यक्ति कितना बुरा से बुरा पाप कर सकता है । दुष्ट दीवान अपने स्वार्थ के लिए मालिक के लड़के वा प्रभुपत्नी का जीवन बरबाद कर देता है । निष्ठुर दीवान के मन में दया नाम मात्र को भी नहीं था । निसंतान होते हुये भी वह धन के लिये जान देता है । माधव प्रसाद के आदर्श चरित्र को दिखाने का समाज में विषमता ऐसे लोगों ~~चरित्र को दिखाने का समाज में वि-~~ से बचने के लिये ही खलपात्र दीवान की रचना की है ।

दीवान हरिहर प्रसाद की खलता का रूप परम्परागत है । लेखक शुरू से अन्त तक उसे दुष्ट चित्रित करता है । कथानक की दृष्टि से वह प्रमुख खलपात्र है, चरित्र की दृष्टि से स्थिर । लेखक उसके प्रति किसी भी प्रकार की सहानुभूति न तो स्वयं प्रगट करता है और न पाठकों से प्रगट करवाता है । धन का लोभ उसे मालिक तक की हत्या करने को प्रोत्साहित करता है । दुष्ट दीवान प्रत्यक्ष रूप से अपने मालिक को तो कुछ

१- किशोरी लाल गोस्वामी - माधवी माधव वा मदन मोहनी पृ० १३१ उन्नीसवाँ परिच्छेद

मदद करता है उसका शुभ चिन्तक होने का ढोंग रचता है पर अन्दर ही अन्दर वह मालिक पत्नी के साथ अवैध संबंध स्थापित कर उसका धन भी ले लेता है और मर्यादा को भी धक्का पहुँचाता है । मदन मोहन को दुश्मनों के हाथ सौंप कर सम्पूर्ण सम्पत्ति का मालिक बनने के लिये षड़्यन्त्र रचता है । अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है । उसका प्रत्येक कार्य जानबूझ कर , सोच समझ कर और योजना बना कर होता है मान्यता की दृष्टि से अनिश्चित है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से तो वह दीवान की भूमिका निभाता है। ~~उसके व्यापारों को देख कर ही हम उसे खल्म ठहराते है~~ उसके व्यापारों को देख कर ही हम उसे खल ठहराते हैं । कारण की दृष्टि से बहुमुखी खल है । वह न सिर्फ जमना का सतीत्व ही नष्ट नहीं करता वरन् मदन को भी गुण्डों के हाथ सौंप कर घरभर को दुखित करता है ।

लज्जाराम शर्मा मेहता के 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' उपन्यास का रघुनन्दन गुप्त खल है । उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण है धनलोलुपता । वह कामी, घमंडी , झूठा एवं प्रेम के क्षेत्र में प्रतिद्वंद्वी व्यक्तित्व रखता है ।

उसके छलपूर्ण चरित्र का परिचय उसके इस कथन से ही मिल जाता है - 'उसकी इच्छा तो दीखती है फिर डावाडोल क्या है ? कहीं हाथ से निकल न जावे । उसके बाप के पास बड़ी दौलत है । यारों के खूब छक्के पंजे उड़ेंगे । स्त्री भोली भाली है फंस जाना सम्भव है । प्रेम के नाम में फंसाना ही उत्तम मन्त्र है । कोर्टशिप भी स्त्री पुरुषों को फँसाने के लिये अच्छा जाल है । यह तो मैं बातों बातों में बता ही चुका हूँ कि मेरे पास रुपया नहीं है परन्तु कहीं ऐसा न हो कि मेरे जुये और शराब की उसको खबर हो जाये । शीघ्रता करना चाहिये नहीं तो कहीं से मंडाफोड़ हो जायेगा मरद (स्त्री) हाथ से जाती रहेगी । आज ही उसे मिलकर चिपकाये लेता हूँ । शादी के बाद वह जान भी जायेगी तो बिना प्रबल कारण के तलाक (परित्याग) देना उसके न बनेगा , उसके नाम चाहिये ।' [१]

१- लज्जाराम शर्मा - स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी पृ० ८ तीसरा प्रकरण सन् १८९९

अपनी कमजोरी को छिपाने का प्रयत्न करता है। वह भोली रमा से शादी करना चाहता है। रमा से झूठ ही अपने चाचा के ढाई लाख सम्पत्ति का वारिस बताता है। रमा को अपने फंदे में फंसाने के लिये श्यामाचरण को कलंकित करता है। अपनी स्त्री रम्भा को श्यामाचरण की पत्नी बनाकर उसपर से रमा का विश्वास हटाना चाहता है। अपनी स्त्री के सब गहने बेच डालता है। इससे उसकी धूर्तता का पता चलता है। अन्त में उसकी चालबाजी का पता चल जाता है और गहने चोरी करने के अपराध में वह पकड़ा जाता है।

इसमें लेखक ने भारतीय सभ्यता या संस्कृति के आदर्श रूप को अधिक महत्व दिया है। पाश्चात्य सभ्यता या संस्कृति को निकृष्ट समझता है यही कारण है कि वह पाश्चात्य संस्कृति की अनुयायी रमा के चरित्र को दिखाने के लिये रघुनन्दन गुप्त जैसे कामी रचना की है ~~जिसके~~ जिसके सम्पर्क से रमा का चरित्र अधिक उभरता है।

रघुनन्दन गुप्त के चरित्र का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि वह कामी, चरित्र हीन, विश्वास घाती, ढोंगी, झूठा एवं धोखेबाज है। कथानक की दृष्टि से वह प्रमुख खलपात्र है, चरित्र की दृष्टि से स्थिर। क्योंकि उसके चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं होता। क्षेत्र की दृष्टि से वह सामाजिक है। समाज में रहकर भी वह धन के लोभ में अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरे से प्यार करने का ढोंग रचता है। अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात करता है उसके मन में पत्नी के प्रति सच्चाई नहीं है। रमा की सम्पत्ति हड़पने के लिये वह शादी का ढोंग रचना चाहता है। वह यथार्थवादी खल है। क्रिया की दृष्टि से वह अपरोक्ष है अपरोक्ष रूप से ही वह छलता करता है। उसकी छलता दुराव के आवरण से आच्छादित है। उसकी प्रपंच पूर्ण बुद्धि स्वार्थ के लिये अपनी पत्नी को दूसरे का पति कहने से बाज नहीं आती। अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है। वह जो भी जिसके साथ छलता करता है वह योजनाबद्ध और देशकालस्थिति में करता है। मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित खल मानव है ~~वह योजनाबद्ध और देशकालस्थिति में~~ कारण की दृष्टि से बहुमुखी। वह अपनी पत्नी से सामयी छलता करता ही है साथ ही साथ रमा का जीवन बरबाद करने का प्रयत्न करता है।

लज्जाराम शर्मा मेहता के " धूर्त रसिकलाल " उपन्यास का पात्र रसिकलाल खल है। वह सेठ मोहन लाल का मित्र है। उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण है धनलोलुपता। धन के मोह में ही वह सेठ मोहनलाल का नैतिक पतन कर उसका जीवन दु:खमय बना देता है। सिरदर्द की दवा के बहाने उसे शराब पिला देता है मोहन लाल के पूछने पर कि क्या शराब तो नहीं है वह झूठ बोल देता है कि यह एक अर्क है। इस कथन से उसकी धूर्तता, झूठ और चालाकी व्यक्त होती है। वह मोहनलाल को अनेकों व्यसनों में फँसा कर उसका सम्पूर्ण धन हथियाने की कोशिश करता है। वेश्या के चंगुल में फँसाने के लिये उसकी प्रशंसा करता हुआ कहता है -" मित्र। घर की स्त्रियाँ किसी काम की नहीं होतीं। न वे हाव भाव कटाक्ष को जानती है, और न उनको विचार करने का कुछ ज्ञान है। वे बिचारी दिन रात घर के काम काज और बालकों के लालनपालन में फँसी रहती है वे क्या जाने कैसे दुनियाँ के मजे किसमें है ? यार। इन बातों के लिये तो बस परमेश्वर ने रंडियाँ बनाई है। जब ही तो बुद्धिमानों ने देशाटन, पंडितों की मित्रता, राज सभा में प्रवेश और अनेक शास्त्रों का अवलोकन इन बातों के समान वारांगना को भी चातुर्य का मूल बतलाया है। यदि आपकी इच्छा हो तो आज ही रात्रि को उसे यहाँ बुलवावें।" १

इस प्रकार वह सेठ जी को बी महताब रंडी के जाल में फँसा देता है। हिन्दुओं के धर्म को ओछा बतलाता है। बी महताब से भी सेठ का धन अधिक से अधिक हथियाने, उसे अपने काबू में रखने तथा सम्पूर्ण धन आधा आधा बाँट लेने की बात कहता है। धनलिप्सा के वशीभूत होकर ही वह कहता है -" संसार में जन्म लेना सुख भोगने और रुपया कमाने के लिये है। पाप और पुण्य किसी ने देखा नहीं है। सब व्यर्थ की बातें है। मोहनलाल मेरा काठ का उल्लू हाथ लग गया है। थोड़ी तुम्हारी सहायता रहेगी तो मेरा और तुम्हारा घर धन से भर दूँगा। इस काम में शीघ्रता करना चाहिये फिर बाद के जो ऐन है।" २

१- लज्जाराम शर्मा मेहता - धूर्त रसिक लाल पृ० १७-१८

२- लज्जाराम शर्मा मेहता - धूर्त रसिक लाल पृ० २५

छल कपट, वाक्य पटुता वा झूठी सहानुभूति से वह सोहन लाल को अपनी मुट्ठी में कर लेता है। पुराने सभी नौकरों की बुराई कर उन्हें निकलवा देता है जिससे उसका रास्ता साफ हो जाये।

शराब पीना, मास खाना, जुआ खेलना तथा वेश्या गमन आदि बहु दुर्व्यसनों में फँसा कर धीरे धीरे उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपने नाम करवा लेता है। उसका व्यक्तित्व दुहरा है। ऊपर से तो वह सेठ जी को बुरा काम करने से रोकता है पर अन्दर ही अन्दर उनको उसमें फँसाये रखना चाहता है। उसकी कुप्रवृत्ति का परिचय इन वाक्यों से मिल जाता है - " डाक्टर तुम्हारी सलाह ठीक नहीं है अब सेठ जी से शराब नहीं छूट सकता। मद्य छोड़ने से जान जोखो है कोई ऐसा यत्न विचारो जिससे शराब न छूटे। ------------------------------ क्या आपकी नम्रता है मैं एक बार का अपराध क्षमा करता हूं आगे से ऐसा कभी न करना। आपका हानि लाभ आपके हाथ है। हमारे लाभ में विघ्न डालोगे तो पछताओगे। बस कल से ऐसा इलाज करो जिससे सेठ की गर्मी तो मिट जावे परन्तु वह उल्लू बना रहे।"[१]

अपने स्वार्थ के आगे उसे सेठ की जान की भी परवाह नहीं है। स्वार्थ वश ही वह बीमार सेठ का इलाज भी नहीं करने देता। सेठ को दुर्व्यसनों में फँसा उसका अर्थ अधिकार सम्पूर्ण सम्पत्ति नीलाम होने की नौबत ला देता है। सेठ की सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वयं मालिक बन जाता है। और फिर सेठ से सीधे मुंह बात भी नहीं करता। इतने पर भी सतीत्व न खोने पर झूठा, छली, ईर्ष्यालु नमक हराम रसिक लाल उसकी पत्नी को बदनाम करने के लिये नायब मुनीम माधव दास से उसके अवैध संबंध की झूठी कथा गढ़ता है। तथा उसकी स्त्री का वस्त्र आभूषण मकान आदि हरण कर सत्यवती को नौकरानी द्वारा विष दिलाने का प्रयत्न करता है। उसकी अधमता चरमसीमा पर पहुँच जाती है।

धूर्त रसिक लाल के नाम से ही उसके छल होने का आभास मिल जाता है।

१- लज्जाराम शर्मा - धूर्त रसिक लाल पृ० ५७-५८

लेखक ने यथार्थवाद की दृष्टि से ही रसिक लाल जैसे खल की रचना की है। कुसंग के कारण मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है उसे अपने हानि लाभ का ज्ञान नहीं रह जाता। मोहन लाल दुष्ट रसिक लाल की सोहबत के कारण अनेक व्यसनों में फँस कर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति से हाथ धोता है। धन का लालची रसिक अपने मित्र मोहन लाल का धन तो लेता ही है उसे अपंग भी बना देता है। वह मित्र के रूप में खल है। वह निर्दयी, हृदयहीन, लोभी, झूठा एवं हत्यारा है। स्वार्थ वश दुष्ट मनुष्य अपने मनुष्य का किस सीमा तक पतन कर देता है यही दिखाने के लिये धूर्त रसिक लाल की कल्पना की गई है। धन के लोभ में वह पिशाच बन जाता है।

कथानक की दृष्टि से वह प्रमुख खलपात्र है। चरित्र की दृष्टि से स्थिर प्रारम्भ से अन्त तक उसका रूप खल का है। उसके चरित्र में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। खलता की पराकाष्ठा दिखलाने के लिये ही लेखक ने धूर्त रसिक लाल की रचना की है। प्रकृति की दृष्टि से वह सामाजिक है। अपनी दुष्प्रवृत्ति का परिचय वह समाज में ही रह कर देता है। उसकी खलता व्यक्तिगत संबंधों में व्यक्त होती है। रूप की दृष्टि से यथार्थवादी खल है। क्रिया की दृष्टि से अप्रत्यक्ष खल है। अप्रत्यक्ष रूप से वह अपने खलता पूर्ण कार्य में रत रहता है। प्रत्यक्ष रूप से तो वह सेठ मदन मोहन का मित्र बना रहता है पर मन से वह सेठ को दुर्व्यसनों में फँसा कर उसका शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक पतन कर देता है। धन के लोभ ने उसे इतना अंधा बना दिया है कि सेठ का जीवन नष्ट करने, जीकर भी मरने जैसी स्थिति में लाने से बाज नहीं आता। अपराध की दृष्टि से वह अभिज्ञ है। उसका प्रत्येक कार्य सोच समझ कर योजना बनाकर होता है। वह अपने कार्य उसके परिणाम की भयंकरता से भिज्ञ है। वह सर्वाधिक पीड़क खल है। मान्यता की दृष्टि से वह अनिश्चित है क्योंकि वह एक मित्र के रूप में कथा में स्थान पाता है। वह एकमुखी खल है क्योंकि उसकी खलता का केन्द्र-बिन्दु सिर्फ सेठ है। सेठ के धन को हड़पने के लिये ही वह प्रपंच रचता है अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये वह अनेकों खल पात्रों का सहारा लेता है।

प्रेमचन्द के निर्मला उपन्यास में बाबू भाल चन्द्र और डा० सिन्हा खल के

रूप में आये है। बाबू मालचन्द्र और डा० सिन्हा की खलता का सर्व प्रमुख कारण धनलोलुपता है जिसके कारण वह निर्मला जैसी योग्य एवं सुन्दर कन्या से विवाह करने से इन्कार कर देते है क्योंकि निर्मला के पिता बाबू उदयभानुलाल के निधन से धन प्राप्ति की आशा समाप्त हो जाती है इसलिये वह अपने बेटे भुवनमोहन की शादी निर्मला से करने में अनेकों बहाने बनाता है। झूठ बोलता है। निर्मला की माँ कल्याणी के साथ झूठी सहानुभूति दिखाता है,अपनी पत्नी से छल करता है।

बहुत से नौकरों के न रखने पर भी झूठ मूठ उनका नाम लेकर पुकारता है। कंजूस तो इतना था कि नौकरों को कई महीने की तनखाह भी नहीं देता। पंडित जी को भोजन भी नहीं करा सकता। एक आने की मिठाई लाने के लिये कह कर भी न लाने की बात समझा देता है कि बही कहीं बैठे रहना, बहुत देर हो जायेगी तो पंडित जी आप ही सो जायेंगे। पर उस कंजूस की इच्छा पूरी नहीं होती। पंडित जी के मुँह से अपनी कृपणता की बात सुन दस रूपये विदाई में देकर वहपंडित जी का मुँह बन्द कर देता है।

दुष्ट मालचन्द्र चिकनी चुपड़ी बातें कर अपने को दुनिया का सबसे रहम-दिल आदमी सिद्ध करता है। दहेज-प्रथा को बुरा बताता है जबकि दहेज के कारण ही वह निर्मला के साथ अपने बेटे की शादी नहीं करता। अपने को निर्दोष साबित कर निर्मला की माँ कल्याणी पर यह दोष लगाते उन्हें शर्म नहीं आती कि "वह छँटी हुई औरत है पति की सारी सम्पत्ति छिपा कर रखा है और अपनी गरीबी का ढोंग रचकर काम निकालना चाहती है आदि आदि।" झूठी और व्यर्थ की बातें समझा कर अपनी स्त्री रंगीली को वहाँ ब्याह न करने के लिये राजी कर लेता है। उसकी पत्नी जब उसकी लोभ प्रवृति को पहचान जाती है तो शर्म को छिपाने के लिये महात्माओं द्वारा स्त्री जाति की उपेक्षा की बात को महत्व देने लगते है।

बाबू माल चन्द के व्यक्तित्व के बारे मे, लेखक की राय है कि वह बहुत ही स्थूल,ऊँचे कद के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है या कोई हब्शी अफ्रिका से पकड़ कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रंग था - काला।

चेहरा इतना स्याह था कि न मालूम होता था कि माथे का अन्त कहाँ है और सिर का आरम्भ कहाँ । बस कोयले की एक सजीव मूर्ति थी । आपको गर्मी बहुत सताती थी । दो आदमी खड़े पंखा झल रहे थे उस पर भी पसीने का तार बँधा हुआ था । आप आबकारी के विभाग में एक ऊँचे ओहदे पर थे । ५००) वेतन मिलता था । ठेकेदारों से खूब रिश्वत लेते थे । ठेकेदार शराब के नाम पर पानी बेचे , चौबीसों घंटे दुकान खुली रखे, आपको खुश रखना काफी था । सारा कानून आपकी खुशी थी। इतनी भयंकर मूर्ति थी कि चाँदनी रात में लोग उन्हें देख कर सहसा चौंक पड़ते थे । बालक और स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष तक सहम जाते थे । चाँदनी रात इसलिये कहा गया है कि अंधेरी रात में तो उन्हें कोई देख ही न सकता था - श्यामता अंधकार में विलीन हो जाती थी । केवल आँखों का रंग लाल था । जैसे पक्का मुसलमान पाँचबार नमाज पढ़ता है वैसे ही आप भी पाँच बार शराब पीते थे । मुफ्त की शराब तो काजी को हलाल है , फिर आप तो शराब के अफसर ही थे जितनी चाहे पिये कोई हाथ पकड़ने वाला न था । जब प्यास लगती शराब पी लेते । जैसे कुछ रंगों में परस्पर सहानुभूति है उसी तरह कुछ रंगों में परस्पर विरोध है । लालिमा के संयोग से कालिमा और भी भयंकर हो जाती है ।" [१]

लेखक के इस विचार से भालचन्द्र का सम्पूर्ण कलुषपूर्ण व्यक्तित्व प्रगट हो जाता है ।मनुष्यता तो उसके चरित्र में है ही नहीं । विधवा कल्याणी की दयनीय दशा पर भी उसे तरस नहीं आता ।

लालची बेटे डा० सिन्हा की धनलोलुप प्रवृत्ति का परिचय उसके इस कथन से मिल जाता है -" कहीं ऐसी जगह शादी करवाइये कि खूब रुपये मिलें, और न सही एक लाख का तो डौल हो । वहाँ अब क्या रखा है । वकील साहब रहे ही नहीं बुढ़िया के पास अब क्या होगा । ---------- मैं जायदाद नहीं चाहता बस एक

१- प्रेम चन्द्र - निर्मला पृ० १६-२०-सं० १६६२

लाख नगद हो या फिर कोई ऐसी जायदाद वाली बेवा मिले जिसकी एक ही लड़की हो। मां के पूछने पर कि औरत चाहे जैसी हो वह कह देता है।" धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियां भी सुनाये तो चू न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है।" [१]

धन के मोह में ही वह निर्मला का जीवन बरबाद कर देता है। अपनी धन पिपासा के कारण ही वह समाज में ऐसी कुरीति को प्रश्रय देता है (जैसे अनमेल विवाह) जो समाज तथा व्यक्ति विशेष के लिये दुःखदायी है।

अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को दिखाने के लिये ही लेखक ने मोटे-चन्द या डा० सिन्हा जैसे खलों की रचना की। यथार्थ में धन के लोभ में मनुष्य इतना अंधा हो जाता है कि उचित अनुचित का ध्यान नहीं रह जाता। उसका हृदय कठोर, स्वार्थी, लोभी एवं कपटी हो जाता है। लोभी प्रवृत्ति के मनुष्य का चित्र उपस्थित करने के लिये ही मोटेचन्द्र जैसे खल की कल्पना की गई है।

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'बलिदान' उपन्यास का खल पात्र 'कन्हाई' ऐय्याशी होने के कारण अपने घर की सम्पूर्ण सम्पत्ति फूंक डालता है। मां और पत्नी की परवाह नहीं करता। हीरे की लालच में अपने गुरु की हत्या तक कर देता है। खत्री जी ने लोभ एवं विलासिता के विनाशकारी रूप का चित्रण करने के लिये ही कन्हाई जैसे खल की सृष्टि की है।

दुर्गाप्रसाद खत्री के जासूसी उपन्यास 'लाल पंजा' का खलपात्र नायक चन्द्र है जो कामिनी को उड़ा कर अपनी कामवासना को तृप्त करना चाहता है। वह धूर्त चतुर, खुशामदी, मक्कार, और दुष्ट है। चापलूसी और जी हजूरी की कला में निपुण है। लालपंजा जैसा कि नाम से ही विदित होता है कुछ ऐसों का गिरोह है जो लाल पंजे के नाम से प्रसिद्ध है। ये दुष्ट लोग एक कागज में लालस्याही से पंजे का निशान बना कर मृत्यु का भय दिखा कर रईसों का धन लूटते हैं इसमें लेखक ने लाल पंजे के कारनामों का जासूस कैमिल साहब के उन लाल पंजों के बारे में पता लगाने के तरीकों

१- प्रेमचन्द - निर्मला पृ० १६६

का वर्णन किया है । जासूस लोग किस प्रकार अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा खलपात्रों के प्रत्येक रहस्य का उद्घाटन करते है, यही दिखाने का प्रयत्न किया है ।

गोपाल राम गहमरी के जासूसी उपन्यास " खटना घटा लोप या जमींदारों का जुल्म " का खलपात्र सांवलसिंह बदमाशों का सरदार है । वह मक्कू चौधरी का सब कुछ हथिया लेने पर भी सन्तुष्ट नहीं है । रानी नयना कुंवरि की कन्या से अपने जाल पुत्र का ब्याह करके उनकी जायदाद भी हड़प कर लेना चाहता है लेकिन जब रानी कालासिंह से ब्याह करने के लिये राजी नहीं होती तब वह उसे चालाकी से घर ले जाकर राक्षस विवाह करने की कोशिश करता है ताकि रानी की सारी जायदाद उसे मिल जाये । वह चौधरी मन्नू पांडे के समधी भानु प्रताप का भी सर्वनाश करना चाहता है । कुँवर सूर्य प्रताप और मन्नू पांडे दोनों की स्त्रियों पर संकट लाने की कोशिश करता है । सांवल सिंह मन्नू को अपने वश में करके उससे मनमानी पाप कराता है । सांवलसिंह के कहने से ही मन्नू अपने इकलौते बेटे बन्नू को त्याज्य पुत्र घोषित कर देता है और नकली सांवल सिंह के बेटे कालासिंह को गोद ले लेता है तात्पर्य यह कि धन के लोभ में मानवीय सम्बन्धों की कोमलता का भी हनन करने में संकोच नहीं करता ।

जासूस की डाली का खलपात्र 'रज्जाक' भी धन के लोभ में ही वह अपने बहनोई मुबारक को खून कर देता है और उसके सारे कागजात दस्तावेज लेकर भाग जाता है । रज्जाक कसाई है इसलिये खून करना उसके लिये मुश्किल नहीं । दुष्ट रज्जाक धन के लोभ में मुबारक को खूब शराब पिला कर उसके दोस्त अमीरका अलस्टर कोट पहनकर गाड़ी में मुबारक का खूनकर देता है और स्वयं भाग जाता है । उसे अपने पाप की सजा फाँसी रूप में प्राप्त होती है।

गोपालराम गहमरी के जासूस की डाली उपन्यास का खलपात्र सरदार गटकुल्लो खां है । वह पार्लमिन्ट के मशहूर एम० पी० फाउलर साहब बहादुर का खान सामा है । फाउलर साहब की सोने की चेन लगी घड़ी चुरा लेता है । पुलिस सब इन्स्पैक्टर मुहम्मद सलर साहब जब उससे पूछते हैं कि तुमने घड़ी देखी तो वह साफ इंकार कर देता है । उसमें विवेकबुद्धि का अभाव है । अपने साथी राम सेलावन पर वह इतना

धांधक विश्वास करता है कि अपने वास्तविक चरित्र को स्वयं प्रगट कर देता है ।मकल--
" हमने भी एक घड़ी और बैग पर हाथ मारा है । माल हजारों का है, इसी से हम चाहते है कि उस साधु का दरसन करें ।" [१] घड़ी चोरी करके वह साहब की नौकरी छोड़ना नहीं चाहता क्योंकि वह जानता है कि नौकरी छोड़ देने से साहब को हम पर शक हो जायेगा । राम खेलावन जब फाउलर साहब की प्रशंसा करता है तो वह उसका समर्थन करते हुये कहता है - हाँ तिवारी बात तो असल में यही है । हम लोगों का दिल बहुत ऊँचा होता है । देखो अभी महीने दिन से हम इनके पास है लेकिन हमारे ऊपर सब छोड़ दिया है । इनकी घड़ी चोरी गई है लेकिन हमारे ऊपर ख्वाब में भी शक नहीं हुआ इनको ।" [२]

चोरी का माल छिपाने के लिये वह कठिन से कठिन परिश्रम करने को तैयार है इसीलिये राम खेलावन जब साधु बाबा द्वारा चोरी के माल की सुरक्षा की बात कहता है तो वह उनके पास जाने को तत्पर हो जाता है । उसके मन की कमजोरी प्रगट हो जाती है जब वह बाबा को देखकर कापने लगता है । अदूरदर्शिता के कारण ही वह पकड़ा जाता है

बालकृष्ण भट्ट वंशीधर शास्त्री के 'मोहिनीमौहनी' उपन्यास का पात्र दुर्जन लाल खल है । उसकी खलता का सर्व प्रमुख कारण है भोगलोलुपता और ऐय्याशी । उसकी खलता का परिचय उसके नाम से,काम से , लेखक के शब्दों से और अन्य पात्रों द्वारा की गई आलोचना से भी मिल जाता है । अमर सिंह राठौर की पुत्री मोहनी के साथ जब उसके विवाह की चर्चा चलती है तो मोहनी के कथन से उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है-जिसे रूप नहीं,गुण नहीं, ज्ञान नहीं, शौर्य नहीं, धैर्य साहस आदि क्षत्रियोचित गुण का जो लेश भी नहीं रखता जो सदैव अफीम शराब और दुर्व्यसनो में चूर रहता है, ऐसे नर-पिशाच को अपना पति अपना ईश्वर मानने का मुख पर प्रसंग आयेगा ? ऐसे दुर्जन की गृहणी

१- गोपाल राम गहमरी --जासूस की डाली पृ० २९

२- गोपाल राम गहमरी - जासूस की डाली पृ० ३०

टहलनी मुझे होना पड़ेगा न ?"[1] मद्यसेवी, वेश्या प्रेमी, कुलांगार, नराधम, दुश्चरित्र दुर्जनसाल अमरसिंह राठौर की पुत्री मोहिनी से सिर्फ धन के मोह में शादी करना चाहता है । उसकी धनलोलुपता का परिचय इन शब्दों से मिलता है - "और भाई मैं उसके साथ आने वाले डेढ़ लाख को चाहता हूँ। विवाह करने के बाद उसे पूछता कौन है ? पर उसके साथ आती हुई लक्ष्मी को क्यों राह बताऊँ?"[2] वस्तुत: मोहिनी से विवाह करने में दुर्जनसाल का उद्देश्य मोहिनी की सम्पत्ति प्राप्त करना है । मोहिनी से उसे सच्चा प्रेम नहीं है उसका कथन "दो चार हजार खर्च करने से डेढ़ लाख घर में आते हैं तो कौन सा नुकसान है ?"[3]

कपटी अपना मतलब हल करने के लिए मोहिनी के हाथ पैर तक जोड़ने को तैयार हो जाता है । चापलूस दुर्जनसाल पैसे के बल पर नौकरों लौंडियों और नैसी कुटनी से मिलकर मोहिनी को फँसाने के लिए अपना जाल फैलाना चाहता है । धन का लोभ, अपनी प्रतिभा का मिथ्या प्रदर्शन आदि उसके जाल के ताने बाने हैं जो उसकी दुष्ट प्रवृत्ति के द्योतक हैं ।

दुर्जनसाल स्वास्थ्य से भी क्षीण थे ।[4] लेखक के शब्दों में दुर्जनसाल का चरित्र प्रगट हो जाता है - "दुर्जनसाल केवल नाम से ही दुर्जन नहीं थे कृति से भी दुर्जन ही थे । अहंकार, दुर्व्यसन, मत्सर, कापट्य, कुत्सित स्वभाव, नीच स्वार्थपरायणता आदि परोत्कर्ष असहिष्णुता आदि दुर्गुण मानों संसार में जनमते ही अपने साथ ले आये थे । "[5]

उसके चरित्र को स्पष्ट करने के लिए लेखक पूत के लक्षण पालने में, बकरी के जाये तीन राजपूतनी के जाये दो, दीपक से काजल प्रगट आदि मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी करता है ।

पिता की मृत्यु के बाद उनकी सरदारी बड़े भाई सज्जनसिंह को मिलेगी इस ख्याल से वह उनसे द्वेष रखता है और मान प्रतिष्ठा प्राप्त करने के

१- बालकृष्ण दामोदर शास्त्री - महेन्द्र मोहिनी पृ० २३ सं० १६२१
२- ,, ,, ,, - ,, ,, पृ० २३२
३- ,, ,, ,, - ,, ,, पृ० २३५
४- "भला तुम ही सोचो कि जिसकी बत्तीसी निकल जाय, वह रोटी को किस तरह चबायेगा?" पृ० ६६
५- बालकृष्ण दामोदर शास्त्री - महेन्द्र मोहिनी पृ० ८४

विचार से उन्हें मार डालने के लिए वह अनेक प्रयत्न भी करता है । पिता की मृत्यु के बाद वह अपने [illegible] नाम का पंचायतन स्थापित करता है जिसमें दुर्जनसाल जैसे " समानशीले व्यसनेषु सख्यम् " गुलाबसिंह, करमसिंह मोहनसिंह और नाहरसिंह आदि दुष्ट मित्र शामिल रहते हैं ।

दुर्जन साल इतना नीच और धनलोलुप है कि मानवता की उपेक्षा करने में उसे जरा भी सोचने विचारने की आवश्यकता नहीं पड़ती । शूरसिंह के पुत्र महेन्द्रसिंह और मोहिनी के प्रेम को जानकर वह महेन्द्र को अनेकों कष्ट पहुँचाता है । छलवश शूरसिंह को भी पुत्र के प्रति भड़काता है । ढोंगी दुर्जनसाल में चतुरता कूट कूट कर भरी है । अपनी दूरदर्शिता के कारण ही वह अपने मित्रों को अपने से कुछ दिन के लिए अलग कर देता है । प्रत्यक्ष में उनसे कोई व्यवहार नहीं रखता ताकि अमरसिंह को उसके सुधरने का पता लग जाये और वह उसकी शादी मोहिनी के साथ कर दे ।

दुर्जन साल स्वभाव से ही दुष्ट है । स्वार्थ सिद्ध न होने पर वह मोहिनी पर दुश्चरित्रता तथा बाजारू वेश्या होने का आरोप करता है । मोहिनी के प्रति उसके मन में आदर का भाव नहीं है जिसे पत्नी बनाना चाहता है। उस पर ही लांछन लगाता है, यो उसकी क्रूरता है किन्तु प्रायः पापी दुर्बल मन होता है और उसका नैतिक साहस उतनी ही दूर जाता है जहाँ तक वह समाज को धोखे में रख सके । वह निरन्तर सशंक और भयभीत रहता है और ऐसी स्थिति में कभी कभी अपने ही मुँह से अपने अपराध को प्रगट भी कर देता है । लेखक का कथन है - " पापियों का चित्त सदैव सशंकित ही रहा करता है । यद्यपि वे कोई पाप गुप्त रीति से करें परन्तु किसी ने देखा तो नहीं यह शंका उनको सदा लगी रहती है । यद्यपि वे अपने चित्त को स्थिर रखने का प्रयत्न करते हैं तथापि भण्डा फूट जाने के डर से वह जबरदस्ती की स्थिरता टिकी नहीं रहती और उनका पाप उन्हीं के मुँह से फूट पड़ता है ।" [1]

१- बालकृष्ण दामोदर शास्त्री - महेन्द्र मोहिनी पृ० २६६

यथार्थवाद की दृष्टि से लेखक ने दुर्जनलाल जैसे खल की रचना की है। वह संस्कार से ही खल है। लेखक प्रारम्भ से अन्त तक उसे खल ही बना रहने देता है। पश्चाताप् या सुधार की भावना उसके मन में उत्पन्न ही नहीं होती। वह जो भी पाप करता है वह जान बूझ कर, सोच समझ कर करता है इसलिए वह अभिज्ञ खल है।

श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश के 'बहता पानी' उपन्यास का 'शिवप्रसाद' भी चरित्रहीन खल है। उसकी खलता का प्रमुख कारण है धन-लोलुपता, पद-लोलुपता और अनैतिकता है।

लेखक शिव प्रसाद के चरित्र को उद्घाटित करता हुआ कहता है कि " स्त्री की अपेक्षा धन का मूल्य उनकी आँख में अधिक था, उनका मत था कि धन और ऐश्वर्य वह पेड़ है जिससे स्त्री रूपी लता लिपटती है, इसकारण वे अमरीका जाकर अपनी पद वृद्धि के अवसर को खो नहीं सकते थे।"[1] स्वार्थी 'शिवप्रसाद' धन के मोह में धर्म परिवर्तन तक कर लेता है यहाँ हिन्दू से ईसाई हो जाता है और ईसाई धर्म के प्रचार के लिए अमरीका तक जाता है। अमेरिका से लौटने पर ईसाइयों ने उन्हें किसी कालेज का प्रिंसिपल नहीं बनाया इसलिए वह आर्य समाजी बन जाता है, धर्म के क्षेत्र में भी खलता करता है। धन प्राप्ति के लिए वह कोई भी अनुचित, अनैतिक कर्म करने के लिए तैयार रहता है। लोभ ने उसके ज्ञान चक्षु को आच्छादित कर रखा था इसलिए धन को ही वह सबसे अधिक महत्त्व प्रदान करता है। धनलोलुपता के अतिरिक्त कामुकता भी उसके चरित्र का प्रधान दुर्गुण है। उसकी कामुक प्रवृत्ति का परिचय कमला के शब्दों से मिल जाता है - 'इस ढोंगी अवस्था के पुतले को यो देखो कैसी विडम्बना ?| कैसा गहरा ज्ञान प्रदर्शन !!!----------और जितनी भी कुमारियाँ मिल सकें उनका जीवन नष्ट करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाना चाहते हैं, बनारस के थियासोफिकल सर्किल

1- श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश - बहता पानी पृ० २६२

कालेज की न जाने कितनी लड़कियों को उन्होंने विपथगामी बना दिया ।[१]

शिवप्रसाद बुद्धिमान और शिक्षित होते हुये भी दुराचारी है । अपने बुद्धिकौशल के द्वारा ही सबको वश में करके अपना स्वार्थसिद्ध करता है । अपराध के प्रत्येक चरण से भिज्ञ होने के कारण भी वह अपने को सदाचारी होने का ढोंग रचता है । उसका चरित्र धूर्तता, छल कपट एवं फरेब से आच्छादित है ।

[illegible]

प्रेमचन्द के 'प्रतिज्ञा' उपन्यास का खलपात्र 'कमलाप्रसाद चरित्रहीन, कामुक, कृपण, हृदयहीन, क्रोधी , ढोंगी, निर्दयी, ईर्ष्यालु, चापलूस आदि रूपों में प्रगट होता है । उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण था परिस्थिति जिसने उसे खल बना दिया ।

उच्च शिक्षा का उसकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं था । उसका विचार था कि अधिक पढ़ने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । कंजूस कमला प्रसाद अपने पैसों से कभी कोई चीज नहीं खरीदता था उसकी दृष्टि हमेशा दूसरे के धन पर ही लगी रहती थी । यही कारण था कि भिखारी को देख कर वह डंडा उठाकर मारने दौड़ता है ।

स्वार्थी कमला प्रसाद पूर्णा के नाम चार हजार रुपये जमा करने की बात सुन उसे भेंट डाल देने के विचार से प्रातः काल ही उसके घर जाता है पर पूर्णा के असीम सौन्दर्य को देख कर उसे अपनी कुटिलता एवं स्वार्थपरता पर ग्लानि होती है साथ ही उसकी कुत्सित वासना भी जाग्रत हो उठती है । पूर्णा की असहाय अवस्था में भी वह निस्वार्थ भाव से उसकी सहायता नहीं करता।

१- श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश - गहरा पानी पृ० १५६

ढोंगी कमलाप्रसाद पूर्णा को वश में करने के लिए अपनी पत्नी सुमित्रा की बुराई करता है, अपने को संसार का सबसे दु:खी एवं अभागा प्राणी बताता है। तरह तरह की चिकनी चुपड़ी बातें करके पूर्णा की दृष्टि में वह उसका सबसे बड़ा सहायक बन बैठता है पर उसे यह पता नहीं था कि कमला की यह सहानुभूति 'उसे उबारने वाली नौका नहीं वरन् एक विचित्र जीव जन्तु है, जो उसकी आत्मा को निगल जायेगा।'[1] वह अपने जैसा ढोंगी सबको समझता है इसलिए अमृतराय द्वारा खोले गये वनिता आश्रम को वह रुपया कमाने का नया ढंग बताता है।

ढोंगी कमला प्रसाद प्रगट रूप में तो साधु पुरुष बनने का ढोंग रचता है पर अन्दर ही अन्दर उसकी पाशविकता पनपती रहती है। लाख छुपाने पर भी उसकी प्रवृत्ति पत्नी से गुप्त नहीं रह पाती इसलिए वह स्पष्ट रूप से कहती है-'ऐसे लोग बाहर नहीं जाते घर पर ही अपनी कामप्रवृत्ति को तृप्त करते हैं जिसमें पैसे और समाज का डर नहीं रहता।' सुमित्रा के इन शब्दों से कमला प्रसाद का वास्तविक चरित्र प्रकाश में आ जाता है।

विधवा पूर्णा को धोखे से बगीचे में ले जाकर उसका सतीत्व नष्ट करना चाहता है। अपने और पूर्णा के सम्पर्क को ईश्वर की कृपा बताता है तथा पूर्णा को वश में करने के लिए आत्महत्या की बात कहता है। पूर्णा के द्वारा घायल हो जाने से अपने पाप को छिपाने के लिए उल्टे पूर्णा पर दोषारोपण करता है कि वह दुष्टों से मिली थी और मुझे गुण्डों से पिटवाया। जब कि वास्तविकता इसके विपरीत होती है।

कमला प्रसाद की रचना में लेखक का उद्देश्य यह दिखलाना है कि दुष्ट व्यक्ति किस प्रकार अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए अमृतराय जैसे आदर्श पुरुष की निंदा क करता है उनके शुभ प्रयासों को असफल होने में विघ्न उत्पन्न करता है। वातावरण और परिस्थिति उसके मन में छिपे कुत्सित विचारों को जाग्रत करने में कहाँ तक सहायता प्रदान करती है, उनकी चपेट में मनुष्य किस प्रकार विवेक बुद्धि से काम न कर

१- प्रेमचन्द - प्रतिज्ञा पृ० २७

पतन की ओर अग्रसर होता हुआ बुरे से बुरे काम करता है । अपनी दुष्ट प्रवृत्ति लज्जा आदि को छिपाने के लिए उलटे दूसरे पर दोषारोपण कर अपने को दुनियाँ के सामने एक सभ्य पुरुष के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है पर उसकी दुष्टता छिप नहीं पाती और वह जनसाधारण की दृष्टि में हेय समझा जाने लगता है । कुछ समय के लिए वह भले ही अपने को विजयी घोषित कर दे पर अन्त में हार उसी की होती है ।

अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए वह झूठ , छल,कपट,धोखा,दुराव,विश्वासघात,बलात्कार,बहाना,आडम्बर,मिथ्यासाक्ष्य,[illegible] दोषारोपण आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है । अमृतराय के आदर्श चरित्र को उभारने के लिए ही लेखक ने कमला प्रसाद जैसे खल की कल्पना की है ।

निराला जी के निरूपमा उपन्यास का पात्र यामिनी बाबू खल है । यामिनी बाबू की खलता का कारण धन लोलुपता है । नीरु जमींदार है । नीरु की जमींदारी के लोभ में विवाहित होते हुये भी वह अपने को अविवाहित साबित करने की कोशिश करता है । निरुपमा से विवाह करने के लिए वह योगेश बाबू को भी अपनी ओर मिला लेता है ।

शिक्षित (लन्दन विश्वविद्यालय डी०लिट०)ब्राह्मण कुमार को जूता पालिश करते देख उपकार के स्वर में पूछते हुये 'तुम कौन हो' उनका अहं प्रगट होता है । उसका अपमान करने के लिए ही चवन्नी फेंक कर बाहर में बुला कर काम देने की बात कहता है । अनेक स्थलों पर वह उपन्यास नायक कुमार का अपमान करता है । योगेश बाबू को अपनी तरफ मिलाने के लिए वह अनेकों बार झूठ बोलता है ।

लेखक ने यामिनी बाबू को यथार्थवाद की दृष्टि से कथा में स्थान दिया है । समाज में शिक्षित एवं बुद्धिमान व्यक्ति की उपेक्षा, और दुष्प्रवृत्ति, दुराचारी व्यक्ति को यथार्थ रूप से दिखाने के लिए यामिनी बाबू जैसे खल की रचना की।

प्रकृति से खल :

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक के 'माँ' उपन्यास का खलपात्र 'विश्वनाथ बाबू' स्वभाव से तथा संस्कार दोनों से खल है । उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण था

चरित्र हीनता । स्त्री के होते हुये भी वह वेश्यागामी है । चापलूस तो इतना है कि श्याम को अपने फंदे में फंसाने के लिए उसकी झूठी प्रशंसा करता है । वह पेशेवर खल है । रईस के बच्चों को अनेक व्यसनों में फँसा कर वह स्वयं ऐश करता है । लेखक यह दिखाना चाहता है कि यथार्थ में समाज में ऐसे दुष्ट लोग वास करते हैं जो अच्छे घर के लड़कों को बहकाने, बुरी आदत सिखाने, अनेकों व्यसनों में फंसा कर अपना उल्लू सीधा करने से बाज नहीं आते । दूसरों का जीवन नष्ट करने में ही उन्हें सुख का अनुभव होता है । विश्वनाथ बाबू ऐसा ही खल है ।

दुष्ट विश्वनाथ अपने मित्र श्याम को अपनी कुसंगति से वेश्यागामी बना देता है । कुपथ पर ले जाने के लिए वह श्याम को नये नये प्रलोभन देता है । काइयांपन तो उसकी नस नस में भरा है । इन शब्दों में उसका सम्पूर्ण चरित्र प्रगट हो जाता है- 'एक नया पन्छी आया है, देखोगे तो लोट पोट हो जाओगे। क्या चौकी में घुसे अंडे से रहे हो - जरा चमन की हवा खाओ । देखो तो कैसे कैसे गुल खिल रहे हैं । मियां घर की मुर्गी तो दाल बराबर होती है, जायका बाहर की ही मुर्गी में आता है । समझे चोंगानंद ?'[1]

वेश्याई, चापलूसी, काइयांपन, की तो वह मूर्ति है । उसका चरित्र इन शब्दों में भी प्रगट हो जाता है - 'तोबा तुम्हारे नखरे निगोड़े से - शैतान का चेला है।'[2]

धृ धृष्ट नायक के समस्त गुण उसमें विद्यमान है । लात जूतों या गालियों की उसे परवाह नहीं, अपनी इच्छा पूर्ति के लिए वह बार बार वही कार्य करता है जिससे स्वार्थ सिद्ध हो । केशव ने रसिक प्रिया में धृष्ट नायक का वर्णन किया है :-

लाज न गारिहु मार की, छाड़ि दई सब त्रास ।
देख्यौ दोष न मानही, धृष्ट सु कहिये तास ।।[3]

१- विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक - माँ पृ० १७१, १७४
२- ,, ,, ,, ,, - ,, पृ० २४८
३- केशव दास - रसिक प्रिया पृ० १८

शर्म या इज्जत नाम की चीज से वह अनभिज्ञ है । गोकुल प्रसाद के शब्दों में उसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है -"पिटे भी होगे,तो तुम भला बताने क्यों लगे । -------- यदि तुम कहो पिटो तो धूल झाड़ के चुपचाप घर चले जाओ,और दूसरे दिन फिर वहीं जाओ । जिस पर तुम्हारा दाँत लग जाय उसे फिर तुम सहज में नहीं छोड़ सकते,उसका बचना कठिन ही है,चाहे मार पड़े , चाहे जूते ।"[1]

स्त्री का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं इसलिए कहता है-"यहाँ तो आज तक कभी ~~इस~~ जोरू की परवा ही नहीं की । जो अपने जी में आया वह किया । क्या मजाल जो कभी जोरू चूं तक कर दे ।"[2]

श्यामनाथ को फँसाने के लिए वह इस प्रकार की झूठी लम्बी बातें करता है । ऐसा खर्च न करने पर वह यह दलील पेश करता है कि किसी का दिमाग सर्द होता है,किसी का गरम ।

विश्वनाथ दास की संगत में पड़ कर श्यामनाथ वा गोकुल प्रसाद दोनों पथ भ्रष्ट हो जाते हैं । लेखक यह दिखाना चाहता है कि अपने बुरे स्वभाव के कारण वह दूसरों का कितना नैतिक पतन करा देता है । अपने स्वार्थ के आगे उसे दूसरे का जीवन,घर,इज्जत या सम्पत्ति नष्ट होने की चिंता नहीं । अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए वह अप्रत्यक्ष रुप से झूठ,छल,कपट,धोखा,दुराव,चापलूसी,बहाना आदि अस्त्रों का प्रयोग करता है । वृंदावनलाल वर्मा के 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास का 'रामदयाल' खल के रुप में कथा में प्रविष्ट करता है ।रामदयाल पतित भ्रष्ट और स्वामी भक्त नौकर है । संस्कार से ही खल होने के कारण उसका प्रत्येक कार्य अनैतिक है। चतुर होने पर भी उसमें हित व अनहित का निर्णय करने की सामर्थ्य नहीं । वह बेंदी का लोटा है । परिस्थितियों के साथ उसका जीवन घूमता है । अकारण ही वह दिलीपनगर के राजा मंत्री आदि से लड़ता करता है । अपने बीमार राजा के लिए अनुचित ढंग से वासना पूर्ति का साधन जुटाने में उसकी कुटिलता प्रगट होती है ।विराटा की पद्मिनी के रुप की प्रशंसा करके उसे महल में ला रखने की बात कहता है। देवीसिंह के प्रति छोटी रानी को भड़काने,झूठी लम्बी बातें गढ़ कर देवी सिंह की पत्नी का विद्रोही बनने तथा विराटा के मंदिर में स्वतंत्रतापूर्वक घूमने,कुमुद और कुंजर सिंह के

1- विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक - माँ पृ० १७७ सप्तमावृत्ति सं०२०१८ वि०
2- ,, ,, ,, ,, - ,, पृ० १५०

प्रेम का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने आदि में उसकी चतुरता,धूर्तता एवं पाजीपन स्पष्ट हो जाता है । 'घर का भेदी लंका ढावै''इस तरफ' की बात उस तरफ' लगाना यही उसकी मनोवृत्ति है । वह दुमुहा है अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए दोनों तरफ मिलने की कोशिश करता है । उसके चरित्र की विशेषता है अविश्वसनीयता, उसे किसी पर विश्वास नहीं । उसमें स्थिरता नहीं है । नीच राम दयाल अपनी दुष्ट प्रकृति के द्वारा अलीमर्दान को कुमुद को प्राप्त करने के लिए उभारता है ।

कनखियों से देखना,कुटिलतापूर्वक हँसना आदि मुद्रायें उसके दुष्ट चरित्र की अभिव्यक्ति है । चतुर भी,व्यवहार कुशल तो इतना अधिक है कि अपनी चिकनी चुपड़ी झूठी सच्ची बातों से सबका विश्वास प्राप्त कर लेता है । वह अग्रसोची सुभाषित है । उत्तेजना के वशीभूत होकर वह कोई भी काम नहीं करता । उसके कथोपकथन में संयम एवं चातुर्य है । गोमती के साथ प्रेम का अभिनय करने और धोखा देकर उसे अलीमर्दान की छावनी में ले जाने जैसा जघन्य पाप करता है । उसमें दुष्ट नायक के समस्त गुण विद्यमान है :-

दोष भरो प्रत्यक्ष ही सदा करै अपकृष्ट ।
सहै मार गारी रहै निलज भाई परिदुष्ट ।।[१]

दुष्ट नायक का क्षेत्र यद्यपि केवल काम तक सीमित रहता है पर इसका क्षेत्र काम नहीं है चारित्रिक गुण है दुष्ट रामदयाल अपने इसी स्वभाव के कारण कुंजरसिंह की डाट फटकार या गाली को भी अपने हित के लिए बिना किसी प्रतिवाद के सह लेता है । और अपने षड्यंत्र में लगा रहता है । उपन्यास में खलपात्र की भूमिका निभाने वाला सबसे प्रबल पात्र होते हुये भी गतिशील है । परिस्थितियाँ उसके चरित्र और चातुर्य को उभारती है । उसका चरित्र उसके कार्यों तथा अन्य पात्रों की आलोचना से स्पष्ट हो जाता है । कुंजर सिंह के शब्दों में -"रामदयाल पिशाच है उसकी पैशाचिकता को देवीसिंह नहीं समझता । गोमती उसे बिल्कुल नहीं पहचानती । वह क्यों आया है ? अवश्य अलीमर्दान का भेदी है । निःसंदेह कुछ उत्पात खड़ा करेगा । शायद विराटा को ध्वस्त करने की चिन्ता में हो ।'[२]

१- देवकविकृत - भावविलास पृ० १०० हिन्दी दशरूपक - भोला शंकर व्यास
२- वृन्दावन लाल वर्मा- विराटा की पद्मिनी पृ० ४०६

छोटी रानी के षडयंत्र का आधार स्तम्भ है । लोचनसिंह द्वारा पकड़ लिये जाने पर भी वह अपने को युद्ध से अलग बतलाता है । लोचनसिंह उसे लात मार कर कहता है -"जो जन्म भर किया है वही किया कर नीच " ।[१] रामदयाल एक चट्टान पर से भरभरा कर पत्थरों से टकराता हुआ बेतवा की धार में हमेशा के लिये तिरोहित हो जाता है । इस पात्र में लेखक की पाप के में पराजय की भावना स्पष्ट हो जाती है ऐसे पात्र को पतित होता हुआ देखकर लेखक संतोष करता है ।

रामदयाल को लेखक ने यथार्थवाद को दृष्टि से रखा है । रामदयाल नौकर जैसे खलपात्र के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि अधिक विश्वासी और स्वामी भक्त नौकर भी अपने मालिक , देश, परिवार और समाज को कभी कभी नष्ट कर देते हैं । रामदयाल के व्यक्तित्व में खलता की अवतारणा करते हुये लेखक के मन में सम्भवत: यह धारणा है कि निम्न जाति के नौकर कभी कभी अपने बुरे संस्कारों के कारण नीच कृत्यों के द्वारा उस परिवार को भी पीड़ित कर देते हैं जिससे वे संबद्ध हैं । मालिक के विश्वास को वे धोखे से प्रतिदान करते हैं । अपने ओछे स्वार्थों की पूर्ति के लिए वह मालिक को ही पतन के गर्त में ढकेलने से संकोच नहीं करते । मनोवैज्ञानिक इस प्रकार की प्रवृत्तियों का मूल ईर्ष्या में पाते हैं । भारत के मध्ययुगीन इतिहास में राजनैतिक दावपेचों के बीच इस प्रकार के पात्र बहुत देखने में आते हैं । अत: रामदयाल की रचना में दोनों ही आधार सिद्ध होते हैं एक तो ऐतिहासिक प्रमाण दूसरे मनोवैज्ञानिक प्रमाण ।

देवकी नन्दन खत्री के "भी खत्रा बार " उपन्यास के पात्र मिस्टर और मिसेज बिल्ली 'खल के रूप में सामने आते हैं । मिस्टर और मिसेज बिल्ली लन्दन से आकर कलकत्ते में बस जाते हैं और अपने मित्र सिन्हा के साथ कार्य व्यापार शुरू करते हैं । पहले लोगों से मेल जोल स्थापित करते हैं और यह पता लगा लेते हैं कि वह अपना सामान कहाँ रखते हैं । जब वह घंटे दो घंटे के लिए कहीं जाते तो वह उनका सामान गायब कर देते थे उनके पास विभिन्न प्रकार की तालियाँ थीं जिससे उनका काम आसानी से हो जाता था ।

१- वृंदावन लाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी पृ० ४०५

मिस्टर और मिसेज बिल्ली को लेखक ने यथार्थ वाद की दृष्टि से रखा है। लेखक यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि समाज में सभ्य कहलाने वाले मनुष्य अपरोक्ष रूप से किस किस प्रकार छलता करते हैं और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करके लोगों को दु:ख पहुँचाते हैं। छलता कितने विविध रूपों में की जा सकती है यही दिखाना लेखक का मुख्य उद्देश्य है। सभ्यता की आड़ में लोगों को ठगने का नया तरीका मिस्टर और मिसेज बिल्ली के चरित्र से विदित हो जाता है।

सफेदपोश खल :

गोपाल राम गहमरी के जासूसी उपन्यास 'हंसराज की डायरी' का " डा० शुकदेव" प्रसाद खल के रूप में आया है। डाक्टर सर्वप्रथम एक सज्जन पुरुष, जनसेवी एवं मेस के मुखियाँ के रूप में आता है। किन्तु वह कोकेन का व्यापार करता था पुलिस की आँख में धूल फोंकने के लिये वह डाक्टरी करता था जिससे कोई उसका भेद जान न सके। जहाँ उसे जरा भी उसे शक हो जाता कि इसने हमारा भेद जान लिया है उसे तुरन्त मौत के घाट उतार देता। राज को गुप्त रखने के लिये ही वह प्रतिदिन एक न एक हत्या अवश्य करता था।

कोकेन का तस्कर व्यापारी होने के कारण ही वह पूछता है कि " अखबार में कुछ नई खबर है ? हमलोगों के मुहल्ले की। उसके इस कथन से प्रतीत होता है कि उसके मन में कोई गुप्त बात है जिसका पता लगाने के लिये वह ऐसा प्रश्न करता है। उसे भय और आशंका सदा बनी रहती है। मुहल्ले में कोकेन की कोई गुप्त आढ़त है इस बात को अखबार में पढ़ कर वह अपनी सफाई देता हुआ कहता है ; बात बिल्कुल सही है। हम भी इतना जरूर समझ रहे हैं कि इस -जगह में कोकेन का कोई बड़ा अड्डा जरूर है उसका मुझे कई बार इशारा मिला है। आप तो जानते ही हैं, हर तरह के लोग हमारे यहाँ दवा लेने आया करते हैं और चाहे जो हो लेकिन कोकेन वाला आदमी डाक्टर की आँखों से बच तो सकता नहीं।" इस कथन के द्वारा वह अपने आप को बचाने की चेष्टा करता है और दोष्मी दूसरे मुहल्ले के लोगों को ठहराता है।

खून-खराबी मार काट का कारण बताते हुये वह स्वयं अपने रहस्य को खोल देता है -" मान लीजिये कि मैं ही अगर कोकेन बेचने का रोजगार करता हूँ और आप उसका पता पा गये तो आपका बचा रहना मेरे लिये तो बड़ा खतरनाक है न ? अगर आप पुलिस से यह बात खोल दें तो मेरे वास्ते तो जेल तैयार है । और साथ ही मेरे रोजगार का खात्मा हो जायेगा । लाखों का माल जब्त होते देर नहीं लगेगी । तब मैं ऐसा कैसे होने दूँगा ।" १

~~डाक्टर के इस कथन से अप्रत्यक्ष रूप से ही~~ प्रत्यक्ष कथन एक आत्मगोपन (गोपन)का ही वह रूप है । डाक्टर ने इस कथन से अप्रत्यक्ष रूप से ही उसका असली चरित्र सम्मुख आ जाता है । पांडे जी का खून कर देने पर भी वह अपनी शंकायें देता है और यह साबित करने की कोशिश करता है कि यह खून नहीं आत्म-हत्या है । जब आत्महत्या की बात साबित नहीं होती तो वह तोताराम को फँसाने की कोशिश करता है । उस पर किसी को संदेह न होने पाये कि वह कोकेन का व्यापारी है वह बार बार कोकेन के गुप्त अड्डे की बात कहता है और कहता है कि हो सकता है पांडे जी उसके सरदार हों । खूनी के गिरफ्तार न होने की बात अखबार में पढ़ कर अना-यास ही उसके मुँह से निकल पड़ता है -" गिरफ्तार नहीं खाक होगा । आशा किया करें ।" इससे उसके मन में छिपे चोर का पता चलता है । क्योंकि वह सोचता है कि मुझ पर संदेह किसी को होगा ही नहीं इसलिये खूनी का पता लगाना असम्भव है ।

हत्यारा डाक्टर ,तोताराम और विजय को मार डालने की नियत से बेहोशी की दवा को सिरदर्द की दवा कह कर दे देता है वास्तव में वह उस रात तोताराम को मार डालना चाहता है । तोताराम को डाक्टर पर पहले से ही संदेह रहता है इसलिये जब रात में डाक्टर तोताराम का खून करने के लिये आता है तब विजय और तोताराम का खून करने के लिये आता है तब विजय और तोताराम पूर्व

१- गोपाल राम गहमरी - हंस राज की डायरी पृ० ८

योजना के अनुसार चैतन्य रहते है,मास्टर पुलिस में रहती है,डाक्टर भागना चाहता है पर तोताराम उसके सिर पर इतनी जोर से मारता है कि वह वहीं गिर पड़ता है । खून करने पर भी अपने को निर्दोष साबित करता हुआ पूछता है मेरा क्या कसूर है । मैय्या वह पहले गिरे का है वह शुगर आव मिल्क की शीशी में कोकेन रखता था वह उसी समय गिरफ्तार भी जाता है । इस प्रकार वह तस्कर व्यापार का अपराधी है और साथ ही साथ हत्या का भी अपराधी है ये दोनों अपराधवृत्तियां उसके चरित्र में झूठ धोखा प्रगल्भता,चातुरी आदि दुर्गुणों का निर्माण करती है ।

यथार्थवाद की दृष्टि से लेखक ने डा० शुकदेव जैसे खल की सृष्टि की है जो ऊपर से भलमनसाहत का मुखौटा पहने रहता है पर अन्दर से वह एक दुर्दान्त, मरणात्मक,तस्कर हत्यारा व्यक्ति है,जो दिन प्रतिदिन हत्यायें करता है,अपने राज को गुप्त रखने के लिये ।

लेखक इसमें यह दिखाना चाहता है कि दुष्टता किस किस रूप में वास करती है । अपने स्वार्थ के लिये खल कितना हिंसक,पापी और दुरात्मा हो सकता है । उसके व्यवहार से कोई उसके अन्दर छिपे षड्यंत्र का पता नहीं लगा सकता । अपने पापमय कर्मों को छुपाये रखने के लिये वह झूठ,छल,कपट, धोखा,हत्या,पाप, आडम्बर आदि शस्त्रों का प्रयोग करता है । डाक्टर अभिज्ञ , अनिश्चित,अपरोक्ष एवं बहुमुखी खल है।

बाबू ब्रजनन्दन सहाय के 'आरण्यबाला' उपन्यास का पात्र डाक्टर स्वार्थी खल के रूप में रखा गया है । डाक्टर ओंकार को सिर्फ इसलिये अच्छी दवा नहीं देता कि उसकी रोटी छिन जायेगी । हमेशा खराब दवा देकर उसे रोगी बनाये रखता है क्योंकि उसके परिवार से उसे अच्छी आमदनी थी । डाक्टर अनिश्चित खल है जो दुनियाँ की दृष्टि में खल न होते हुये भी काम खलता का करता है । उसका स्वार्थ अमानवीय है । अपने स्वार्थ के लिये वह अप्रत्यक्ष रूप से इतना बड़ा अपराध करता रहता है जो अदम्य है ।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के " शराबी " उपन्यास का " पन्नालाल वकील" खल है । उसकी खलता का सर्वप्रमुख कारण है धनलोलुपता । सात आठ हजार वार्षिक आय की जमींदारी होने और स्वयं भी एक अच्छे वकील होने के कारण वह काफी सम्पन्न इन्सान है फिर भी रुपये की तो उसे भयानक लोभा है । उनकी अर्थ पैशाचिकता का प्रमाण उनके इस कथन से भी मिल जाता है जब वह एक गरीब बेचारी को देखकर सोचते है -'हूँ हूँ ! सुबह सुबह, मरे के शबाब में मैया नहीं, बाबू नहीं चाँदी नहीं, सोना नहीं - यह साला मरकट सामने आ फटा ।' उसे गरीब समझ कर वह उससे ठीक से बात भी नहीं लेते और उनकी दृष्टि ही मानो कहे दे रही थी -'भाग, कंगाल-कुबर!'[2] गरीब बेचारी से यह कहने पर कि उसका लड़का बेकसूर होने पर भी खून के जुर्म में गिरफ्तार हो गया है तो उनकी अर्थ पैशाचिकता इन शब्दों में प्रगट हो जाती है -'बिलकुल बको मत ।" जल्द बताओ - रुपये हैं ? या केवल बातें बनाने आये हो ? मुफ्त में - सुबह से लेकर शाम साढ़े सात बजे तक - मैं एक शब्द भी नहीं बोलता । मेरी फीस फी-पेशी बीस रुपये है । माने चालीस अधेली - अस्सी चवन्नी ! समझते हो"[3] फिर कहते है -" रुपये अगर हों, " - तो कोई हर्ज नहीं । लड़के ने चोरी अभी तक न भी की हो, तो कहो उससे अब सेंध मारे । मैं बचा लूँगा ।"[4] इसके अतिरिक्त वह अपने एक मात्र लड़के माणिक की शादी के लिये आये हुये मेहमानों से भी धन की या दहेज की ही बात करते है । धन ही उनके जीवन का आधार स्तम्भ है इसलिये कहते है -" सुनते हो ? मेरी फीस बीस रुपये फी पेशी है । तुमने खून किया - खूब किया है । मगर रुपये लेकर मेरे सामने आओ तब तुम्हारा काम होगा । देखते ही हो, बिना रुपये के मैं अपने एक मात्र

२- बेचन शर्मा उग्र - शराबी उग्र पृ० ४५

३- बेचन शर्मा " - शराबी उग्र पृ० ४५

४- बेचन शर्मा " - शराबी उग्र पृ० ४६-४७

लड़के की शादी में पक्की नहीं कर सकता । दुनिया के प्रत्येक काम के श्रीगणेशायनमः के पहले भी जरूरी है ।"[1] धन लोलुपता ने उन्हें हृदय हीन निष्ठुर (अत्र हिन्द था) वह पेशी के पूर्व ही - एक गरीब मुवक्किलों से तो दो पेशियों का - नजराना, पेशगी लेने के बाद ही पैर गुल्तारनामा होने देते हैं । (पृ० २१) स्वार्थी बना दिया है इसीलिये उन्हें गरीब देहाती के रोने कलपने की परवाह नहीं रहती । धन न मिलने के कारण ही वह उस देहाती का मुकदमा अपने हाथ में नहीं लेते । वह तो लड़की के पिता के मुँह से चार हजार नकद प्राप्त करने की आशा लगाये रहते हैं । धनलोलुपता के कारण ही अपने एक मात्र लड़के के खाने पहनने की वस्तुओं के चुनाव का अधिकार स्वयं रखते हैं क्योंकि वह धन खर्च करते हैं । यही कारण था कि जब उन्हें माणिक लाल के बिगड़ने या फेल होने की खबर मिलती है तो वह पत्नी पर बिगड़ उठते हैं उसके गुमराह होने का सारा श्रेय पत्नी के माथे मढ़ते हैं । माणिक लाल जब पढ़ने से इन्कार करता है तो उसे अपने साथ कचहरी चलने का प्रस्ताव रखते हैं क्योंकि उनका विचार है कि इस तरह से बेकार रहने पर वह पैसे फूकेगा इसलिये उनका मन अपने आप ही कह उठता है 'मेरे बेटे में एक धेला भी हूँ - हाँ मैं भी अपने सिद्धांत का वीर पक्का आदमी हूँ ।'[2] उनका एक मात्र सिद्धांत धन है उनकी इसी धन लोलुपता के कारण गरीब देहाती के निर्दोष लड़के को फाँसी की सजा हो जाती है और वह बूढ़ा प्रतिकार स्वरूप उन्हें श्राप देने लगता है कि 'मेरी तरह तुम भी अपने बेटे के लिये रोते रोते दम तोड़ो' इससे लोभी पन्नालाल की आत्मा काँप उठती है । उन्हें अपनी धनलोलुपता पर पश्चाताप होता है और वह अपनी मृत्यु की कल्पना सम्पत्ति नाश में करते हुये सोचते हैं । - "मैं कौन सम्पत्ति ?, वही जिसे मैंने गरीबों और अमीरों, भलों और बुरों को एक भाव से कटे नींबू की तरह गार - गार कर एकत्र किया है ?"[3]

१- बेचन शर्मा "उग्र"- शराबी पृ० ५०

२- बेचन शर्मा उग्र- शराबी पृ० १२८-२६

३- बेचनशर्माउग्र- शराबी पृ० १४१

शब्द कोश

१- मानक हिन्दी कोश - हिन्दी साहित्य सम्मेलन

२- हिन्दी विश्व कोश - विश्वकोश कुटी बाग बाजार कलकत्ता

३- हिन्दी साहित्य कोश - भाग १-२- ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी

४- विश्व कोश - नागरी प्रचारिणी सभा

५- संस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिव आप्टे